सम्भावनाओं की आहट
(साधना शिविर, माथेरान में हुए 7 प्रवचन)

प्रवचन-क्रम

1. विरामहीन अंतर्यात्रा..2
2. चैतन्य का द्वार...16
3. विपरीत ध्रुवों का समन्वय संगीत..31
4. अपना-अपना अंधेरा...49
5. धारणाओं की आग...64
6. अंधे मन का ज्वर..81
7. संकल्पों के बाहर...96

1

सम्भावनाओं की आहट
पहला प्रवचन

विरामहीन अंतर्यात्रा
(20 मार्च 1969 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा राजमहल था। आधी रात उस राजमहल में आग लग गई। आंख वाले लोग बाहर निकल गए। एक अंधा आदमी भी उस राजमहल में था। वह द्वार-द्वार टटोलने लगा, बाहर निकलने का मार्ग खोजने लगा। लेकिन सभी द्वार बंद थे, सिर्फ एक द्वार खुला था। बंद द्वारों के पास हाथ फैला कर उसने खोज-बीन की, वे बंद थे, वह आगे बढ़ गया। हर बंद द्वार पर उसने श्रम किया, लेकिन द्वार बंद था। आग बढ़ती चली गई, जीवन संकट में बढ़ता चला गया। अंततः वह उस द्वार के निकट पहुंचा जो खुला था। लेकिन दुर्भाग्य कि उस द्वार के पास उसके सिर पर खुजली आ गई। वह अपनी खुजली खुजलाने लगा और उस द्वार के आगे निकल गया। फिर बंद द्वार थे, फिर वह बंद द्वारों पर भटकने लगा।
अगर आप देख रहे होते उस आदमी को तो मन में क्या होता? कैसा अभागा था कि बंद द्वार पर श्रम किया, खुले द्वार पर चूक गया!
लेकिन यह किसी राजमहल में ही घटी घटना नहीं है। जीवन के महल में भी रोज ऐसा ही घटता है। पूरे जीवन के महल में अंधकार है और आग है। और एक ही द्वार खुला है और सब द्वार बंद हैं। और बंद द्वार पर हम सब इतना श्रम करते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं! और खुले द्वार के पास छोटी सी भूल, और चूक जाते हैं। फिर बंद द्वार हैं, और ऐसा जन्म-जन्म में जन्मों-जन्मों में होता है। धन का द्वार है, वह बंद द्वार है, वह जीवन के बाहर नहीं ले जाता। यश का द्वार है, वह बंद द्वार है, वह जीवन की आग के बाहर नहीं ले जाता और भीतर लाता है।
एक द्वार है जीवन के आग लगे भवन में, उस द्वार का नाम "ध्यान" है। वह अकेला खुला द्वार है, जो जीवन की आग के बाहर ले जाता है। लेकिन वहां सिर पर खुजली उठ आती है, पैर में कीड़ा काट लेता है और कुछ हो जाता है और आदमी चूक जाता है! फिर बंद द्वार है और फिर बंद द्वारों की भटकन है।
इस कहानी से आने वाले तीन दिनों की प्रारंभिक चर्चा मैं इसलिए शुरू करना चाहता हूं कि आप ध्यान रखें--उस खुले द्वार के पास कोई छोटी सी चीज से चूक न जाएं। और यह भी ध्यान रखें कि ध्यान के अतिरिक्त और कोई खुला द्वार न कभी था, न है, न हो सकता है। जो भी जीवन की आग के बाहर गए हैं, वे उसी द्वार से गए। और जो भी कभी जीवन की आग के बाहर जाएगा, वह उसी द्वार से ही जा सकता है।
शेष सब द्वार दिखाई पड़ते हैं कि द्वार हैं, लेकिन वे बंद हैं। धन भी मालूम पड़ता है कि जीवन की आग के बाहर ले जाएगा, अन्यथा कोई पागल तो नहीं है कि धन को इकट्ठा करता रहे--लगता है कि द्वार है, बस, दिखता है कि द्वार है। द्वार नहीं है, बंद है। दीवाल भी दिखती तो अच्छा था, क्योंकि दीवाल से हम सिर फोड़ने की कोशिश तो नहीं करते। लेकिन बंद द्वार पर अधिक लोग श्रम करते हैं शायद खुल जाए! लेकिन धन का द्वार आज तक नहीं खुला, कितना ही श्रम करें। वह द्वार बाहर नहीं ले जाता है और भीतर ले आता है।
ऐसे ही बहुत द्वार हैं--यश के, कीर्ति के, अहंकार के, पद के, प्रतिष्ठा के। वे कोई भी द्वार बाहर ले जाने वाले नहीं हैं। लेकिन जो लोग उन द्वारों पर खड़े हो जाते हैं, उन्हें देख कर, पीछे जो उन द्वारों पर नहीं हैं, उन्हें लगता है कि शायद अब वे निकल जाएंगे, अब वे निकल जाएंगे! जिसके पास बहुत धन है, निर्धन को देख कर लगता है कि शायद धनी अब निकल जाएगा जीवन की पीड़ा से, जीवन के दुख से, जीवन की आग से, जीवन के अंधकार से। जो यश की महिमा पर खड़े होते हैं--जो नहीं हैं यशस्वी वे पीछे रोते हैं और सोचते हैं, बस अब यह व्यक्ति निकल जाएगा। जो खड़े होते हैं बंद द्वारों पर, वे भी ऐसा भाव करते हैं कि जैसे निकलने के करीब पहुंच गए। एक और छोटी कहानी से उनकी बात समझ लेनी जरूरी है।

2

एक अस्पताल है। उस अस्पताल में, जो ऐसे रोगी हैं, जिनके बचने की कोई उम्मीद नहीं, केवल उनको ही भरती किया जाता है। एक ही दरवाजा है, दरवाजे के पास लंबी दालान है। लंबी दालान पर मरीजों की खाटें हैं। नंबर एक की खाट पर जो मरीज है, वह कभी-कभी सुबह उठ कर कहताः अहा, कैसा सूरज निकला है, कैसे फूल खिले हैं, पक्षी कैसे गीत गा रहे हैं! और सारे लंबे वार्ड के मरीजों को कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। वहां कोई द्वार नहीं, कोई खिड़की नहीं। वे मन ही मन में जलते हैं कि यह मरीज कब मर जाए तो इसके नंबर एक की जगह पर हम पहुंच सकें। फिर उस मरीज को हृदय का दौरा आया है और सारे वार्ड के मरीज प्रार्थना करते हैं भगवान से कि यह मर जाए तो इसकी जगह हमें मिल जाए। वहां से सूरज का दर्शन भी हो जाता है। फूल भी खिलते हैं, पक्षी गीत भी गाते हैं, चांद भी दिखता है, तारे भी दिखते हैं। धन्य है वह जो द्वार पर है। लेकिन वह आदमी बच जाता है और फिर सुबह उठ कर कहने लगता है--कितनी सुगंध आती है, कैसी सूरज की किरणें, कैसा आनंद है इस द्वार पर, खुला आकाश!
फिर दुबारा दौरा आता है उस आदमी को। फिर वे सब प्रार्थना करते हैं कि
वह मर जाए, तो शायद हमें जगह मिल सके। बार-बार यह होता है, लेकिन वह मरीज मरता नहीं है! और बार-बार वह यही--जब ठीक हो जाता है फिर द्वार के बाहर झांक कर द्वार के सौंदर्य की बातें करता है। सारे वार्ड के मरीज प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, जलन से भरे हैं। अंततः वह मरीज मर जाता है। सारे मरीज कोशिश करते हैं कि उन्हें पहली जगह मिल जाए। रिश्वत देते हैं, सेवा करते हैं डाक्टरों की।
किसी तरह कोई एक मरीज सफल हो जाता है और पहली खाट पर पहुंच जाता है। झांक कर बाहर देखता है, वहां भी दीवाल है, द्वार के बाहर परकोटे की दीवाल है! न वहां सूरज दिखाई पड़ता है, न वहां कोई फूल खिलते हैं, न वहां कभी चांद आता है, न कभी किरणें आती हैं! धक से रह जाती है तबीयत। लेकिन अब अगर यह कहे कि नहीं है कुछ, तो सारे वार्ड के मरीज कहेंगे, मूर्ख बन गया। देखता है दीवाल को और लौट कर मुस्कुराता है और कहता है, धन्य मेरे भाग्य, कैसा सूरज निकला है, कैसे फूल खिले हैं, कैसी सुगंध! और फिर सारे वार्ड के मरीज उसी चक्कर में परेशान हैं कि कब यह मर जाए, तो हमें वह जगह मिल जाए।
वे जो राष्ट्रपतियों की जगह खड़े हैं, ऐसे ही बंद दरवाजों पर खड़े हैं-- जहां आगे न कोई सूरज है, न कोई रोशनी है, न कोई फूल है। वे जो धन के दरवाजों पर खड़े हैं, ऐसे ही दरवाजों पर खड़े हैं जहां दीवाल है! लेकिन पीछे लौट कर वे कहते हैं, बहुत फूल खिले हैं, सूरज निकला है, चांद निकला है, पक्षी गीत गा रहे हैं! अगर वे यह न कहें तो मूर्ख समझे जाएंगे।
लेकिन कभी-कभी उन द्वारों से भी कुछ लोग लौट पड़ते हैं हिम्मतवर, साहसी
और कह देते हैं, नहीं है कुछ। कभी कोई महावीर, कभी कोई बुद्ध लौट आता है उस द्वार से और कहता है, भूल थी, प्रतिस्पर्धा थी, नहीं है कुछ, वहां कुछ भी नहीं है।
लेकिन नासमझ अपनी नासमझी को भी स्वीकार करने को राजी नहीं होते और उनका यह दंभ हजारों लोगों को पागल बनाए रखता है कि कब हम वहां पहुंच जाएं। लेकिन सब द्वार बंद हैं। एक द्वार खुला है, और वह ध्यान का द्वार है। और मजे की बात है कि वे सब द्वार बंद हैं जो बाहर की तरफ खुलते मालूम पड़ते हैं। वह द्वार खुला है जो भीतर की तरफ खुलता मालूम पड़ता है।
ध्यान का द्वार भीतर की तरफ खुलता है, धन का द्वार बाहर की तरफ खुलता है।
बाहर की तरफ खुलने वाले सब द्वार धोखे के साबित हुए हैं। कोई द्वार जो बाहर की तरफ खुलता है, खुलता ही नहीं है, बंद ही है। असल में बाहर की तरफ सिर्फ दीवाल है, वहां कुछ है ही नहीं खुलने को। खुलता है वह द्वार जो भीतर की तरफ खुलता है। लेकिन उस द्वार के पास से हम निकल जाते हैं, कोई छोटी सी बात और सब चूक जाता है।
इन तीन दिनों में उसी भीतर के द्वार परथोड़ा श्रम करने के लिए आप सबको निमंत्रित किया। आप परिचित हैं, वह पहचाना, जाना-माना है, वहां कोई भूल-चूक का डर नहीं है। एक, यात्रा बिल्कुल अपरिचित है, वह जो भीतर की तरफ जाती है। और ध्यान का द्वार भीतर की तरफ खुलता है। उस द्वार पर स्वामी राम मजाक में कहते थेः उस द्वार पर लिखा है "पुल।" उस द्वार नहीं लिखा "पुश।" उस द्वार

पर लिखा हैः खींच लो भीतर की तरफ, मत धकाओ बाहर की तरफ। बाहर की तरफ धकाने से वह और बंद हो जाता है।
वह द्वार खुलता ही नहीं बाहर की तरफ। उस पर लिखा है "पुल।" और हम जो बाहर के दरवाजों के आदी हैं, अगर भीतर के दरवाजे पर भी पहुंच जाते हैं तो वहां भी "पुश" किए चले जाते हैं। आदत हमारी बाहर की तरफ है। इस भीतर के दरवाजे की जो यात्रा है, वह यात्रा अपने आप में कठिन नहीं है। कठिन है सिर्फ इस कारण कि हमारी आदत बाहर की है और आदतें इतनी खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं कि हमें पता ही नहीं चलता। हम अपनी आदत के अनुसार चलते चले जाते हैं। हम सब आदत में ही जीते हैं और हमारी सारी आदत बाहर की तरफ है। और यही कठिनाई है, अन्यथा कोई कठिनाई नहीं है भीतर की तरफ जाने में। लेकिन वहां जाने का हमारा कोई अनुभव नहीं, अनुभव सब बाहर के हैं। उन्हीं दरवाजों से टकराने के हैं जो खुलते ही नहीं। और तब हम एक दरवाजे से ऊब कर दूसरे दरवाजे को ठोकने लगते हैं। दूसरे से ऊब कर तीसरे को ठोकने लगते हैं। हजारों दरवाजे हैं उस महल में। लेकिन एक दरवाजा चूक जाता है। और सिर्फ कुल कारण इतना है कि हमारे सारे व्यक्तित्व की पकड़ बाहर की तरफ है। और आदतें इतनी खतरनाक होती हैं, आदतें इतनी मजबूत और यांत्रिक हो जाती हैं, कि हमें पता भी नहीं चलता।
रास्ते पर आप चल रहे हैं। आपको पता भी नहीं कि आपके दोनों हाथ क्यों हिल रहे हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि दस लाख वर्ष पहले आदमी के जो पूर्वज थे, वे चारों हाथ-पैर से चलते थे। बहुत बाद में आदमी दो पैर से खड़ा हुआ। वह जो चार हाथ-पैर से चलने की आदत है, वह अब तक पीछा पकड़े हुए है। अब चलते तो दो पैर से हैं लेकिन साथ में दोनों हाथ भी हिलते हैं--बाएं पैर के साथ दायां हाथ हिलता है, दाएं पैर के साथ बायां हाथ हिलता है। इससे चलने में कोई सहायता नहीं मिलती, इनसे चलने का कोई संबंध नहीं है। लेकिन दस लाख साल पहले जो आदमी की आदत थी, वह पीछा कर रही है, वह पीछा किए चली जा रही है, वह जड़-आदत अपना काम जारी रखे हुए है! कभी आपने खयाल नहीं किया होगा कि जब हमारे हाथ हिलते हैं तो हम दस लाख साल पुराने आदमी की खबर दे रहे हैं, जो चार हाथ-पैर से चलता था। वह आदत कायम रह गई। शरीर को पता ही नहीं चला अब तक कि आदमी दो पैर से चलने लगा है। शरीर को पता ही नहीं, शरीर दस लाख साल पुरानी आदत में ही जी रहा है!
मनुष्य साधारणतः आदत में जीता है और आदत को तोड़ना कठिनाई मालूम पड़ती है। हमारी भी सब आदतें हैं, जो ध्यान में बाधा बनती हैं।
ध्यान में और कोई बाधा नहीं है, सिर्फ हमारी आदतों के अतिरिक्त।
अगर हम अपनी आदतों को समझ लें और उनसे मुक्त होने का थोड़ा सा भी प्रयास करें तो ध्यान में ऐसे गति हो जाती है, इतनी सरलता से जैसे झरने के ऊपर से कोई पत्थर हटा ले और झरना बह जाए। जैसे कोई पत्थर को टकरा दे और आग जल जाए। इतनी ही सरलता से ध्यान में प्रवेश हो जाता है। लेकिन हमारी आदतें प्रतिकूल हैं। थोड़ा सा इन आदतों के संबंध में प्राथमिक रूप से समझें, फिर कल से हम इनकी गहराइयों में उतरने की कोशिश करेंगे।
एक हमारी आदत है सदा कुछ न कुछ करते रहने की। ध्यान में इससे खतरनाक
और विपरीत कोई आदत नहीं हो सकती।
ध्यान है न-करना। ध्यान है नॉट डूइंग। ध्यान है कुछ भी न करना।
और हमारी आदत है कुछ न कुछ करने की! हम कुछ भी, खाली भी बैठे हों, तो कुछ
न कुछ करते हैं! जिस आदमी को हम कहते हैं यह कुछ भी नहीं कर रहा है, उसकी भी हम खोपड़ी में झांकें तो पता चलेगा वह बहुत कुछ कर रहा है। आदमी अनआकुपाइड होता ही नहीं, अव्यस्त, खाली होता ही नहीं! जो आदमी खाली हो जाए, वह परमात्मा को पा जाता है।
खाली होने की कला ही ध्यान है।
और हम जानते हैं भरे होने की कला, किसी भी तरह भरे होने की! अगर कुछ भी नहीं तो आदमी रेडियो खोलेगा, अखबार उठाएगा, चारों तरफ झांक कर देखेगा कि कोई मिल जाए जिससे बात करे! कुछ भी नहीं होगा।
मैं एक ट्रेन में सफर कर रहा था। मेरे डिब्बे में एक सज्जन और थे। तो मैं तो आमतौर से सफर में सोया ही रहता हूं। जैसे ही कमरे के अंदर गया कि मैं सो गया। वे सज्जन बड़े बेचैन दिखाई पड़े, क्योंकि वे इच्छा में होंगे कि

मैं जागूं तो वे कुछ बात करें। फिर कोई आधा घंटे बाद मैं उठा, तो वे बिल्कुल तैयार थे। उनकी तैयारी देख कर मैंने फिर आंखें बंद कर लीं, तो वे बहुत बेचैन हो गए। फिर मैं आंख बंद किए खयाल रखता रहा कि वे क्या कर रहे हैं। वह कल से जो अखबार लिए थे, उसको कई बार पढ़ चुके थे, उसको उन्होंने फिर से पढ़ना शुरू किया! वह अखबार पढ़ चुके थे बहुत, उन्होंने फिर पढ़ना शुरू किया, फिर उसे नीचे पटक दिया।
मैं आंख बंद किए उनको बीच-बीच में देख लेता हूं कि वे क्या कर रहे हैं। उनकी बेचैनी बढ़ती जा रही है, वे खिड़की खोलते हैं, फिर खिड़की बंद कर देते हैं, फिर सूटकेस से कुछ निकालते हैं, फिर अंदर कर देते हैं, फिर बॉथरूम में जाते हैं, फिर बाहर आ जाते हैं।
फिर मुझे हंसी आ गई। तो उन्होंने कहाः आप क्यों हंसते हैं? और आप अजीब आदमी हैं कि चौदह घंटे होने को आए, सोचा था कि कोई आ गया तो थोड़ा साथ होगा और आप हैं कि आंख ही बंद किए हुए पड़े हैं और मेरी जान घबड़ाई जा रही है! आप नहीं भी होते तो भी एक राहत थी कि चलो अकेले हैं।
मैंने कहा कि मैं भी अनुभव कर रहा हूं और बहुत आनंद ले रहा हूं, आपके काम देख रहा हूं। ये खिड़कियां आप क्यों बार-बार खोलते हैं? या तो खोलना है तो खोल लीजिए, बंद करना है बंद कर दीजिए। यह सूटकेस से आप क्या निकालते हैं बार-बार और अंदर रखते हैं?
उन्होंने कहाः कुछ भी नहीं कर रहा हूं। आप ठीक पहचान गए, मैं किसी भी तरह से कुछ करने की कोशिश कर रहा हूं, क्योंकि बिना किए मन बहुत घबड़ाता है। और सोएं भी कब तक।
आप भी अपने बाबत सोचेंगे तो ऐसी ही हालत पाएंगे--कुछ न कुछ... । अगर तीन महीने आपके लिए सब कुछ व्यवस्था कर दी जाए और कहें कि खाली बैठे रहें--तीन महीने। आप कहेंगे--छत से कूद पड़ेंगे, फांसी लगा लेंगे। तीन महीने कह रहे हैं आप! तीन घंटे बहुत मुश्किल हैं।
कारागृहों में जो लोग बंद किए जाते हैं, उन्हें तकलीफ कारागृह की नहीं होती है। असली तकलीफ बेकाम हो जाने की होती है। इसलिए तो कारागृह में लोग गीता पर टीका लिखते हैं, गीता पर भाष्य लिखते हैं, न मालूम क्या-क्या करते हैं! कोई न कोई काम चाहिए। तो कारागृह में जो लोग चले जाते हैं-- किताबें पढ़ते हैं, किताबें लिखते हैं! कोई न कोई काम, खाली, खाली होना बहुत मुश्किल है!
और जो खाली नहीं हो सकता, वह ध्यान में नहीं जा सकता।
ध्यान के नाम पर भी लोग काम करते हैं! कोई माला फेरता है, कोई राम-राम जपता है, कोई आसन करता है, कोई शीर्षासन करता है! ध्यान के नाम पर भी कुछ करते हैं लोग, और ध्यान का करने से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि जब तक आप करते हैं, तब तक मन तनाव से भरा होता है।
जब आप कुछ भी नहीं करते, तब मन की झील बिल्कुल मौन हो जाती है।
जब तक आप कुछ करते हैं, तब तक मन की झील पर तरंगें उठती रहती हैं। जब आप कुछ भी नहीं करते तो झील सो जाती है, शांत हो जाती है। उसी शांति से द्वार खुलता है। जब तक आप कुछ करते हैं, तब तक पुशिंग, धक्के जारी हैं। आप कुछ कर रहे हैं।
ध्यान रहे, करना मात्र बाहर ले जाने का दरवाजा है, न करना, भीतर जाने
का है।
अदभुत है यह बात। अगर कोई एक क्षण को भी न-करने की हालत में रह जाए तो
पा लिया सब, जो पाने जैसा है। खुल गए वे द्वार, जो सच में ही खुल सकते हैं फिर। और पहुंच गए हम वहां, जहां जीवन की संपदा है। एक क्षण को भी न-करने से आदमी वहां पहुंच जाता है, जहां जन्मों-जन्मों तक करने पर कोई नहीं पहुंचता।
करने से आप सदा दूसरे तक पहुंच सकते हैं, करने से अपने तक नहीं पहुंच सकते। अगर आपके पास मुझे आना हो तो चलना पड़ेगा, क्योंकि आपके और मेरे बीच में फासला है। अगर नहीं चलूंगा तो फासला पूरा नहीं होगा। लेकिन मुझे मुझ तक ही जाना हो तो चलने की कहां जरूरत है? क्योंकि वहां कोई फासला नहीं है। अगर दूसरे तक जाना है तो चलना जरूरी है। अपने तक जाना है तो रुक जाना जरूरी है।

अगर कुछ और पाना है तो कुछ करना जरूरी है। अगर खुद को ही पाना है तो करना जरूरी नहीं है। क्योंकि मैं हूं, मुझे करके पाने का कोई सवाल नहीं है। मैं हूं ही। जो है ही, उसे कुछ करके नहीं पाया जा सकता। जो नहीं है, उसे कुछ करके पाना होता है। अगर धन पाना है तो कुछ करना पड़ेगा। न-करने से धन नहीं मिल जाएगा। अगर यश पाना है तो कुछ करना पड़ेगा, नहीं कुछ करने से यश नहीं मिल जाएगा।
लेकिन अगर स्वयं को पाना है तो कुछ भी किया तो भटक जाइएगा, क्योंकि वह है, वह है ही। जब आपको लग रहा है कि नहीं मिला है, तब भी वह है। उसे कुछ करके पाने का सवाल नहीं है, उसे न-करके पाना होगा। और यह राज की बात ठीक से समझ लेनी चाहिए। दुनिया की सब चीजें करके पाई जाती हैं, सिर्फ स्वयं को न-करके पाया जाता है।
धर्म न-करने से उपलब्ध होता है, अधर्म, करने से उपलब्ध होता है। इसलिए कुछ भी करिए, अधर्म होगा। कुछ भी करिए, अधर्म होगा। मंदिर बनाइए तो अधर्म होगा, और धर्मशाला बनाइए तो अधर्म होगा, कुछ भी करिए, क्योंकि करना ही बाहर से जोड़ता है।
लेकिन एक बार न-करने की हालत मिल जाए तो वह मिल जाता है, जो धर्म है। और
यह और मजे की बात है कि जो न-करने को जान लेता है, फिर वह कर्ता है तो भी अकर्ता बना रहता है। फिर वह कुछ भी करता रहे, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। महावीर भी चलते हैं, भोजन भी मांगते हैं, बोलते भी हैं, सोते भी हैं, उठते भी हैं, सब करते हैं; लेकिन अकर्ता बने रहते हैं, अब करने से कोई संबंध नहीं रहा।
अब करना ऐसे है, जैसे कोई अभिनेता किसी नाटक में काम कर रहा हो। वह सब करता है और भीतर-भीतर कुछ भी नहीं करता है। वह राम बनता है, और सीता के खो जाने पर छाती पीट कर रोता है! और भीतर न वह छाती पीटता है, न वह रोता है! वह रावण बन जाता है और, और लंका के लिए लड़ता है और लंका-वंका जल जाती है और रात घर आकर मजे से सो जाता है। वह भीतर, भीतर कुछ नहीं छूता, अभिनय रह जाता है बाहर।
इसीलिए कृष्ण के चरित्र को हम चरित्र नहीं कहते, कृष्ण के चरित्र को कहते हैं लीला! सबके चरित्र को चरित्र कह देते हैं। राम के चरित्र को चरित्र को कहते हैं, लेकिन कृष्ण के चरित्र को नहीं कहते चरित्र! और लीला और चरित्र में कुछ फर्क है। लीला का मतलब यह है--अभिनय। इसलिए कृष्ण जैसा अनूठा आदमी खोजना दुनिया में मुश्किल है। वह सब तरह के काम कर लेता है, क्योंकि उसे चरित्र का सवाल नहीं है। उसके लिए सब मामला लीला का है, वह किसी नाटक का हिस्सा है, इससे ज्यादा नहीं। तो वह ऐसे काम कर लेता है, जिसकी हम कभी कल्पना नहीं कर सकते। कि दस औरतें मिल कर नाच रही हैं तो वह उनके बीच में खड़ा होकर नाच लेता है! हमारी कल्पना के बाहर हो जाता है, यह आदमी क्या कर रहा है!
लेकिन कृष्ण कहते हैं, यह है लीला, इधर कोई चरित्र नहीं है। हम कुछ कर
ही नहीं रहे हैं। भीतर "न-करना" कायम है, बाहर सब "करना" चल रहा है।
चरित्र एक दिन लीला बन जाए, उसी दिन से धर्म शुरू होता है। जब तक चरित्र बना रहे, तब तक हम अधर्म के हिस्से होते हैं। और चरित्र लीला उसी दिन बनता है, जिस दिन भीतर हम अकर्ता को अनुभव कर लेते हैं, जो बिना किए कुछ करने से मिलता है।
ध्यान इसलिए करना नहीं है और हमारी आदत है करने की! हम कुछ भी पूछें तो
हम करने की आदत में हैं। जब कोई हमसे कहे कि कहां जा रहे हो, तो हम यह भी कह सकते हैं कि ध्यान करने जा रहे हैं। हमारी आदत। वह हम ध्यान को भी जब कहेंगे, तो कहेंगे, ध्यान करना है। क्योंकि हमें पता ही नहीं कि ध्यान का करने से कोई भी संबंध नहीं है। ध्यान "न-करना" है।
जापान में एक फकीर था। उसका एक छोटा सा आश्रम था। उसके आश्रम की बड़ी ख्याति थी। और खुद सम्राट, जापान का सम्राट, उसके आश्रम को देखने गया। और वह फकीर आश्रम के एक-एक झोपड़े के सामने ले जाकर बताने लगा कि यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां भिक्षु भोजन करते हैं, यहां भिक्षु विश्राम करते हैं। और सारे झोपड़ों में हो आने के बाद... बीच में एक बड़ा भवन था--सम्राट

बार-बार पूछने लगा उससे कि ठीक है, झोपड़ों में नहाते हैं--इस भवन में क्या करते हैं?
वह उस भवन की बात ही न करे, जैसे वह भवन है ही नहीं! फिर सम्राट घूम कर वापस द्वार पर आ गया और वह जो बड़ा भवन था बीच में उसकी, उसकी बात भी न उठाई उस भिक्षु ने!
सम्राट क्रोध से भर गया। द्वार पर अपने घोड़े पर बैठते हुए उसने कहा कि
या तो तुम पागल हो या पागल मैं हूं। तुम्हारा आश्रम देखने आया था, तुमने मुझे झोपड़े दिखाए कि यहां भिक्षु खाना बनाते हैं, यहां स्नान करते हैं! क्या जरूरत है तुमको इनको की? और वह जो बड़ा भवन बीच में खड़ा है, मैं तुमसे पच्चीस बार पूछा कि यहां क्या करते हैं और तुम ऐसे बहरे हो जाते हो जैसे तुमने सुना ही नहीं!
वह भिक्षु फिर भी हंसने लगा। और उसने कहाः नमस्कार!
सम्राट ने कहाः तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता है कि मैं पूछता हूं, इस भवन में क्या करते हैं?
उस भिक्षु ने कहाः माफ करिए, आप गलत प्रश्न पूछते हैं तो मैं उत्तर कैसे दूं, क्योंकि उत्तर गलत प्रश्न का देने से गलत ही हो जाता है। आप प्रश्न ही गलत पूछते हैं। उस भवन में हम कुछ भी नहीं करते हैं। आप पूछते हैं, वहां क्या करते हैं तो मैं समझ गया कि यह आदमी करने की भाषा समझता है-- तो मैंने आपको दिखाया कि यहां स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं। मैं समझ गया कि यह आदमी करने की भाषा समझने वाला आदमी है। यह न-करने की भाषा नहीं समझ सकता। वहां हम कुछ भी नहीं करते और तुम पूछते हो कि वहां क्या करते हो! तो मैं चुप रह जाता हूं कि अब मैं क्या कहूं।
उस सम्राट ने कहाः कुछ भी नहीं करते! कुछ तो करते होंगे? यह बनाया किसलिए है?
उसने कहाः आप माफ करिए। फिर आप कभी आना। वहां सच में ही हम कुछ नहीं करते। बनाया जरूर है। और अगर मैं आपसे कहूं तो शायद आप नहीं समझ पाएंगे। वह हमारा ध्यान भवन है, मेडिटेशन हॉल है।
तो सम्राट ने कहाः ठीक है, तो यह क्यों नहीं कहते कि ध्यान करते हैं!
उस फकीर ने कहाः यही मुश्किल है। स्नान किया जा सकता है, भोजन किया जा सकता है, व्यायाम किया जा सकता है, ध्यान नहीं किया जा सकता। न-करने का नाम ध्यान है।
हम भी स्नान करने की भाषा समझते हैं। तो हम सोचते हैं कि ध्यान करना
भी कोई एक क्रिया होगी। कई नासमझ तो यह भी समझाते हैं कि वह भीतरी स्नान है, आत्मिक स्नान है! जैसी शीतलता नहाने से मिलती है, ऐसी शीतलता ध्यान से भी मिलती है! लेकिन करने की भाषा में जब तक आप समझेंगे, आप नहीं समझ पाएंगे, क्योंकि करने की भाषा की आदत ही बाधा है।
तो इन तीन दिनों में इस बात पर खूब खयाल रख लेना कि जो ध्यान करना जिसे
कह रहे हैं, वह न-करना है। उस वक्त कुछ भी नहीं करना है। सब करना छोड़ देना है। सिर्फ रह जाना है। यह हमें खयाल में नहीं आता! हम रास्ते पर चलते हैं, वह चलना हुआ; भोजन करते हैं, वह भोजन करना हुआ; सोते हैं, वह सोना हुआ; बैठते हैं, वह बैठना हुआ; उठते हैं, वह उठना हुआ--ये सब क्रियाएं हुईं। इन सारी क्रियाओं को करने वाला भीतर कोई है।
जब हम क्रिया कर सकते हैं तो अक्रिया क्यों नहीं कर सकते हैं? अगर मैं हाथ खोल सकता हूं तो हाथ बंद क्यों नहीं कर सकता? अगर मैं आंख खोल सकता हूं तो आंख बंद क्यों नहीं कर सकता? जो भी हम कर सकते हैं, उससे उलटा भी हो सकता है।
अब तक हमने जीवन में करने की ही एकमात्र दिशा जानी है, न-करने की हमने कोई दिशा नहीं जानी। तो हमें पता ही नहीं! जब हम कहते हैं किसी से प्रेम की बात, तो भी हम उससे कहते हैं कि मैं प्रेम करता हूं! हालांकि जिनको भी कभी प्रेम का अनुभव हुआ होगा, उन्हें पता है कि प्रेम किया नहीं जाता। वह क्रिया नहीं है।
आप प्रेम कर ही नहीं सकते। या करें कोशिश। आधा घड़ी किसी को पास बिठा लें और प्रेम करने की कोशिश करें। तो आधा घड़ी में सिर पच जाएगा, उसका भी और

आपका भी। और पता चलेगा कि नहीं, किया नहीं जा सकता। प्रेम घटता है। प्रेम होता है, किया नहीं जा सकता।
लेकिन हम तो प्रेम को भी करने की भाषा में सोचते हैं! हमारी करने की आदत इतनी मजबूत हो गई है कि हम जो भी सोच सकते हैं, वह करने की भाषा में ही सोच सकते हैं। हम तो यह भी कहते हुए सुने जाते हैं कि श्वास लेते हैं! हालांकि आपने कभी श्वास नहीं ली अपने जीवन में अभी तक और न कभी आप ले सकते हैं। श्वास चलती है। और अगर आप श्वास लेते होते फिर तो मरना मुश्किल हो जाता, मौत दरवाजे पर खड़ी हो जाती और आप कहते कि खड़ी रहो, हम तो श्वास ले रहे हैं, हम श्वास लेते रहेंगे। लेकिन हमें पता है, मौत द्वार पर आ जाए--फिर श्वास-वास लेते नहीं; गई, गई। आई तो आई, नहीं आई तो नहीं आई। श्वास किसी आदमी ने कभी नहीं ली। लेकिन हम ब्रीदिंग को भी क्रिया बनाए हुए हैं! कहते हम ऐसे ही हैं, जैसे कि श्वास-प्रश्वास भी एक क्रिया है! क्रिया नहीं है, एक घटना है। हम नहीं कर रहे हैं उसे, हो रही है।
वह जो हमारे भीतर से भीतर जो बैठा हुआ है, उसे करने की कोई भी जरूरत नहीं है, वह है। और वह सदा से है। और उसके मिटने का भी कोई उपाय नहीं है। वह सदा होगा। उसका होना अगर जानना है तो करने से मुक्त हुए बिना जानना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जब तक हम करने में उलझे होते हैं, तब तक होने का पता नहीं चलता। करना यानी डूइंग और होना यानी बीइंग। जो आदमी डूइंग में उलझा हुआ है, उसको पता नहीं चलता कि क्या है भीतर, कौन है भीतर। जब सारी क्रिया छूट जाती है, एक क्षण को भी, सिर्फ होना रह जाता है--जैसे हवाएं चल रही हैं, और वृक्ष हैं, पत्ते हिल रहे हैं। लेकिन वृक्ष पत्ते हिला नहीं रहा है; हवाएं चल रही हैं, वृक्ष के पत्ते हिल रहे हैं, श्वास चल रही है--यह सब हो रहा है।
ध्यान की अवस्था का मतलब है होने में छूट जाएं। जो हो रहा है, होने दें। विचार भी चल रहे हैं, तो चलने दें। आप कौन हैं रोकने वाले? जो हो रहा है होने दें। लेट इट बी। जो भी हो रहा है--पत्ते हिल रहे हैं, हवा चल रही है, आकाश में तारे निकले हैं; कोई बच्चा रो रहा है, कोई पक्षी चिल्ला रहा है; भीतर विचार चल रहे हैं, धड़कन चल रही है, श्वास चल रही है, खून बह रहा है--सब चल रहा है। इस सब चलने को होने दें। आप कुछ भी न करें, आप बस रह जाएं। अगर एक क्षण को भी--यह एक क्षण का स्पंदन भी अनुभव हो जाए रह जाने का--तो ध्यान में गति हो गई। वह जो भीतर खुलने वाला द्वार है, वह खुल गया। उसकी एक झलक मिल जाए, फिर कठिनाई नहीं है फिर हम पहचान गए रास्ता, फिर तो हम जा सकेंगे और गहरे और गहरे। और गहरे।
तो करने की आदत से थोड़ा सावधान होना चाहिए। यहां भूल कर भी कोई यह सोच
कर न आए कि हम ध्यान करने जा रहे हैं। कल सुबह से हम बैठेंगे ध्यान के लिए। और बैठेंगे, वह भी क्रिया है; करेंगे, वह भी क्रिया है; आएंगे, जाएंगे, वह भी क्रिया है।
आदमी की सारी भाषा क्रिया है और परमात्मा की भाषा अक्रिया है।
परमात्मा कुछ भी नहीं कर रहा है। वह जो लोग कहते हैं कि परमात्मा ने दुनिया को बनाया है, निहायत नासमझ हैं, क्योंकि वे अपनी भाषा में सोच रहे हैं--करने की भाषा में कि परमात्मा ने दुनिया बनाई, जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है!
परमात्मा ने दुनिया कभी नहीं बनाई। परमात्मा से दुनिया बन रही है। यह कोई कांशस एक्ट नहीं है। यह कोई क्रिया नहीं है परमात्मा की कि बैठा है कहीं और दुनिया बना रहा है। दुनिया बन रही है। यह बनने की घटना घट रही है। कोई बना नहीं रहा कहीं बैठ कर। जैसे आप श्वास ले रहे हैं, बस ऐसे ही सारा जीवन का प्रवाह चल रहा है। करने का भ्रम सिर्फ आदमी को पैदा हो गया है! न पक्षियों को यह भ्रम है, न पौधों को यह भ्रम है, न आकाश के बादलों को यह भ्रम है, न चांद-तारों को यह भ्रम है; किसी को यह भ्रम नहीं है। आदमी को यह भ्रम है कि हम करते हैं और यह करने का भ्रम जीवन पर पत्थर की तरह बैठ जाता है।
इससे बड़ी कोई झूठ नहीं है कि हम करते हैं। सब होता है। और जिस व्यक्ति
को ध्यान में जाना है, उसे ठीक से समझ लेना चाहिए कि सब हो रहा है। तो यह भी कोशिश मत करें कि मैं शांत हो जाऊं, क्योंकि शांत होने की कोशिश से ज्यादा

अशांत करने वाली दुनिया में और कोई चीज नहीं। यह भी कोशिश मत करें कि मैं पवित्र हो जाऊं। यह भी कोशिश मत करें कि मैं भगवान को उपलब्ध हो जाऊं। आपकी कोई कोशिश कारगर नहीं होगी। उस दिशा में कोई कोशिश कारगर नहीं होती। वहां कोई एफर्ट नहीं चलता। वहां कोई प्रयत्न नहीं चलता, वहां कोई प्रयास नहीं चलता। वहां तो वे पहुंच जाते हैं, जो कुछ भी नहीं करते। वे पहुंच जाते हैं जो कुछ भी नहीं करते। जिनका यह भ्रम ही छूट जाता है कि हम कुछ कर सकते हैं।
तो इन आने वाले तीन दिनों में इस बात पर बहुत ध्यानपूर्वक, इसका बोध--
इस बोध को जितना गहरा होने देंगे उतना ध्यान में परिणाम होगा। ध्यान में तो हम सुबह बैठेंगे, रात बैठेंगे और तीन दिन उसी द्वार पर मेहनत करनी है-- वहीं। लेकिन चौबीस घंटे आप यहां होंगे तीन दिन। तो इन तीन दिनों में यह दरवाजा चूक न जाए, उसके लिए खयाल रखें। चौबीस घंटे बोध रखें कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, हो रहा है। चल रहा हूं, तो समझें कि चल रहा हूं, यह हो रही है क्रिया। श्वास ले रहा हूं, तो यह हो रहा है। भूख लगी है, तो हो रही है। प्यास लगी है, तो हो रही है।
तीन दिन सतत इस बात का स्मरण रहे कि चीजें हो रही हैं। मैं कर नहीं रहा हूं। आप हैरान हो जाएंगे, इतनी विश्राम की दशा चित्त को उपलब्ध हो जाएगी, इतना शांत हो जाएगा, सब कुछ इतना ठहर जाएगा भीतर, इतनी गहराई पैदा होगी, जो कभी नहीं खयाल में आई थी कि इतनी गहराई भी हो सकती है। और वह द्वार, फिर ध्यान के लिए हम बैठेंगे तो उसमें वह झलक शीघ्रता और गति से पैदा हो जाएगी।
लेकिन चौबीस घंटे जो भी हो रहा है, उसको इस तरह लें कि वह हो रहा है। और
सच में वह हो ही रहा है। वही है सत्य। कभी आपने भूख लगाई है आज तक? कभी नींद ला सके हैं आप? वह सब हो रहा है। कभी एकाध दिन नींद लाने की कोशिश करें--तो उस रात नींद नहीं आएगी जिस रात आप नींद लाने की कोशिश करेंगे! जिनको नींद नहीं आती, उनका कुल जमा यही कारण है कि वे नींद लाने की कोशिश में बुरी तरह दीवाने हैं। अब नींद लाने की कोशिश से नींद आ सकती है कभी? सब कोशिश नींद को तोड़ देगी, क्योंकि नींद विश्राम है और कोशिश श्रम है। कहीं भूख लग सकती है लगाने से, कि प्यास लग सकती है, कि प्रेम जग सकता है, कि श्वास चल सकती है? कुछ भी नहीं।
जिंदगी का जो भी गहरा है, वह चुपचाप हो रहा है, वह अपने आप हो रहा है। फूल खिल रहे हैं अपने आप, कोई गुलाब फूल खिला नहीं रहा है। और कोई गुलाब को, अगर दिमाग खराब हो जाए और फूल खिलाने लगे तो फिर समझ लेना कि उसमें फूल नहीं खिलेंगे। फूल खिलते हैं।
पूरी जिंदगी सहज एक धारा है, सिर्फ आदमी के दिमाग को छोड़ कर। वहां एक जिच पैदा हो गई है। वहां एक पत्थर खड़ा हो गया है। और उस पत्थर ने सारी अड़चन डाल दी हैं। वह पत्थर यह खड़ा हो गया है कि हम कर रहे हैं! तो हम ध्यान भी करते हैं, प्रार्थना भी करते हैं! और यह सब करने में लग जाते हैं और सब उलझ जाता है। कहीं भी हम भीतर नहीं पहुंच पाते।
इन तीन दिनों में नहीं हम कुछ कर रहे हैं, बस हैं। इसका भाव जितना गहरा
हो सके। अभी यहां से जाते वक्त भी, चलते वक्त ऐसा ही अनुभव करना कि चलना हो रहा है। होटल की तरफ आप जा नहीं रहे हैं! जाना हो रहा है। आपका सारा व्यक्तित्व जा रहा है। सोने के लिए बिस्तर पर जा रहा है, आपका सारा व्यक्तित्व--आप नहीं ले जा रहे हैं।
यह उतनी ही प्राकृतिक घटना है, जैसे हवा चली हो और पत्ते हिल रहे हों। इसी तरह आप दिन भर में थक गए हैं और शरीर का रोआं-रोआं मांग कर रहा है कि बस, बस अब बस। वह पूरा शरीर मांग कर रहा है, सो जाओ। वह आपकी मांग नहीं है, वह उतनी ही प्राकृतिक मांग है, जैसे कोई कली फूल बन रही हो, जैसे कोई पत्ता सूख गया हो और हवा में गिर गया हो। यह उतनी ही प्राकृतिक घटना है, यह उतनी ही सहज घटना है। जब पेट में भूख लगती है तो कोई आप नहीं कुछ कर रहे हैं। वह सब प्राकृतिक हो रहा है।
यह उतना ही जैसे जो कि पानी गर्म हो जाए और भाप बन कर उड़ने लगे। तो हम
यह थोड़े ही कहेंगे कि पानी भाप बन कर उड़ रहा है। हम कहते हैं, पानी भाप बन गया है।

जिंदगी के जो नियम चारों तरफ हैं, वे ही नियम हम पर भी हैं। हम जिंदगी में कोई अपवाद नहीं हैं। आदमी प्रकृति का एक हिस्सा है। और जो व्यक्ति यह समझ लेगा कि हम प्रकृति के एक हिस्से हैं, वह इसी वक्त ध्यान में जा सकता है--इसी क्षण। क्योंकि तब यह खयाल मिट गया है कि कुछ हमें करना है। तब चीजें होंगी। ध्यान आएगा, आप ला नहीं सकते।
और ध्यान आए, और उस द्वार से आप चूक न जाएं तो उसके लिए कुछ स्मरण रख लेना है। पहला, यह कर्तृत्व का, करने का, डूअर का खयाल बिल्कुल जाने दें। अगर कभी ध्यान की दुनिया में प्रवेश करना है, तो मैं कुछ कर सकता हूं, यह खयाल जाने दें। इन तीन दिनों में स्मरण रखें और बहुत अदभुत अनुभव होंगे। अगर चलते वक्त आपको यह खयाल आ जाए कि मैं चल नहीं रहा हूं, यह चलाने की क्रिया उसी तरह हो रही है जैसे चांद चल रहा है, पृथ्वी चल रही है, तारे चल रहे हैं। ठीक यह उसी तरह चलने की क्रिया हो रही है। यह मैं चल नहीं रहा हूं।
यह सारा का सारा जगत जैसे चल रहा है, उसी चलने में मेरा चलना भी एक हिस्सा है। तो आप एकदम चौंक कर, कुछ नया ही अनुभव करेंगे, जो आपने कभी अनुभव नहीं किया था। आप पहली दफा पाएंगे कि यह तो कुछ और ही बात हो गई--कोई दूसरा आदमी खड़ा है, आप नहीं। खाना खाते वक्त खाने की क्रिया हो रही है, स्नान करते वक्त स्नान की क्रिया हो रही है।
चीजें हो रही हैं, आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं।
अनायास एक गहरी शांति चारों तरफ घेर लेगी, भीतर एक सन्नाटा छा जाएगा।
और इन तीन दिनों में कोई कारण नहीं कि जिस द्वार से हम आमतौर से बच कर निकल जाते हैं, उस द्वार पर हम रुक जाएं। वह द्वार हमें दिख जाए, हम बाहर हो जाएंगे। यह हो सकता है, यह हुआ है, यह किसी को भी हो सकता है। और इसके लिए कोई विशेष पात्रता नहीं चाहिए। इसके लिए कोई विशेष पात्रता नहीं चाहिए। एक, बस मिटने की पात्रता चाहिए।
वह जो होने का खयाल बहुत ज्यादा है कि "मैं हूं" वही बाधा डालता है और कोई बाधा नहीं डालता है। न कोई पाप रोकता है किसी को, न कोई पुण्य किसी को पहुंचाता है। पाप भी रोकता है, क्योंकि पापी का खयाल है कि मैं कर रहा हूं।
और पुण्य भी रोकता है क्योंकि पुण्यात्मा का खयाल है कि मैं कर रहा हूं। अगर पापी का यह खयाल मिट जाए कि मैंने किया और पापी भी अगर यह जान ले कि हुआ तो पापी भी इसी वक्त पहुंच जाएगा--इसी क्षण। और पुण्यात्मा को अगर पता चल जाए कि हुआ, तो पुण्यात्मा भी इसी क्षण पहुंच जाएगा।
न पाप रोकता है, न पुण्य पहुंचाता है। मैं कर रहा हूं--यह अस्मिता, यह अहंकार भर रोकता है।
पापी को भी यही रोकता है, पुण्यात्मा को भी यही रोकता है। वह कर्तृत्व
का खयाल रोकता है। और हम कर्तृत्व के खयाल से इतने भरे हैं कि हमें लगता है कि अगर हम थोड़ी देर कुछ न करेंगे तो मिट ही न जाएंगे, मर ही न जाएंगे, वेजिटेट न करने लगेंगे अगर हम कुछ न करेंगे थोड़ी देर।
लेकिन बिना कुछ किए कितना बड़ा संसार चल रहा है; बिना कुछ किए! कितना विराट आयोजन चल रहा है! बिना कुछ खबर दिए, बिना कोई इशारा किए कितने तारे चल रहे हैं! कितनी पृथ्वियां होंगी तारों में, कितना जीवन होगा--अंतहीन है! कुछ पता नहीं, इतना सब चल रहा है बिना किसी के कुछ किए!
अगर भगवान कुछ करता तो भूल-चूकें भी होतीं। करने में भूल-चूकें होती हैं। कभी भगवान को नींद भी लग जाती, दो तारे टकरा जाते, कभी गलत सूचना मिल जाती, ड्यूअलमेंट हो जाता, न मालूम क्या-क्या होता। लेकिन भगवान कुछ नहीं कर रहा, इसलिए कोई गलती नहीं होती। न-करने में गलती हो कैसे सकती है? चीजें हो रही हैं, चीजों का एक सहज स्वभाव है, उससे हो रही हैं।
धर्म का अर्थ है स्वभाव। और स्वभाव का अर्थ है जो होता है, किया नहीं जाता।
ध्यान स्वभाव में ले जाने का द्वार है। और इसलिए ध्यान करने से नहीं होता है। इसलिए जहां-जहां लोग सिखाते हैं कि माला फेरो, ध्यान हो जाएगा; राम-राम जपो, ध्यान हो जाएगा; ओम जपो, ध्यान हो जाएगा; गायत्री पढ़ो, ध्यान हो जाएगा--उन्हें किसी को भी कुछ पता नहीं कि ध्यान का मतलब क्या है।

ध्यान कुछ भी करने से नहीं होता। ध्यान न-करने से होता है। कुछ न करो
और ध्यान हो जाएगा।
कुछ कर रहे हैं हम, इसलिए ध्यान नहीं हो पा रहा है। कुछ कर रहे हैं उस करने में उलझे हैं, इसलिए ध्यान नहीं हो पा रहा है।
बुद्ध के जीवन की घटना बहुत अदभुत है। बुद्ध ने छह वर्ष तक कठिन तपश्चर्या की। जो भी किया जा सकता था, वह बुद्ध ने किया। उपवास किए, शरीर का दमन किया। और ऐसी शरीर की हालत हो गई कि नदी में नहाने उतरे थे तो घाट पकड़ कर चढ़ने की हिम्मत न रही। एक, एक जड़ को पकड़ कर लटक गए, बेहोशी आ गई। इतनी भी ताकत न थी शरीर में। छह वर्ष जो भी किया जा सकता था, सब किया। और मजा यह है कि छह वर्ष में कुछ भी नहीं मिला। कुछ मिला ही नहीं, कुछ कौड़ी भर कुछ भी नहीं मिला उनको। फिर उस नदी में नहाते वक्त, निरंजना में नहाते वक्त बेहोशी आ गई, कमजोरी के कारण। शरीर बिल्कुल हड्डियां रह गया था। तो खयाल आया बुद्ध को, उस बेहोश होते हुए क्षण में, कि नदी पार नहीं कर सकता हूं और भवसागर पार करने की कोशिश कर रहा हूं! कैसे होगा? नदी का पार करना भी मुश्किल हो गया है। तो छह वर्ष जो भी किया था, प्रतीत हुआ व्यर्थ गया। कुछ सार नहीं पाया, कुछ मिला नहीं। तो उस दिन थक कर सब छोड़ दिया। निकल कर नदी के पार किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठे थे, तो एक लड़की ने, सुजाता ने खीर दी। वह बुद्ध को नहीं दी थी खीर। उसने कुछ मनौती मानी थी उस झाड़ के देवता के लिए। और जब सांझ वहां आई तो बुद्ध को देख कर वह समझी कि देवता प्रसन्न हुआ और झाड़ से निकला है। उसने बड़ी... बुद्ध दूसरे दिन कभी वह आई होती तो उपवासे रहते। आज उन्होंने सब छोड़ दिया। भूख लगी थी।
भूख लगानी थोड़े ही पड़ती है। उपवास करना पड़ता है। भूख लगती है। ध्यान रहे, उपवास करना पड़ता है। और करने में कभी धर्म नहीं हो सकता है, क्योंकि करना हमारा किया हुआ है। उससे अहंकार मजबूत होता है। इसलिए उपवास करने वाले अखबारों में खबर छपाते हैं कि फलाने महाराज ने इतने उपवास किए। लेकिन फलाने महाराज को इतनी भूख लगी है, इसको छपवाने की तो कोई जरूरत नहीं, क्योंकि भूख लगती है। उसमें महाराज के करने जैसा कुछ भी नहीं है, वह अपने आप आती है। वह भगवान से आती है। इसलिए भूख का कोई हिसाब नहीं रखता, उपवास का हिसाब रखना पड़ता है। वह हमारा किया हुआ धन है। तो उस दिन तो बुद्ध ने करना छोड़ दिया था। थक गए थे। और कहा, छह वर्ष बहुत कर लिया। अब कुछ नहीं करना है। वृक्ष के नीचे बैठे थे, भूख लगी थी। उस लड़की ने कहा कि लाई हूं खीर। पेट ने कहा कि लो, तो बुद्ध ने खीर ले ली।
यह पहला मौका था, जब उन्होंने भोजन के साथ सरल व्यवहार किया। सरल व्यवहार भोजन के साथ भी नहीं होता है, उसमें भी कठिनाई है! कौन लाया! सुजाता तो शूद्र थी, बुद्ध ने नहीं पूछा कौन लाया, क्योंकि भूख बिल्कुल नहीं जानती कि शूद्र ने बनाया कि ब्राह्मण ने बनाया। वह सिर्फ आदमी का अहंकार जानता है, किसने बनाया। कौन लाया, क्या है, वह तो कुछ, भूख तो कुछ जानती नहीं। भूख के लिए न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र है। भूख के लिए भोजन चाहिए।
बुद्ध ने पूछा ही नहीं कि तू कौन है! सुजाता नाम था उसका। उससे ही पता
चल जाता है कि वह शूद्र थी, नहीं तो सुजाता नाम नहीं रखती। हमेशा हमारे सब नाम उलटे होते हैं न। जो हम नहीं होते, उसको नाम में बताने की कोशिश करते हैं। वह अच्छी जाति से पैदा नहीं हुई थी, इसलिए सुजाता नाम रहा होगा। अच्छी जाति वाला आदमी काहे के लिए सुजाता नाम रखेगा। वह, वह जो भीतर, उसको छिपाने की कोशिश चलती है।
कुछ नहीं पूछा बुद्ध ने। भूख लगी थी, कहा ठीक है, भोजन कर लिया। फिर नींद आई, सो गए।
यह नींद के साथ भी पहला सदव्यवहार था। इसके पहले इतनी देर सोना चाहिए
और इतने वक्त सोना चाहिए और इतने वक्त उठना चाहिए, ये सब नियम-उपनियम थे। आज नींद आई तो बुद्ध सो गए! आज उन्होंने नहीं कहा कि अभी नहीं, अभी मेरा समय नहीं हुआ। और अभी सो जाऊंगा तो फिर ज्यादा नींद हो जाएगी।
साधु-संन्यासियों के नियम होते हैं। इसलिए साधु-संन्यासी कभी कहीं नहीं पहुंचते। नियम वाला आदमी कभी पहुंच ही नहीं सकता, क्योंकि नियम वाला आदमी आदतें बनाता है।

स्वभाव के नियम होते हैं अपने। उसको हमें नहीं जानना पड़ता। जब नींद
आई तो शरीर कह रहा है, प्राण कह रहे हैं, सो जाओ। और जब जागने का वक्त आएगा तो शरीर कहेंगे, प्राण कहेंगे, उठ आओ। न अपनी तरफ से सोना, न अपनी तरफ से जागना। और तब वह नींद उपलब्ध होगी जो परमात्मा की है। जब शरीर कहे, भोजन कर लो, तो कर लेना। जब भूख कहे, खा लो, तो खा लेना। जब भूख कहे नहीं, तो रुक जाना। तब वह भूख मिलेगी जो परमात्मा की है।
लेकिन फिर हमारी अपनी कृत्रिम आर्टिफिशियल भूखें भी हैं। जो कि हम घड़ी में देख कर कि ठीक दस बज गए, समय हो गया भोजन का। वह हमारी भूख है। अगर घड़ी किसी ने एक घंटा पीछे कर दी और आपको पता न हो तो आपको जब दस बजेंगे तब भूख लग जाएगी! हालांकि अभी नौ बजे हैं या ग्यारह बज गए हैं। वह घड़ी देख कर भूख चलती है! यह भूख हमारी है!
तो बुद्ध को नींद आई, सो गए। आज उन्होंने सब छोड़ दिया था--सब। जो किया था, सब छोड़ दिया। आज उन्होंने तय कर लिया था कि अब कुछ करूंगा ही नहीं। छह साल बहुत कर लिया। अब ठीक है, नहीं करने से होगा। उन्हें पता भी नहीं था कि जो करने से नहीं हुआ, वह नहीं करने से हो सकता है--यह उन्हें पता भी नहीं था। उस रात वे सो गए, नींद आई। सुबह पांच बजे के करीब नींद खुली, आंख खुली, आखिरी तारे डूबने के करीब थे आकाश में। वे उसी वृक्ष के नीचे पड़े उन डूबते हुए तारों को देखते रहे--एक-एक तारा डूबता गया। सन्नाटा सुबह का, रात की गहरी नींद। सब करने का खयाल छोड़ दिया, कुछ करने को न बचा।
राजा तो थे, वह तो छोड़ चुके थे छह साल पहले। वह सब धन, यश की दौड़ तो छह साल पहले छोड़ दी थी। फिर नई दौड़ पकड़ ली थी मोक्ष की, निर्वाण की। आज वह भी छूट गई। अब करने को कुछ भी नहीं था। बिल्कुल अनआकुपाइड, अनइंप्लाइड--जिसको कहना चाहिए बिल्कुल बेकार। यह जो बेकार है, यह कोई बेकार नहीं है। क्योंकि कुछ न कुछ करता है।
बुद्ध उस दिन बिल्कुल बेकार थे, एब्सल्यूट अनइंप्लाइमेंट, पूर्ण बेकार जिसको कहना चाहिए--न कोई राज्य था, न कोई धन था, न कोई यश था, न कोई धर्म था, न कोई मोक्ष था, न कोई परमात्मा था, न कोई आत्मा थी। कुछ पाना नहीं था। कुछ नहीं था, खाली बैठे थे।
वह आखिरी तारा डूबा और बुद्ध खड़े हो गए और वह मिल गया! जो छह साल कोशिश करने से नहीं मिला था!
और जब लोग पूछने आए कि कैसे मिला, तो बुद्ध ने कहाः यह मत पूछो कि कैसे मिला! क्योंकि कैसे तो बहुत कोशिश की, नहीं मिला। आज कैसे मिला, कहना मुश्किल है, क्योंकि मैंने कुछ किया ही नहीं था। आज मैं था ही नहीं, आज तो मैं था ही नहीं, क्योंकि मैं कुछ कर ही नहीं रहा था, लेकिन हो गया। और तब बुद्ध बाद में कहने लगे, करने से नहीं मिलेगा, न-करने से मिलता है।
जब भी मिला है, न-करने से मिला है।
लेकिन बुद्ध को समझने वाले कोशिश करते हैं, तो वे देखते हैं क्या-क्या किया बुद्ध ने! वह जो छह साल किया, वे ही उनके भिक्षु कर रहे हैं! और वह जो आखिरी रात नहीं किया था, वह तो पकड़ में ही नहीं आता! क्योंकि "नहीं करने" का क्या मतलब?
तो वह छह साल जो किया था, वह चल रहा है सारी दुनिया में। उपवास किए थे,
यह किया था, वह किया था। लेकिन वह बात चूक गई। जो हुई थी घटना, वह न-करने में हुई थी। वह करने में कभी हुई नहीं। चाहे छह साल करो, चाहे छह लाख साल करो, करने में वह कभी नहीं होती। वह हमेशा न-करने में होती है, क्योंकि जो भीतर है वह तो है ही। तुम करने में उलझे हो, तो वह दिखाई नहीं पड़ता। करना छूट गया, तुम बिल्कुल खाली हो, उसके दर्शन हो जाते हैं।
इतना ही सरल है। लेकिन कठिन बहुत क्योंकि हमारी आदत करने की है। तो
इन तीन दिनों में न-करने की ओर कदम उठाना, करने का खयाल ही छोड़ देना। कुछ करना ही मत, तीन दिनों में जो हो होने देना। जब भूख लगे तो खाना खा लेना, जब नींद आए तो सो जाना। अपनी तरफ से बोलना भी मत, अपनी तरफ से मौन भी मत होना। जब बोलने का मन हो तो बोल लेना, जब मौन का मन हो मौन हो जाना। जब मौन का मन हो तो चाहे सारी दुनिया कहे कि बोलो तो मत बोलना। और जब बोलने का मन हो तो अगर कोई भी न बोलता हो तो जाकर दरख्तों से बोल लेना। जो हो उसे होने देना। अपने को ऐसा छोड़ देना जैसे सूखा पत्ता हवाओं में छोड़ देता है--हवाएं पूरब

जाती हैं पत्ता पूरब चला जाता है, हवाएं पश्चिम जाती हैं पत्ता पश्चिम चला जाता है। हवाएं आकाश में उठा देती हैं पत्ता ऊपर उठ जाता है, हवाएं नीचे गिरा देती हैं पत्ता नीचे गिर जाता है।
लाओत्सु से किसी ने पूछाः तूने कैसे पाया? उसने कहाः मैं सूखा पत्ता
हो गया। हवाएं जहां ले जाने लगीं, हमने कहा, चलो। हमने अपनी जिद्द छोड़ दी कि इधर जाएंगे। हवाएं जहां जाने देंगी, हमने कहा, वहीं चलेंगे। और जैसे ही हमने छोड़ दी जिद्द, वैसे ही हमने पा लिया! एफर्ट से नहीं, एफर्टलेसनेस से। प्रयत्न से नहीं, निष्प्रयत्न से। कर्म से नहीं, अकर्म से। चेष्टा से नहीं, निश्चेष्टा से। दौड़ने से नहीं, रुकने से। खोजने से नहीं, खड़े हो जाने से।
तो इन तीन दिन तो धीरे-धीरे आखिरी तारे डूबते चले जाएंगे, फिर आखिरी तारा भी डूब जाएगा और मौन सन्नाटा रह जाएगा। फिर यहां तो हम विधिवत बैठेंगे। और विधि बड़ी गड़बड़ चीज है, उससे कोई संबंध नहीं है। यहां तो ठीक वक्त बैठेंगे, मीटिंग होगी, ध्यान करेंगे। वह ध्यान उतने काम का नहीं होगा। कभी मन हो जाए, अभी रात यहां से जाओ और मन हो जाए तो मत जाना बिस्तर पर, बैठ जाना किसी वृक्ष के नीचे घंटे, दो घंटे, रात भर भी तो क्या बिगड़ सकता है।
एक रात सुकरात पकड़ा गया, रात भर एक झाड़ के नीचे था। घर भर के लोग परेशान हो गए कि सुकरात कहां है? सब जगह खोजा। मित्रों के घर में खोजा, मित्रों के घर में नहीं था। उन्होंने कहाः आज सुकरात दिन भर से दिखाई नहीं पड़ा, हम खुद भी चिंतित हैं कि वह कहां है? बाजारों में खोजा। लेकिन दुकानें बंद होने के करीब आ गई थीं। सुकरात कहीं भी नहीं था! फिर तो बहुत घबड़ा गए, रात भर लोग जागते रहे कि सुकरात गया कहां?
सुबह-सुबह किसी ने खबर दी कि वह एक वृक्ष के नीचे खड़ा है और उसकी आंखें ठहर गई हैं। उसकी पलक झपकती नहीं और वह आकाश को देख रहा है। और हमें डर लगता है कि उसको छूना भी कि नहीं, क्योंकि वह ऐसी हालत में खड़ा है रात भर से।
घर के लोग गए। उसे देखा लोगों ने और लोग चुपचाप बैठ गए। किसी की हिम्मत न पड़ी कि उसके पास जाकर उसे हिलाएं, क्योंकि वह इतना शांत था।
अगर बहुत शांत आदमी के पास अशांत आदमी भी जाए तो बैठ जाता है।
फिर सुकरात हिला-डुला। सुबह हो गई, सूरज निकल आया, फिर वह घर की तरफ चल पड़ा, तो वे लोग चिल्लाए कि तुम हमें देख भी नहीं रहे हो, और हम कबसे तुम्हारे यहां बैठे हैं, तुम कर क्या रहे थे? क्या हो गया तुम्हें? सुकरात ने कहाः किया तो बहुत, रात न-करने की बात हो गई। किया तो जिंदगी भर। कल रात न- कीबात हो गई। कल आकर खड़ा हुआ था झाड़ के नीचे और बस ेफिर पता नहीं क्या हुआ, क्योंकि फिर मैंने कुछ नहीं किया। लेकिन जो करने से नहीं हो सका था, आज रात हो गया।
तो अभी जाएं और मन हो जाए तो झाड़ के नीचे बैठ जाएं। सोते बहुत हैं, वक्त पर रोज सोते हैं। सब होता है। वह सब होता है, वह छोड़ दें। इन तीन दिन के लिए हवा, पानी--जैसे, सूखे पत्ते जैसे। तो यहां शायद बैठने में जो न हो सके क्योंकि यहां तो नियम से आकर बैठिएगा, वक्त पर बैठिएगा, वक्त पर खत्म हो जाएगा। तो कहीं भी बैठ जाएं--सुबह, रात, दोपहर। और इस तरह जीएं तीन दिन कि जैसे कोई आदमी पानी में बह रहा हो--तैर नहीं रहा हो, ध्यान रहे, तैरना नहीं है।
पानी में एक आदमी तैरता है, तैरने में उसे कुछ करना पड़ता है। वह कहता है, उस किनारे मुझे पहुंचना है, तो वह तैर कर पहुंचने की कोशिश करता है। एक दूसरा आदमी कूद जाता है और बहता है, फ्लोटिंग, तैरता नहीं। वह कहता है, नदी जहां ले जाए, हम राजी हैं। हम नहीं हैं, अब नदी ही जहां ले जाए--बहता है। इन तीन दिनों में बहने की फिकर रखें।
रोज तो जिंदगी में हम तैरने की फिकर करते हैं, तैर रहे हैं! किसी को दिल्ली की तरफ तैरना है, और वह अपना तैरता चला जा रहा है। किसी को कहीं और तरफ तैरना है, वह वहां तैरता चला जा रहा है। हम जिंदगी में तैरते हैं।
तैरना हमारी आदत है। तैरना एक काम है।
बहना--तैरना नहीं।

इन तीन दिनों में फ्लोटिंग। एकदम हलका; उड़े जा रहे हैं। और जिंदगी में कुछ बोझ नहीं है, तो, तो उस दरवाजे पर चूक नहीं पाएंगे--जहां खुजली आ जाती है, और आदमी आगे निकल जाता है।
फुटकर-फुटकर सूत्रों पर तीन दिनों में बात करेंगे। जो भी आपके प्रश्न हों, वे लिख कर दे देंगे, तो रात उनकी बात कर लेंगे। और सुबह... और मेरा... इसी तरह की बात कुछ करूंगा। कोई सूत्र की बात नहीं करूंगा, कोई नियम की बात नहीं करूंगा। ऐसी कुछ बात कहूंगा शायद खयाल में आ जाए कुछ और फ्लोटिंग, वह बहना हो जाए। वह हो सकता है। जब हवाएं कर रही हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते। और जब पानी के झरने कर रहे हैं तो हम बदनसीब, हम नहीं कर सकेंगे। और जब चांद-तारे कर रहे हैं तो हमने क्या बिगाड़ा है। और जब आदमी को छोड़ कर सब कुछ कर रहा है, तो हमसे क्यों नहीं होगा। होगा, निश्चित ही होगा। लेकिन आप मत करना, होने देना, तो निश्चित हो जाता है। यह पहली बात।
फिर कल सुबह से बात करेंगे। भगवान करे... इतनी दूर आप आए, उस यात्रा में
भी आप चले जाएं जहां आप नहीं जा सकते हैं। लेकिन अपने को छोड़ दें, तो जाना हो सकता है।
कल सुबह से ध्यान के लिए भी बैठेंगे। पर तैयारी पूरे वक्त, चौबीस घंटे आपको करनी चाहिए। वे जो तैयार होंगे, उन्हें ही हो सकेगा। नहीं तो चूकने में देर नहीं लगती। दरवाजे तो बहुत हैं, पर दरवाजा एक ही खुला है। और उस पर से जरा चूक गए कि फिर बहुत दरवाजे हैं, फिर उनमें भटकते रहिए। फिर पता नहीं कब उस दरवाजे पर फिर आना होगा। कौन जानता है, होगा भी कि नहीं होगा इस जन्म में, यह भी कोई नहीं जानता। और चूकने के रास्ते इतने अदभुत हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। चूकने की तरकीबें इतनी हैं हमारी कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। जरा सी बात से हम चूक सकते हैं। तो आ ही गए हैं, दरवाजे पर ही खड़े हैं, तो न चूक पाएं--इस तरफ ध्यान रखना जरूरी है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सम्भावनाओं की आहट
दूसरा प्रवचन

चैतन्य का द्वार
(21 मार्च 1969 सुबह)

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य की तरफ देखने पर एक बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य दिखाई पड़ता है--वह
यह कि मनुष्य का पूरा व्यक्तित्व एक तनाव, एक खिंचाव, एक बोझ, एक टेंशन है। कौन सा बोझ है मनुष्य के चित्त पर, किस पत्थर के नीचे आदमी दबा है? सूरज की किरणों की तरफ देखें या वृक्षों के हरे पत्तों की तरफ या आकाश की तरफ आंखें उठाएं--कहीं कोई बोझ नहीं है, सब जगह निर्भार, कहीं कोई तनाव नहीं है। मनुष्य के मन पर एक तनाव है!
सुना है मैंने, एक तेजी से दौड़ती हुई ट्रेन के भीतर एक आदमी बैठा हुआ था। जो भी उस आदमी के करीब से निकलता था, हैरानी से और गौर से उसे देखता था। उसने काम ही ऐसा कर रखा था। वह अपना बिस्तर, अपनी पेटी अपने सिर पर रखे हुए था! कोई भी उससे पूछता कि यह क्या कर रहें हैं मित्र! वह कुछ स्वयंसेवक किस्म का आदमी था। कुछ आदमी स्वयंसेवक किस्म के होते हैं! उन्हें यह खयाल होता है कि सब कुछ स्वयं ही कर लेना है।
उसने कहाः मैं अपना बोझ अपने ही सिर पर रखता हूं। मैं गा.ड़ी पर क्यों बोझ रखूं?
वह खुद भी गाड़ी पर सवार है, अपने सिर पर बोझ रखे हुए! वह बोझ भी गाड़ी पर
ही सवार है। लेकिन जिस बोझ को वह नीचे रख कर आराम से बैठ सकता था, उस बोझ को वह सिर पर रखे हुए है, इस खयाल से कि अपनी सेवा खुद ही करनी चाहिए! गाड़ी भाग रही है, वह उसको भी ले जा रही है और उसके बोझ को भी ले जा रही है, लेकिन वह अपने बोझ को सिर पर भी रखे हुए है!
सारा जीवन चल रहा है, सारा जीवन चलता रहा है, सारा जीवन चलता रहेगा, लेकिन हम सब अपने-अपने बोझ को अपने सिर पर रखे हुए बैठे हैं! जिसे हम नीचे उतार कर रख सकते हैं, उसे हमने सिर पर रखा हुआ है! और हम सबको भी वही खयाल है, जो उस भागती हुई गाड़ी में बैठे हुए आदमी का है कि अपना बोझ अगर मैं नहीं रखूंगा तो कौन रखेगा? लेकिन उसका बोझ प्रत्येक को दिखाई पड़ा कि वह अपने सिर पर लिए हुए है, क्योंकि वह दिखने वाला बोझ था। और हम जो बोझ लिए हुए हैं, वह दिखने वाला बोझ नहीं।
ऐसे बोझ हैं, जो दिखाई पड़ते हैं, और जो दिखाई पड़ते हैं वे बोझ बहुत खतरनाक नहीं हैं, उन्हें उतार कर बहुत आसानी से नीचे रखा जा सकता है। लेकिन ऐसे बोझ भी हैं जो दिखाई नहीं पड़ते हैं, वे भी हम रखे हुए हैं! और चूंकि वे दिखाई नहीं पड़ते दूसरों को भी और हमें भी नहीं, इसलिए जीवन भर हम उन्हें बढ़ाते ही चले जाते हैं, वे कभी कम नहीं होते!
बच्चे और बूढ़ों में अगर कोई अंतर है तो सिर्फ एक--बच्चों के ऊपर अभी कोई बोझ नहीं और बूढ़े जीवन भर का बोझ इकट्ठा कर लेंगे। बुढ़ापे का मतलब ही यह है इतने बोझ से दब जाना कि जीना असंभव हो जाए। शरीर तो बूढ़ा होगा, लेकिन मन अगर निर्बोझ हो तो आत्मा कभी भी बूढ़ी नहीं होती। और आत्मा अगर निर्बोझ हो तो मरते क्षण भी व्यक्ति वैसा ही बच्चा होता है, वैसा ही सरल, वैसा ही निर्दोष, वैसा ही इनोसेंट जैसा उस दिन था, जिस दिन पृथ्वी पर आया।
एक बाजार में बहुत भीड़ थी और जीसस उस बाजार में उस भीड़ के बीच खड़े थे।
और किसी ने जीसस से पूछा, तुम स्वर्ग के राज्य की बातें करते हो, कौन होगा अधिकारी उस राज्य को पाने का? तो जीसस ने उठाया एक छोटे बच्चे को अपने कंधों पर और कहाः वे जो इस बच्चे की भांति होंगे!
लेकिन क्या मतलब है बच्चे की भांति होने का? जीसस ने यह नहीं कहा कि वे
जो बच्चे होंगे, जीसस ने कहाः वे जो बच्चे की भांति होंगे।
बच्चे की भांति का अर्थ यह है कि जो उम्र में आगे चले गए हैं, लेकिन बोझ जिन्होंने नहीं लिया है। जो भीतर बच्चे की भांति हैं।

लेकिन बहुत अनजान बोझ हैं जो हम लिए बैठे हैं! और उन बोझों को लिए हुए अगर आप सोचते हों कि शांत हो जाएंगे, असंभव है। उन बोझों को लिए हुए सोचते हैं कि ध्यान के द्वार में प्रविष्ट हो जाएंगे, असंभव है। उन बोझों को किसी ने आपके ऊपर रखा नहीं है। आपको पता ही नहीं है कि आप ही रखते चले गए हैं! आज भी रखते चले जा रहे हैं, रोज रखते चले जाएंगे! वे बोझ इतने ज्यादा हो जाएंगे कि आप दब जाएंगे, बोझ ही रह जाएंगे। अंततः मरते-मरते आदमी तो कभी का मर चुका होता है, बोझ ही रह जाते हैं!
इन बोझों को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि उस आदमी को जो गाड़ी में बैठ कर सिर पर पेटी-बिस्तर लिए हुए है, अगर यह पता चल जाए कि नासमझी कर रहा है तो क्या उसे सिर से उन पेटी और बिस्तर को उतार देने में कोई कठिनाई होगी? क्या वह यह पूछेगाः मैं कैसे उतारूं? उसे यह दिख भर जाए कि यह निहायत पागलपन है, फिर उतारने में देर नहीं लगेगी, वह उतार कर नीचे रख देगा। चित्त के बोझ हमारी समझ में आ जाएं तो उन्हें उतार कर नीचे रख देने में जरा भी कठिनाई नहीं। लेकिन हमें पता ही नहीं कि हम किस तरह के बोझ लिए हुए हैं! उन बोझों की थोड़ी सी झलक आज सुबह हमारे खयाल में आनी चाहिए।
पहली तो बात, जो बीत गया, उसे हम इकट्ठा किए हुए हैं, वह बीत चुका है, अब
वह कहीं भी नहीं है, सिर्फ हमारी स्मृति को छोड़ कर। वह सब बह चुका है। अब वह कहीं खोजे से नहीं मिलेगा, लेकिन हमारी स्मृति में संगृहीत है! वह सारा का सारा पत्थर की तरह हमारे सिर पर बैठा हुआ है!
कल हुआ था कुछ, वह हो चुका। जैसे पानी पर पड़ी हुई रेखाएं बनती भी नहीं
और मिट जाती हैं। बन भी नहीं पातीं और मिट जाती हैं, वैसे ही इस जीवन की सतह पर बनी हुई रेखाएं बन भी नहीं पाती हैं और मिट जाती हैं। इन वृक्षों को कुछ भी पता नहीं कल जो हुआ था, न आकाश को कुछ पता है, न सूरज को कुछ पता है; सिर्फ आदमी को!
आदमी को जो कल हुआ था, वह उसको जकड़ कर बैठ गया है, उसे उसने पकड़ लिया है!
कल किसी ने गाली दी थी और कल किसी ने प्रेम किया था! कल किसी ने सम्मान किया था और कल किसी ने अपमान किया था! और बीते हुए सारे कल अंतहीन हैं! और हमें तो याद है सिर्फ इस जन्म का, लेकिन जो जानते हैं, वे कहेंगे, अंतहीन जन्मों की कथाएं स्मरण में भीतर बैठी हैं, उन सबका बोझ है! एक-एक आदमी पर अनंत जन्मों का बोझ है। अतीत का बोझ है! अतीत का पत्थर बनता चला गया है, वह हमारी छाती पर है, वह हमारे सिर पर है, उसके नीचे हम दबे हैं, इसलिए निर्भार नहीं हो पाते। यह समझ लेना जरूरी है कि जो बीत गया, वह बीत गया, अब वह कहीं भी नहीं है, अब उसे मैं क्यों ढो रहा हूं।
एक सुबह एक आदमी बुद्ध के ऊपर आकर बहुत क्रोधित हुआ था, बहुत गालियां
दी थीं। फिर बुद्ध के ऊपर क्रोध में उसने थूक दिया था! बुद्ध ने चादर से उस थूक को पोंछ लिया और उस व्यक्ति से कहा और कुछ कहना है! सोचें थोड़ा उस सुबह को। आप गए हैं बुद्ध के पास थूकने को। और बुद्ध जैसे लोगों के ऊपर थूकने का बहुत लोगों का मन होता है। क्योंकि बुद्ध जैसे लोग बहुत लोगों के लिए अपमानजनक सिद्ध होते हैं।
बुद्ध तो किसी का अपमान नहीं करते हैं, लेकिन उनका होना ही बहुत से लोगों के लिए पीड़ा और अपमान का कारण हो जाता है, क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्ति का खड़ा होना ही हमारे छोटे होने का सबूत हो जाता है। बुद्ध जैसे व्यक्ति का प्रकाशित होना ही हमारे अंधकार को दिखाने लगता है। बुद्ध जैसे व्यक्ति के भीतर से बहती करुणा, हमारे भीतर क्रोध और अहंकार को बहुत घबड़ाने लगती है। बुद्ध का व्यक्तित्व हमारे व्यक्तित्व की हीनता को जाहिर करने लगता है। हम क्रोधित हो जाते हैं तो बुद्ध पर थूकने का मन होता है! बिल्कुल स्वाभाविक।
कोई आदमी गया था और बुद्ध पर उसने जाकर थूक दिया है। समझ लें कि आप ही
गए हैं, और बुद्ध ने थूक को पोंछ लिया है, जैसे कुछ भी न हुआ हो! और क्या हो गया है! और बुद्ध ने पूछा है, और कुछ कहना है?
पास में बैठा हुआ भिक्षु आनंद बहुत क्रोधित हो उठा और कहने लगा, आप क्या कहते हैं, "कुछ कहना है!" वह आदमी थूक रहा है! और हम आपकी वजह से सिर्फ चुप हैं, अन्यथा हमारे प्राणों में आग लग गई है कि यह क्या किया है इस आदमी ने। आप पर और थूकता है कोई, और आप यह कह रहे हैं कि और कुछ कहना है!

बुद्ध ने कहाः जहां तक मैं समझता हूं, इस आदमी के मन में इतना क्रोध है
कि शब्दों में कहने में असमर्थ है, इसलिए थूक कर कहता है। थूकना भी एक भाषा है, एक ढंग है, एक विधि है!
और कभी जब हम न कह पाते हों कुछ, शब्द असमर्थ हो जाते हों, तो फिर इस तरह से कहते हैं। किसी का प्रेम बहुत बढ़ जाता है, तो गले से लगा लेता है। अब गले से लगा लेने से कोई मतलब नहीं है। लेकिन प्रेम के लिए शब्द नहीं मिलते। और कोई क्राध से भर जाता है तो सिर पर चोट कर देता है, शब्द नहीं मिलते और कोई आदर से भर जाता है तो पैरों पर सिर रख देता है! शब्द नहीं मिलते।
बुद्ध ने कहाः शब्द नहीं खोज पा रहा है वह आदमी! भाषा कमजोर है, इसलिए कुछ कहता है। मैं समझा। और कुछ कहना है मित्र? आप होते उस जगह--क्या कहने को बच गया था?
वह आदमी वापस लौट गया है, उसकी आंखों में आंसू भरे हैं, रात भर सो नहीं सका। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया और बुद्ध से कहने लगा पैरों को पकड़ कर, आंसू गिरा कर, मुझे क्षमा कर दें! बुद्ध ने कहाः देखते हो आनंद, अब भी यह आदमी कुछ कहना चाह रहा है और शब्द नहीं मिल रहे हैं तो आंख से आंसू गिराता है, पैर पकड़ लेता है। आदमी की भाषा, आनंद, बहुत कमजोर है।
और उस आदमी से कहाः मित्र, किस बात की क्षमा मांगते हो? उस कल की जो जा चुका! किससे क्षमा मांगते हो--मुझसे? मैं दूसरा आदमी हूं--बहती गंगा में बहुत धारा बह गई है, बहुत पानी बह गया है।
कल तुम सुबह जिस गंगा के पास गए थे, अब वही गंगा वहां नहीं है। और आज तुम जाओ और क्षमा मांगो तो गंगा कहेगी, किससे मांगते हो क्षमा? बह गया पानी वह जिससे तुम कल मिल गए थे। अब वह कहां हूं मैं जो कल था। न वृक्षों में पत्ते वही हैं, न आकाश में बादल वही हैं, न सूरज की किरणें वही हैं, कोई भी तो वही नहीं है, सब तो बह गया, सब तो बदल गया। किससे क्षमा मांगते हो? लेकिन पागल हो तुम, तुम नहीं बह पाए, तुम वहीं अटके, रुके हो। कल सुबह
जो थूक गए थे, वहीं खड़े हो। बुद्ध ने कहाः मैं कैसे क्षमा करूं, मैं तो कल नहीं था। जो था, अब वह मैं नहीं हूं।
सिर्फ मरी हुई चीजें वही होती हैं, जो कल थीं। जिंदा चीजें रोज बदल जाती हैं। जीवन का मतलब है बदल जाना। मरे होने का मतलब है न बदलना।
सुबह फूल खिलता है, उसी के नीचे एक पत्थर पड़ा है, वह पत्थर मन में हंसता होगा उन लोगों को देख कर, जो फूल की प्रशंसा करते हैं। क्योंकि वह कहता होगा पागल हो गए हो, अभी खिल भी नहीं पाया है, दोपहर मुरझा जाएगा, सांझ गिर जाएगा। मुझे देखो, मैं सुबह भी वही हूं, दोपहर भी वही हूं, सांझ भी वही हूं।
सिर्फ जो मरा हुआ है, वह वही होता है जो था। असल में मरा हुआ अतीत में होता है, मरे हुए का कोई वर्तमान नहीं होता। अतीत का मतलब है मरा हुआ। मरे हुए का मतलब है दि पास्ट, बीत गया। सिर्फ अतीत नहीं बदलता है, वर्तमान प्रतिक्षण बदलता चला जाता है।
जो बदलता है, उसका नाम वर्तमान है। जो ठहरता नहीं, जो बदलता ही चला जाता है, उसी का नाम जीवन है।
लेकिन स्मृति बदलती नहीं, ठहर जाती है। हम जीवन हैं और हमारे सिर पर स्मृति का बोझ है, जो नहीं बदलती! हम तो फूल की तरह हैं और स्मृति पत्थर की तरह है, जैसे एक फूल को पत्थर के नीचे दबा दिया हो, इससे आदमी विकृत हो जाता है। आदमी तो फूल है, जिंदगी तो फूल है। स्मृति एक पत्थर की भांति उस फूल को दबाए हुए है। सोचें, एक फूल पत्थर के नीचे दबा हो, तो कैसे प्राण हो जाएंगे; वैसे आदमी की चेतना स्मृति के पत्थर के नीचे दब कर--परेशान, पीड़ित और तनाव से भरी जा रही है।
ध्यान में प्रवेश होता है उनका, जो स्मृति के पत्थर को हटा देते हैं। लेकिन हम तो सम्हालते हैं। हम तो कहते हैं, पता है कि मैं कल कौन था? आदमी कभी एम एल ए रहा हो तो भी अपने पैड पर लिखे रहता है भूतपूर्व एम एल ए! एक्स मिनिस्टर! वह जो एक्स है वह पीछा नहीं छोड़ता। कभी थे ठीक है, बात बह गई। गंगा का पानी बह गया--जो था वह, अब नहीं है। आप यहां आए थे सुबह, वही वापस नहीं लौटेंगे। घंटे भर में सब बह जाएगा।

जैसे सांझ कोई एक दीया जलाए और सुबह जाकर कहे कि अब मैं उसी दीये को बुझाता हूं, जिसे सांझ जलाया था। तो गलत कहता है कि सही कहता है? हमें लगेगा सही कहता है, वही दीया बुझाता है, जो सांझ जलाया था। लेकिन कहां है वह दीया अब, जो सांझ जलाया था? वह ज्योति तो प्रतिक्षण बदलती चली गई, वह ज्योति तो धुआं होती चली गई, नई ज्योति आती चली गई है। रात भर दीया बदला। रात भर दीया बदलता रहा, रात भर धारा ज्योति की बहती रही, नई ज्योति, नई ज्योति, नई ज्योति आती चली गई। इतनी तेजी से हुआ यह परिवर्तन। पुरानी ज्योति गई नहीं कि नई आ गई। कि बीच का फासला हमें दिखा नहीं। हमने समझा कि वही जल रही है, वही जल रही है। सांझ जो दीया जलाया, सुबह कोई बुझा सकता है! सांझ जो दीया जलाया, वह तो सांझ ही बुझ गया और बह गया। दूसरे दीये जलते चले गए। एकशृंखला थी परिवर्तन की। सुबह जिस दीये को बुझाते हैं, वह बिल्कुल और है। जिसे कभी नहीं जलाया था, उसे बुझाते हैं।शृंखला है, तेज धारा है, इसलिए पता नहीं चलता।
जो आदमी पैदा होता था, वही मरता है? आप जो पैदा हुए थे, वही हैं? वही मरेंगे?
ज्योति बदलती चली गई, सब बदलता चला गया। एक बहाव है जिंदगी, लेकिन उस बहाव ने जो भी जाना, उस बहाव पर जो भी अंकित हुए, उस बहाव ने जो भी देखा, वह सब स्मृति इकट्ठी करती चली गई। जीवन की धारा है आगे की तरफ, स्मृति की पकड़ है पीछे की तरफ। स्मृति रुक जाती है अतीत पर। जीवन भागता है आगे, और आगे-- अनजान, अज्ञात में। और स्मृति? स्मृति रुकती है ज्ञात पर। स्मृति है नोन, वह जो ज्ञात है। और जीवन है अननोन, वह जो अज्ञात है।
और ज्ञात और अज्ञात के बीच जो खिंचाव है, वह मनुष्य का तनाव है। वह टेंशन है। वह तनाव जब तक न उतरे, तब तक जीवन के द्वार में हम प्रवेश नहीं पा सकते। यह मत पूछें कि वह कैसे हम उतारें, समझ लेना जरूरी है और समझ लिया जाए ठीक से तो उतर जाता है। क्योंकि कोई दिखने वाला बोझ थोड़े ही है जिसे सिर से उतारना है। वह समझने की बात है। वह बस समझ लेने की बात है। वह साफ-साफ देख लेने की बात है। वह अंडरस्टैंडिंग हो, दिखाई पड़ जाए, बात खतम हो गई। आप देखें अपनी तरफ, कितनी स्मृतियों को इकट्ठा किए बैठे हैं, क्या प्रयोजन है उन स्मृतियों का? क्या अर्थ है उन स्मृतियों का?
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप यह भूल जाएं कि किस होटल के किस कमरे में ठहरे हैं। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप भूल जाएं कि आपको किस गांव वापस लौटना है। यह मैं नहीं कह रहा हूं। यह कामचलाऊ स्मृति है, जिसका कोई बोझ नहीं।
स्मृतियां दूसरी हैं साइकोलॉजिकल, मानसिक। अगर कल मैंने आपको गाली दी
थी तो क्या आज आप मुझसे मिल सकेंगे उस गाली को बिना बीच में लिए? क्या यह संभव होगा कि आप मुझसे मिलें और मैं जो कल जैसा आपको दिखाई पड़ा था, वह तस्वीर बीच में न आए, वह इमेज बीच में न बने। अगर यह हो सकता है तो आप एक जिंदा आदमी हैं, जिसके मन पर बोझ नहीं है, और अगर यह नहीं हो सकता तो फिर बहुत कठिनाई है।
अभी एक मित्र मिले और उन्होंने कहा, आपकी रात बातें सुनीं और पहले की
और इन बातों में थोड़ा विरोध मालूम पड़ा! लेकिन पहले की बातों को किसलिए पकड़ कर बैठे हैं? वह सब बह गया। और अगर पहले की बातों को पकड़ कर बैठे हैं, तो जो मैं अभी कह रहा हूं वह न आप सुन पाएंगे, न समझ पाएंगे। फिर विरोध दिखाई पड़ेगा, क्योंकि आप सुन ही नहीं पाए, समझ ही नहीं पाए। और मैं कहता हूं, जो मैं कह रहा हूं, उसे अगर ठीक से समझ लें तो कभी कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ेगा। लेकिन वह पीछे का पकड़े हुए है मन को कि कभी यह कहा था। न उसको सुना होगा कभी, क्योंकि तब पीछे का और कुछ पकड़े रहा होगा। मेरा नहीं तो कृष्ण का, बुद्ध का, महावीर का, गीता का, कुरान का पकड़े रहा होगा।
पीछे की तरफ स्मृति भागती रहती है और जीवन आगे की तरफ भागता रहता है।
इन दोनों में मेल नहीं हो पाता, जैसे एक ही बैलगाड़ी में हमने दोनों तरफ बैल जोत दिए हों तो वह दोनों तरफ बैल भागे चले जा रहे हैं! स्मृति के बैल पीछे की तरफ, जीवन की धारा के बैल आगे की तरफ। और वह बैलगाड़ी तकलीफ में पड़ गई है, और वह पूरे वक्त मुश्किल में है।

और पीछे के बैल मजबूत हैं, क्योंकि जीवन भर का बल उन्हें मिला है। वे
जो अतीत के बैल हैं, स्मृति के बैल, मजबूत हैं, क्योंकि जीवन भर की ताकत उन्हें मिली हैं। मुर्दा हैं, लेकिन मजबूत हैं; पत्थर हैं, लेकिन वजनी हैं।
हर आगे की, जीवन की धारा बहुत कोमल है। अभी होने को है, जैसे छोटा सा अंकुर निकलता है बीज से, कमजोर, कोमल, डेलिकेट। अभी जरा सा पत्थर उस पर रख दो तो मर जाएगा।
ऐसी भविष्य की जीवन-धारा बहुत डेलिकेट, बहुत कोमल, बहुत नाजुक और अतीत
के बैल बहुत मजबूत वह पीछे की तरफ गाड़ी को खींचते रहते हैं। गाड़ी पीछे जा नहीं सकती, सिर्फ आप खींच सकते हैं। और तब जिंदगी रुक जाती है, ठहर जाती है, धारा नहीं रह जाती है एक, एक बांध बन जाता है, एक सरोवर बन जाता है। फिर हम सड़ते हैं, बोझ से मरते हैं। इसलिए आदमी की आंख में वह बात नहीं दिखाई पड़ती, जो एक झील में दिखाई पड़ती है। आदमी की आंख में वह बात भी नहीं दिखाई पड़ती है, जो एक गाय की आंख में दिखाई पड़ जाए। आदमी की गति में वह बात नहीं दिखाई पड़ती जो एक हिरन की गति में दिखाई पड़ती है। आदमी की जिंदगी में वैसी फ्लॉवरिंग नहीं दिखाई पड़ती। वैसी चीजें खिलती नहीं दिखाई पड़तीं जैसी पौधे में दिखाई पड़ती हैं। और आदमी भी इस प्रकृति का उतना ही हिस्सा हैः जितने पशु हैं, जितने पौधे हैं, जितने पक्षी हैं, जितने चांद-तारे हैं। लेकिन आदमी को तोड़ने वाली कौन सी बात है? वह अतीत का बोझ एक भारी दीवाल
की तरह खड़े होकर आदमी को जीवन से तोड़ रहा है। यह बात समझ लेनी जरूरी है कि जो हो चुका, वह हो चुका। उसे मैं क्यों ढो रहा हूं, उसे बिदा कर दें।
एक फकीर खोजता हुआ निकला था, सत्य की खोज में। फिर वह एक संन्यासी के आश्रम में रुका। उस संन्यासी से मिला और उसने कहा कि मैं सत्य की खोज में आया हूं। जानना चाहता हूं जीवन का सत्य क्या है? जिस संन्यासी से उसने यह पूछा, उस संन्यासी ने कहाः ये बातें पीछे हो जाएंगी। कहां से आते हो? उस आदमी ने कहाः मैं पेकिंग से आता हूं। उस संन्यासी ने कहाः पेकिंग में चावल के क्या दाम चल रहे हैं?
वह जो फकीर था, वह कहने लगा, महाशय, पेकिंग में जरूर चावल के कुछ दाम चल रहे होंगे, लेकिन मैं पेकिंग छोड़ चुका हूं। और जहां से मैं छोड़ चुका हूं, वहां लौट कर नहीं देखता हूं। जिन रास्तों से मैं गुजर जाता हूं, उन्हें भूल जाता हूं, क्योंकि मुझे और आगे के रास्ते पार करने हैं। और अगर आंखें पिछले रास्तों से भरी रहें तो आगे के रास्ते फिर धुंधले दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि आंखें एक समय में एक ही बात देख सकती हैं--या तो पीछे के रास्ते या आगे के रास्ते। होंगे पेकिंग में कुछ भाव, लेकिन मैं पेकिंग में नहीं हूं। वह संन्यासी हंसा, उसने कहाः मैंने जान कर पूछा था, अगर तुम पेकिंग में चावल के भाव बता देते तो फिर मैं सत्य की तुमसे बात नहीं करता। ठीक है, अब तुमसे कुछ बातें हो सकती हैं; क्योंकि सत्य केवल उन्हीं के अनुभव में आ सकता है जो अतीत से मुक्त हो जाते हैं। लेकिन हमें तो पेकिंग में चावल के भाव बहुत अच्छी तरह याद हैं! आदमी बचपन की बताता है कि इतने सेर दूध बिकता था, इतना घी मिलता था, इतना यह होता था! यह सिर्फ बताता नहीं है, यह उसके चित्त पर बोझ की तरह बैठे हैं! तो जिंदगी जो आज है, उसे देखने में बाधा पड़ती है, क्योंकि जिंदगी जो कल थी, उसने इतने जोर से मन को पकड़ लिया है।
कभी आपने खयाल किया है, मन दो तरह से काम कर सकता है--एक तो फोटो-प्लेट
की तरह। कैमरे में फोटो-प्लेट हम लगाते हैं, बहुत सेंसिटिव होती है। बहुत संवेदनशील होती है, लेकिन बस एक फोटो निकाल कर व्यर्थ हो जाती है। एक फोटो पकड़ लिया, फोटो-प्लेट खराब हो गई। फिर अब दूसरी फोटो नहीं पकड़ी जा सकती उस पर। मर गई। जिंदा न रही अब।
एक दर्पण भी होता है, दर्पण पर एक तस्वीर बनती है। जब सामने कोई होता
है तो दर्पण उसकी पूरी तस्वीर बना देता है। फिर वह विदा हो जाता है, तस्वीर भी विदा हो जाती है। दर्पण फिर खाली हो जाता है। फिर कोई दूसरा सामने आता है। दर्पण फिर तस्वीर बनाता है। फिर दर्पण यह नहीं कहता कि मैं बना चुका एक तस्वीर। अब मैं दूसरी नहीं बनाऊंगा। दर्पण तस्वीर पकड़ता नहीं। दर्पण मरता नहीं तस्वीर पकड़ कर। दर्पण जिंदा बना रहता है। तस्वीर आती है, जाती है; बीत जाती है।

जो लोग स्मृति में जीने लगते हैं, वे लोग अपने चित्त का फोटो-प्लेट की तरह उपयोग कर रहे हैं। जहां एक के ऊपर दूसरी तस्वीरें इकट्ठी होती चली गईं हैं। वहां विदा नहीं होती तस्वीरें। मन खाली नहीं होता। फिर फिर तस्वीरों पर तस्वीरें बैठती चली गई हैं, बोझ होता चला गया है।
लेकिन जो लोग ध्यान की दुनिया में गति करना चाहते हैं, वे मन का मिरर लाइक, दर्पण की तरह उपयोग करते हैं। मन पर आती हैं चीजें, बीत जाती हैं। आप मुझे दिखते हैं तो ठीक है। आप नहीं दिखते तो गए। फिर आप कहीं भी नहीं हैं। जिस स्टेशन पर सवार होता हूं, लोगों से नमस्कार हो गई। फिर वे गए, फिर वह स्टेशन भी गया। वह दुनिया में है भी नहीं, इससे भी कोई मतलब न रहा। फिर आगे और दुनिया है, आगे और लोग हैं, उनकी तस्वीर बनानी है।
तो पिछली तस्वीरों को विदा हो जाना चाहिए, अन्यथा फिर नये के साथ न्याय नहीं हो सकता है। पुराने के साथ जो बहुत ज्यादा पकड़ हो तो नये के साथ न्याय नहीं हो सकता।
अतीत के साथ बहुत जकड़ हो तो फिर वर्तमान के साथ न्याय कैसे हो सकता है?
और बीते कल से जो बंध गया, वह आज में जीएगा कैसे? अभी कैसे जीएगा? इस क्षण कैसे जीएगा? यह क्षण तो कभी भी नहीं था। यह पहली बार आया है। और हमारे मन भरे हैं तस्वीरों से। अतीत का बोझ हमारे चित्त को, चित्त के दर्पण को धूमिल कर देता है।
एक व्यक्ति, एक संन्यासी के आश्रम में दीक्षित हुआ। वर्षों तक साधा उसने, लेकिन नहीं पा सका, वह जो पाने की इच्छा थी। फिर उसने अपने गुरु को कहा, वर्ष पर वर्ष बीत गए, वह तो नहीं मिला जिसे खोजने आया था। अब मैं कहां जाऊं?
तो उसके गुरु ने कहा कि एक सराय है नगर के बाहर, कुछ दिन वहां जाकर रह, सराय का वह जो मालिक है, वह जो रखवाला है सराय का, उसे ठीक से समझ, शायद जो यहां नहीं मिल सका, वह वहां मिल जाए।
वह युवा संन्यासी उस सराय में गया। आशा तो नहीं थी, क्योंकि एक बड़े संन्यासी से कुछ न मिला तो एक सराय के रखवाले से क्या मिलेगा? गया, लेकिन कहा था गुरु ने तो चला गया।
सांझ जाकर जब वहां पहुंचा तो सराय का मालिक बरतन साफ कर रहा था। दिन
भर भोजन लोगों ने किया था, यात्री ठहरे और गए थे। उसने बरतन साफ किए। कमरों में बुहारी लगाई। द्वार झाड़ा। फिर वह देखता रहा। फिर उसने कहा, कि मेरे गुरु ने आपके पास कुछ सीखने को भेजा है।
वह पहरेदार, वह सराय का मालिक कहने लगा, मेरे पास सीखने को क्या है! लेकिन आए हो, तो ठहरो। मैं कुछ सिखा नहीं सकता। तुम कुछ सीख सको तो बात दूसरी है। और दुनिया में कोई किसी को कुछ नहीं सिखा सकता। कोई सीख सके, बात दूसरी है।
लेकिन उसने कहाः जो आदमी कहता है, मैं कुछ सिखा नहीं सकता, उससे सीखने
को क्या मिलने को है! लेकिन फिर भी आ गया है तो कम से कम रात रुक जाए और कम से कम एक दिन तो देख ले कि यह आदमी क्या करता है?
दूसरे दिन सुबह से फिर वह देखता रहा। वह आदमी दिन भर लोगों की सेवाएं करता रहा। एक मेहमान आया, दूसरा मेहमान गया, तीसरा मेहमान आया। किसी के घोड़े बंधे, किसी के ऊंट ठहरे, किसी की गाड़ी बंधी। वह दिन भर काम करता रहा। भोजन देता रहा। सांझ फिर बरतन मलता था।
फिर उसने कहाः कि अब मैं जाऊं? क्योंकि मुझे कुछ सीखने जैसा नहीं दिखाई पड़ता है। दिन भर लोग आए, गए, वह मैंने देखा। तुमने सेवा की, वह मैंने देखा। तुमने बरतन धोए, तुमने मकान साफ किया, वह मैंने देखा। सब मैंने देख लिया। सिर्फ मुझे पता नहीं कि रात, तुम सुबह उठे, कब उठे, वह मुझे पता नहीं। उस वक्त तुमने क्या किया, वह तुम मुझे और बता दो।
सुबह उठ कर तुमने क्या किया? उसने कहाः कुछ भी नहीं किया। रात जिन बरतनों को साफ करके रख दिया था, उन पर थोड़ी धूल जम गई रात भर में, सुबह उन्हें फिर साफ किया।
उस आदमी ने कहाः अच्छा पागल है मेरा गुरु! किस आदमी के पास भेज दिया, जहां सीखने को कुछ भी नहीं! जो बरतन साफ करना, मकान साफ करना, लोगों की सेवा करना--इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता!

वह वापस लौट गया अपने गुरु के पास, कहा, कहां मुझे भेज दिया? वहां मैंने कुछ भी नहीं पाया।
तो उसके गुरु ने कहाः अब तुम कहीं भी कुछ नहीं पा सकोगे। क्योंकि वह पाने वाला चित्त ही तुम्हारे पास नहीं है। मैंने तुम्हें जहां भेजा था, जान कर भेजा था। क्योंकि मुझे वहीं मिला था। एक रात मैं भी उस सराय में ठहरा था।
मैंने उस आदमी को देखा कि एक मेहमान के साथ भी उसने वही व्यवहार किया,
जो दूसरे मेहमान के साथ! मैंने देखा कि एक आदमी आया, तो जैसे वही आदमी उसके लिए दुनिया में सब कुछ हो गया! जैसे दुनिया मिट गई, वही आदमी सब कुछ हो गया! वह उसकी इस तरह सेवा करने लगा, जैसे जीवन भर से उसी की सेवा करता हो! फिर वह आदमी चला गया तो उसने लौट कर भी रास्ते पर नहीं देखा कि वह आदमी जा चुका है! दूसरा आ गया था, उसकी सेवा करने लगा!
मैंने देखा कि वह आदमी दर्पण की तरह है। उसके चित्त पर कोई तस्वीर बनती नहीं। हजारों मेहमान आए और गए; वह सराय है, वहां कोई आता है, और जाता है। लेकिन सराय का वह जो मालिक है, अदभुत है। वह किसी को पकड़ नहीं लेता। कोई पकड़ता नहीं, कोई जकड़ता नहीं। जब कोई सामने होता है तो ऐसे लगता है, जैसे इसका बड़ा प्रेम है! जीवन भर इसी को, इसी को पकड़े बैठा रहेगा। जब कोई चला जाता है, तो वह लौट कर भी नहीं देखता! वे जो उसे छोड़ कर जाते हैं, वे लौट लौट कर देखते हैं, उस सराय के मालिक को? तूने देखा नहीं, वह दर्पण जैसा आदमी है? तूने उससे कुछ पूछा नहीं?
उसने कहाः मैंने पूछा था कि सुबह उठ कर तुमने क्या किया? क्योंकि बाकी
सब तो मैंने देख लिया था। सुबह का मुझे पता नहीं था। तो उसने सिर्फ इतना ही कहा कि मैंने रात जो बरतन रख दिए थे साफ करके, उन पर थोड़ी धूल जम गई थी, उन्हें सुबह फिर साफ कर लिया!
वह फकीर, वह गुरु हंसने लगा। उसने कहाः पागल, उसने ठीक कहा। रात भी चित्त पर सपनों की धूल जम जाती है, रात भर सपने चलते हैं। सांझ साफ करके भी सो जाओ तो सपने चलते हैं। उनकी भी धूल जम जाती है। सुबह उसको भी साफ कर लिया, यही उसने कहा है।
चित्त एक दर्पण है। और चित्त एक दर्पण हो जाए, तो बस, सब हो गया।
लेकिन चित्त पर तो हम धूल इकट्ठी करते हैं। इस धूल को समझ लेना जरूरी है। और यह उतर जाती है। अतीत का बोझ है। अतीत को जाने दें। क्या प्रयोजन है उसे बांध कर रखने का? क्या अर्थ है? कौन सी सार्थकता है, उसके साथ बंधे रह जाने में? लेकिन हमें दिखाई ही नहीं पड़ता!
एक मित्र हैं, उनके घर मैं ठहरा था। आज से कोई सात साल पहले किसी युवती
से प्रेम था, उसे विवाह कर लाए। उनसे मेरी बात हो रही थी। मैंने उनसे अचानक पूछा कि आज तुम्हारी पत्नी कौन सी साड़ी पहने हुए है, बता सकोगे?
वे कहने लगे, कौन सी साड़ी पहने हुए है! नहीं, खयाल नहीं किया! दिन भर पत्नी घर में है, दिन भर उन्होंने देखा है! लेकिन वह कौन सी साड़ी पहने हुए है, वह खयाल में नहीं है!
पड़ोस की पत्नी कौन सी साड़ी पहने हुए है, यह खयाल में हो सकता है। वह अपनी पत्नी को देखने की जरूरत नहीं रह गई। उसको एक दफा देख लिया था, वह सात साल पहले! तब से वही तस्वीर काम कर रही है! सात साल में वह स्त्री रोज बदलती चली गई। रोज नई होती चली गई, लेकिन फिर उसे नहीं देखा गया! माइंडजो है, फोटो-प्लेट की तरह काम कर रहा है।
मैंने उनसे पूछाः क्या तुम यह बता सकते हो कि जब तुमने पहली दफा इस लड़की को देखा था, तब यह कौन सी साड़ी पहने हुई थी।
वे कहने लगे, वह तस्वीर बिल्कुल जिंदा है। वह मैं बता सकता हूं, उसने क्या-क्या पहन रखा था पहली बार, जब मैंने उसे देखा था। लेकिन वह सात साल पहले की बात है। वह सात साल पहले की तस्वीर बिल्कुल जिंदा है! और जब मैंने उन्हें याद दिलाया, तो उनके चेहरे पर रोशनी बदल गई! वे कुछ सोच में पड़ गए और वह खयाल में पड़ गए और कहने लगे, उसने ये-ये कपड़े पहन रखे थे! उसकी चप्पल भी बता सकते थे! उसके कान में उसने क्या पहन रखा था, वह भी बता सकते थे! लेकिन आज वह क्या पहने हुए है, उसका उन्हें कोई भी पता नहीं है!

आपको भी पता नहीं होगा, क्योंकि आज तो आपने देखा ही नहीं है। देख लिया
था एक दफे, वह तस्वीर बैठ गई है वहीं। उसी से रोज काम चला लेते हैं!
और इसीलिए तो रोज झंझट होती है। रोज जो झंझट है वह झंझट इस बात की है
कि पत्नी भी बदल गई, पति भी बदल गया! लेकिन पत्नी भी समझ रही है कि सात साल पहले जो आदमी मिला था वही वैसा ही होना चाहिए! पत्नी को पति भी समझ रहा है-- वही सात साल पहले की मांग चल रही है!
रोज कलह है, क्योंकि रोज कोई किसी को नहीं देख रहा है कि बदलाहट हो गई है!
सब कुछ बदल गया, धारा बह गई। गंगा में बहुत पानी बह गया। मांग जारी है।
वह पत्नी यह कह रही है कि पहले दिन तुमने जिस भांति मुझे प्रेम किया था, वह तुम आज मुझे प्रेम क्यों नहीं करते? वह तस्वीर जिंदा है उसी से तौल चल रही है! वह आदमी जा चुका। अब यह बिल्कुल दूसरा आदमी है। यह वही आदमी नहीं है। लेकिन दोनों ठहरे हैं अपनी पुरानी स्मृति पर! हम सब वहीं ठहरे हुए हैं। हम सब वहीं ठहरे हुए हैं। बेटा जवान हो जाता है। बाप को कभी पता नहीं चलता कि बेटा जवान हो गया है! वह वहीं ठहरा हुआ है, जब बेटा छोटा सा था। वह उसके साथ वही बातें किए चला जा रहा है जो अपने छोटे बेटे से की थी! वह अब भी उसको मारने के लिए तैयार है। बेटे की समझ के बाहर है, क्योंकि बेटे को लगता है कि वह जवान हो गया है। बाप को लगता है कि कैसा जवान, वह बेटा ही है। चीजें बढ़ गई हैं, बदल गई हैं, लेकिन बाप पुरानी तस्वीर पर रुका हुआ है!
सब हम पीछे रुके हुए हैं। सब चीजें बदल जाती हैं, सब चीजें पीछे रुकी मालूम होती हैं।
मां है। उसका बेटा नई शादी कर लाया है। उसको पता नहीं है कि लड़का जवान
हो गया, अब वह किसी एक स्त्री के प्रेम में गिरेगा! मां अपनी पुरानी ही मांग जारी किए हुए है! वह समझती है, बेटा अब भी आए, उसकी गोद में सिर रखे! अब भी आए, उसे गले मिल ले! उसकी समझ के बाहर है कि वह किसी और स्त्री की गोद में सिर रखे। किसी और स्त्री को गले लगाए। यह उसकी समझ के बिल्कुल बाहर है। इसलिए, इसलिए सास और बहू की नहीं बन पा रही। वह सब पीछे रुकी है। मां रुकी हुई है अपने बेटे के साथ, जब वह छोटा सा था। वह अब भी चाहती है कि वह आज्ञा दे, तो वह वही करे। जहां वह कहे, बैठो, वहां बैठे। जहां वह कहे जाओ, वहां जाए। जहां वह रोके, वहां रुके! उसे पता नहीं कि बेटा बड़ा हो गया है। गंगा का पानी बहुत बह गया। अब दूसरा आदमी है वहां। वही नहीं, जो उसकी गोद में लेटा था। वही नहीं, जो उसके पेट में रहा था। वह अब भी वही बातें कर रही है कि मैंने तुझे नौ महीने पेट में रखा था!
माताओं से पूछो, वे अब भी बेटों से कह रही हैं कि हमने तुम्हें नौ महीने पेट में रखा था। हमने इतने कष्ट सहे और तुम हमारे साथ यह कर रहे हो! उसे पता नहीं कि जिसको उसने पेट में रखा था, वह कोई और था। यह आदमी कोई और है। यह था ही नहीं कभी। यह बिल्कुल नया है। यह बिल्कुल दूसरा है। यह जिंदगी की धारा, यह जिंदगी की ज्योति कहीं और ले आई है। यह वह दीया नहीं है, जो उसने पेट में जलाया था। वह ज्योति बदलती चली गई, बदलती चली गई है। यह बिल्कुल दूसरा आदमी है। लेकिन हम तो नये को नहीं देख पाते, वह पुराना हमारे चित्त को पकड़े हुए है!
सारी दुनिया का एक ही कष्ट है, आदमियत की एक ही उलझन है--चाहे वह पति की हो, चाहे पत्नी की, चाहे मां की, चाहे बेटे की, चाहे दो मित्रों की; जिंदगी का एक ही उलझाव है कि हम सब पीछे रुक जाते हैं। आगे हम जाते ही नहीं! कोई कहीं रुक जाता है, कोई कहीं रुक जाता है, कोई कहीं रुक जाता है। हम वहां नहीं हैं, जहां हम हैं। हम बहुत पहले कहीं रुक गए हैं। और जहां हम रुक गए हैं, वहीं कठिनाई शुरू हो गई है। हमें होना चाहिए वहां, जहां हम हैं। फिर ध्यान में बाधा नहीं होती।
हमें होना चाहिए दर्पण की भांति असंग, चीजें बनें और मिट जाएं। असंग! असंग का मतलब अनासक्ति मत समझ लेना। असंग का अर्थ अनअटैच्ड नहीं है, असंग का अर्थ--असंग का अर्थ बहुत अदभुत है।
असंग का अर्थ हैः पूरी तरह जुड़े हुए और फिर भी नहीं जुड़े हुए।
जब किसी को प्रेम करें, तो पूरा प्रेम करना, उस क्षण में वही रह जाए, जिसे प्रेम किया है। और जितना प्रेम कर सकें, पूरा कर लेना, टोटल, क्योंकि

जितना पूरा हो सकेगा उतना ही मुक्त हो सकेंगे। जितना अधूरा रह जाएगा, उतना ही अटका रह जाएगा। उतना पीछा करेगा। फिर लौट-लौट कर पीछे की याद आएगी, उसे और प्रेम कर लेते, और प्रेम दे देते। और प्रेम ले लेते! पूरा कर लेना, जब प्रेम करें--प्रेम के क्षण में। और फिर पार हो जाना, क्योंकि जिंदगी कहीं नहीं रुकती। सब चीजें पार हो जाती हैं। फिर जब दुबारा वह सामने आ जाए तो फिर प्रेम जग जाएगा, और वह विदा हो जाएगा। तो मन खाली हो जाएगा और दर्पण बन जाएगा।
मन रोज-रोज खाली हो जाए और दर्पण बन जाए तो आदमी ने पा लिया जिंदगी का राज, पा लिया उसने परमात्मा का राज।
परमात्मा रुका हुआ नहीं है। इसीलिए तो रोज नई चीजें पैदा कर पाता है। नहीं तो रामचंद्रजी को ही पैदा करता चला जाए रोज-रोज, कृष्ण भगवान को ही पैदा करता चला जाए, आपको पैदा ही नहीं करता वह कभी। क्योंकि आप बिल्कुल नये हैं। वह तो पुरानी तस्वीरें ही पैदा करे कि देखो एक राम पैदा कर लिया। अब इसी को जैसे फोर्ड की कारें होती हैं, बस रोज वही कार निकलती चली आती है! लाख कारें, एक सी निकल आती हैं! लेकिन भगवान कुछ अनूठा मालूम होता है। जीवन कुछ अनूठा मालूम होता है। सब नया होता है वहां। वहां कुछ पुराना नहीं है। जो पौधा एक दफा पैदा हुआ, फिर दुबारा नहीं होता। एक जैसे दो पत्ते नहीं खोजे जा सकते। एक जैसे दो पत्थर नहीं खोजे जा सकते। एक जैसे दो आदमी नहीं खोजे जा सकते।
आप यूनिक हैं; किसी दिन यह पता चलेगा कि मैं अनूठा हूं। कोई मेरे जैसा
न कभी था, न कभी होगा। उस दिन कितना अनुग्रह मन में, कितना ग्रेटिट्यूड मालूम होगा। मैं अनूठा हूं। इस अंतहीन जगत में अनंत-अनंत लोग पैदा हुए हैं, लेकिन मैं कभी नहीं। और अनंत-अनंत लोग पैदा होंगे, लेकिन मैं फिर कभी नहीं।
एक-एक आदमी अनूठा है। कितनी अनुकंपा है। पुनरुक्ति नहीं हैं आप। आप दोहराए नहीं गए हैं, आप रिपीटिशन नहीं हैं। बस आप बिल्कुल आप हैं।
ईश्वर ने इतना सम्मान दिया है एक-एक आदमी को, जिसका कोई हिसाब नहीं! इस सम्मान के बदले में हम कुछ भी नहीं चुका सकते। कोई उपाय नहीं है इस सम्मान को चुकाने का। एक-एक आदमी को बनाया अद्वितीय! एक-एक पत्ते को बनाया अद्वितीय! एक-एक फूल को बनाया अद्वितीय! अद्वितीयता छाई हुई है सब तरफ। लेकिन हम, हम अपने को पुराना करने पर लगे हुए हैं! हम अपने को नया नहीं होने देते! हम कहते हैं, मैं तो वही हूं, जो कल था! हम तो कहते हैं, मैं वही हूं, जो परसों था! हम तो कहते हैं, मैं वहीं हूं, जो सदा था! मैं वही हूं, मैं बिल्कुल कंसिस्टेंट हूं। मैं बिल्कुल संगत हूं। मैं वही हूं जो कल था, मैं परसों था, मैं तरसों था, मैं वही हूं।
हम अपने को पुराना करने पर लगे हैं और भगवान हमें नया करने पर लगा है! इससे विरोध पैदा हो गया है। इस विरोध से तनाव है, बोझ है, परेशानी है। नहीं, पुराना तो नहीं हुआ जा सकता, नया ही हुआ जा सकता है।
और फिर क्यों पीछे की तरफ पड़े हुए हैं, क्यों नहीं नये हो जाते, क्यों नहीं खुल जाते उसके लिए जो है! और बंद हो जाते उसके लिए जो न हो चुका है, जो नहीं हो चुका है।
मर जाएं अतीत के प्रति। जो अतीत के प्रति मरता है, वही वर्तमान में
जीता है।
जो अतीत के प्रति नहीं मर सकता, वह वर्तमान में नहीं जी सकता।
और जीवन अभी है। जीवन वर्तमान में है। हियर एण्ड नाउ, अभी और यहीं।
अतीत के प्रति मर जाना, ध्यान की अदभुत प्रक्रिया है। यहां हम आए हैं तीन दिनों लिए तोेकम से कम एक प्रयोग करें कि मर जाएं अतीत के प्रति, भूल जाएं उसको
जो आप थे, और जानें उसको जो आप हैं। और ये दोनों चीजें बिल्कुल अलग हैं। जो
आप थे, वह आप नहीं हैं। और जो आप हैं, वह आप कभी नहीं थे। मर जाएं अतीत के प्रति। डाइंग टु दि पास्ट, वही रहस्य है, वही सिक्रेट है। अतीत के प्रति प्रतिपल मरते चले जाएं, एक-एक क्षण मरते चले जाएं। जो बीत गया बीत गया; जो
है वह है। और उस "है" में पूरे जागें। उस "है" में पूरे जीएं, तो बोझ हट जाएगा।

मत... ट्रेन में बैठे हैं, ट्रेन लिए चली जा रही है। अपने सिर पर आप किसलिए रखे हुए हैं? उसे उतार कर नीचे रख दें। इतना बड़ा सब चल रहा है। आप ही क्यों इस फिकर में पड़े हुए हैं कि मैं इस बोझ को नहीं ढोऊंगा तो पता नहीं दुनिया का क्या हो जाएगा।
मैंने सुना है, वे जो छिपकलियां मकानों पर उलटी लटकी रहती हैं, उनको यही खयाल है कि मकान उन्हीं के सहारे थमा हुआ है! अगर वे हट गईं तो मकान गिर जाएगा! पूछ लेना किसी छिपकली से, वह यही कहती पाई जाती है कि अगर हम हट गए तो मकान गिर जाएगा।
सुना है मुर्गों को, वे यही समझते हैं कि सुबह हम बांग देते हैं, इसलिए सूरज उगता है!
एक गांव में एक आदमी था। और उसके पास एक ही मुर्गा था उस गांव में उसी आदमी के पास! गांव के लोगों से उसका झगड़ा हो गया! उसने कहा कि मरो, हम अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव में चले जाएंगे। याद रखना, सूरज भी नहीं उगेगा इस गांव में।
वह आदमी अपने मुर्गे को लेकर चला गया दूसरे गांव। दूसरे गांव में उसके मुर्गे ने बांग दी। सूरज उगा, उसने कहा, अब सिर पीटते होंगे। सूरज इस गांव में उग आया। अब रोएंगे, पछताएंगे, कि मुझसे झगड़ा करके मुसीबत ले ली। सूरज इस गांव में उग रहा है, जहां मेरा मुर्गा बांग देता है, वहां सूरज उगता है!
हम सब भी इसी खयाल के लोग हैं। सारी दुनिया को उठाए हुए हैं अपने सिर पर! हर आदमी को यह खयाल है कि अगर मैं नहीं रहा तो न मालूम क्या हो जाएगा। कुछ भी नहीं होता। कुछ भी नहीं होगा। कहीं कोई पत्ता भी नहीं हिलेगा। कितने लोग रहे हैं पृथ्वी पर? आज नहीं हैं। क्या हो गया? सबको यही भ्रम रहता है! सभी यह भ्रम पालते हैं, बहुत बोझ लेकर चलते हैं अपने होने का। अपने होने का बोझ लेकर जो चलता है, वह "होने" को नहीं जान सकेगा। "होने" को जानने के लिए निर्बोझ होना जरूरी है। इसलिए पहला बोझ है अतीत का, उसे जाने दें।
दूसरा बोझ है इस बात का कि जैसे मैं ही सारी दुनिया को चला रहा हूं! हर आदमी को यही खयाल है कि मैं सारी दुनिया को चला रहा हूं! हर आदमी अपने को सेंटर माने हुए है! सारी दुनिया उसी कील पर चल रही है!
कोई भी सेंटर नहीं है। कोई भी केंद्र नहीं है। कोई भी दुनिया को नहीं चला रहा है। दुनिया चल रही है और उसमें हम चल रहे हैं। ट्रेन भाग रही है और उसमें हम बैठे हुए हैं। लेकिन यह खयाल कि मैं चला रहा हूं, पीछा नहीं छोड़ता, पीछा ही नहीं छोड़ता है!
पुरानी मैंने एक कहानी सुनी है, कि एक आदमी रोज-रोज भगवान के मंदिर में जाकर प्रार्थना करता थ कि मुझे मोक्ष चाहिए, मुझे मुक्ति चाहिए! एक दिन भगवान घबड़ा गया। उस मंदिर के भगवान घबड़ा गए होंगे, आखिर भगवान भी मंदिरों के घबड़ा जाते हैं। तो भगवान प्रकट हो गए और उन्होंने कहा कि तुझे मुक्ति चाहिए, तो अभी ले-ले।
उस आदमी ने कहाः अभी, एकदम! अभी कैसे ले सकता हूं, अभी मेरा बच्चा छोटा है। वह जरा जवान हो जाए, उसकी मैं शादी कर लूं।
भगवान ने कहाः तू इतनी देर से, तू इतने दिनों से मुझे परेशान किए हुए
है कि मोक्ष चाहिए, मोक्ष!
कि वह चाहिए जरूर मुझे, लेकिन ठीक अभी नहीं चाहिए! आगे चाहिए! आप मुझे आश्वासन दे दें। जरा लड़का बड़ा हो जाए, उसकी शादी कर लूं, क्योंकि मेरे बिना कौन उसकी शादी करेगा।
भगवान वापस चले गए। फिर उस लड़के की शादी हो गई। वह शादी करके लौटा था
घर और रात अपने कमरे में सोया था, कि भगवान प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि अब तेरे लड़के की शादी हो गई?
तो उसने कहा कि आप भी बड़ी जल्दी मचाए हुए हैं! कम से कम उसका बच्चा हो जाए, मैं थोड़ा बच्चे को खिला लूं। उसका बच्चा होगा तो कौन खिलाएगा? अभी लड़का नासमझ है। बहू नासमझ है। घर में कोई अनुभवी नहीं है। मेरे बिना कैसे बच्चा बड़ा होगा। जरा बच्चा उसका हो जाए, जरा बड़ा हो जाए, मैं बिल्कुल तैयार हूं।

भगवान वापस चले गए। निराश नहीं हुए, लेकिन आशा बांधे रखी, कि शायद फिर... फिर उसके लड़के का लड़का भी हो गया और वह लड़का बड़ा भी हो गया। फिर देखा कि अब तो वह लड़का स्कूल पढ़ने जाने लगा। भगवान फिर आए।
उस बुड्ढे ने कहाः आप क्या मेरे बिल्कुल पीछे ही पड़ गए हो! अब वह लड़का स्कूल जाने लगा है। पढ़-लिख ले, उसकी शादी कर दूं, तो सब निपट जाए। उसकी शादी हुई तो फिर मैं चलूंगा।
भगवान ने कहाः लेकिन मामला बहुत मुश्किल है। क्योंकि फिर सर्किल शुरू
हो जाएगा। उसकी शादी हुई, फिर उसका लड़का होगा।
तो उस बूढ़े ने कहाः तो फिर क्षमा करिए, फिर वह मोक्ष अभी रहने दीजिए।
जब मैं ही आऊं, आपको आने की जरूरत नहीं। मैं ही आकर बता दूंगा कि अब मुझे मोक्ष चाहिए।
हम सबको यह खयाल है कि हम चला रहे हैं! और क्यों है यह खयाल? यह इसलिए नहीं है कि हम चला रहे हैं, यह इसलिए है कि हम चला रहे हैं--इसमें बड़ा मजा आता है। लगता है कि हम कुछ हैं। यह हमारे अहंकार का पोषण है कि हम चला रहे हैं। मैं चला रहा हूं, इससे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। सच्चाई यह नहीं है कि मैं चला रहा हूं। सच्चाई सिर्फ इतनी है कि मैं चला रहा हूं, इस खयाल से "मैं" मजबूत होता है। और जितना "मैं" मजबूत होता है उतना ही ध्यान में प्रवेश असंभव है। "मैं" बोझ है।
तो दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि आप कुछ चला नहीं रहे हैं। एक बड़ी चलती हुई दुनिया के आप सिर्फ एक हिस्से हैं। एक बहुत बड़ी दुनिया के, एक बहुत बड़े जगत के, एक बहुत बड़े का.ॅजमॉस के, एक बहुत बड़े चलते हुए ब्रह्मांड के, एक बहुत बड़ी गति के आप सिर्फ एक हिस्से हैं।
अगर यह हाथ मेरा जानता हो, तो यह हाथ समझता होगा कि मैं उठ रहा हूं। जरूर समझता होगा, लेकिन इसे पता नहीं कि एक बड़े शरीर का हिस्सा है। यह हाथ अगर जानता होगा तो सोचता होगा कि मैं उठा अब। ये आंखें अगर जानती होंगी तो सोचती होंगी कि देख रही हैं। इन आंखों को पता नहीं कि आंखें नहीं देख रही हैं, एक बड़े शरीर का हिस्सा हैं। अगर मेरे पेट को पता होगा, तो वह सोचता होगा कि मैं खून बना रहा हूं, भोजन पचा रहा हूं। लेकिन पेट कुछ भी नहीं पचा रहा है। पेट एक बड़े शरीर का हिस्सा है।
यह जिंदगी इकट्ठी है। यह सारा जगत इकट्ठा है। इस इकट्ठे में हम टुकड़ों की तरह काम कर रहे हैं। लेकिन हमको यही खयाल है कि हम कर रहे है! और इससे मुसीबत हो गई है। सब हो रहा है, हम उसके एक हिस्से हैं। अगर सूरज--दस करोड़ मील दूर है, वह ठंडा हो जाए तो हम यहीं ठंडे हो जाएंगे, इसी वक्त। हमें पता ही नहीं चलेगा कि सूरज कब ठंडा हो गया है। क्योंकि पता होने के लिए भी तो हमें होना चाहिए। सूरज ठंडा हुआ कि हम ठंडे हुए। तब हमें पता चलेगा कि सूरज भी चला रहा था। वह सूरज चल रहा था, उसके साथ हम चल रहे थे। हमारी हृदय की धड़कन उस सूरज की धड़कन से जुड़ी थी। और कौन जाने कोई और दूर के बड़े सूरज, सूरज को चलाते होंगे।
क्योंकि जिंदगी एक अंतर-संबंध है, सब जुड़ा हुआ है। उस सब जुड़े में यह खयाल पैदा हो जाना कि मैं कर रहा हूं, मैं चला रहा हूं, बोझ लेना है। व्यर्थ बोझ लेना है। चलती गाड़ी में क्यों अपना पेटी और बिस्तर सिर पर रख कर बैठ गए हैं? उसे नीचे रख दें। जिंदगी चल रही है और हम भी उसमें चल रहे हैं। हम चला नहीं रहे हैं। वृहत है गति। उस गति के हम सिर्फ एक अणु मात्र हैं। ऐसी जो भाव दशा हो, उस भाव-दशा में समर्पण हो जाता है। और समर्पण, समर्पण, सरेंडर किया नहीं जाता। बस, यह समझ पैदा हो जाए, तो सरेंडर हो जाता है। समर्पण ही ध्यान है।
कुछ लोग कहते हैं कि मैं जाकर भगवान पर समर्पण कर दूंगा। वह कर दूंगा
की भाषा समर्पण कभी नहीं कर सकती, क्योंकि अगर आपने कहा, कि मैं समर्पण कर दूंगा तो आपने समर्पण को भी एक कृत्य बना लिया। एक एक्ट बना लिया, एक्ट कभी समर्पण नहीं हो सकता। एक आदमी कहता है कि मैंने जाकर भगवान के चरणों में सब समर्पण कर दिया। यह कभी कुछ नहीं हुआ, क्योंकि वह कहता है मैंने कर दिया। वह चाहे तो कल कह दे कि अच्छा वापस ले लिया। समर्पण कभी वापस लिया नहीं जा सकता। इसलिए समर्पण कभी किया भी नहीं जा सकता। समर्पण हो जाता है। समझ का परिणाम है।

अगर हम समझें जीवन की व्यवस्था को तो समर्पण हो जाएगा। वह हमें करना नहीं पड़ेगा। और वह हो जाए तो ध्यान शुरू हो जाता है।
ये दो-तीन बातें कहीं। एक तो अतीत के बोझ को समझें--उसे व्यर्थ न उठाएं। दूसरा मैं कह रहा हूं, वह कर्ता का बोझ, उसे समझें। चीजें हो रही हैं, हम कर नहीं रहे हैं।
और चीजों का कितना विराट जाल है होने का। उसके ओर-छोर का भी हमें कोई पता नहीं! पता हो भी नहीं सकता कभी। उस सब होने की विराट व्यवस्था में अपने को छोड़ दें--लेट-गो। भूल जाएं करना, भूल जाएं कर्तृत्व, भूल जाएं कर्ता, रह जाएं वही जो हैं।
और बस तब, तब कुछ हो जाएगा। वह हो जाना, हमें "वहां" पहुंचा देता है, जहां हम हैं। जहां से हम कभी नहीं हटे, जहां से हम कभी डिगे नहीं, जहां से हम कहीं गए नहीं। लेकिन उस तक पहुंचने के लिए "करने की", "होने की", सारी बोझ की स्थिति से मुक्त हो जाना जरूरी है।
अब हम प्रयोग करेंगे ध्यान का। यह सारी बात समझ लेंगे। कुछ करना नहीं
है फिर, थोड़ी देर के लिए, दस मिनट के लिए। हम सिर्फ रह जाएंगे। मैं कुछ बोलूंगा नहीं उस दस मिनट में। पहले ही कुछ बातें कह देता हूं। जैसे वृक्ष हैं, पक्षियों की आवाजें हैं, आकाश है, सूरज की किरणें हैं। इसी तरह हम भी रह जाएंगे। बस रह जाएंगे कि पड़े हैं। हैं, कुछ कर नहीं रहे हैं। विचार चलते रहें, चलते रहें; न चलें, न चलें। देखते रहेंगे चुपचाप, सुनते रहेंगे चुपचाप। आवाज सुनाई पड़ेगी।
थोड़ी दूर-दूर बैठ जाएं। कहीं भी वृक्षों की छाया में चलें जाएं। कुछ यहीं सामने होना जरूरी नहीं। कहीं भी बैठ जाएं। बातचीत कोई जरा भी न करे। चुपचाप हट जाएं। जरा भी बातचीत न करें। चुपचाप हट जाएं। और कहीं भी बैठ जाएं जहां मौज हो वहां बैठ जाएं... कहीं भी बैठ जाएं... वृक्षों की छाया में कहीं भी। कपड़े-वपड़े की फिकर न करें, बस बैठ जाएं... बैठ जाइए।
दो-तीन बातें समझ लें। बैठ कर शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ देना है, जैसे शरीर में कोई प्राण ही न हों। क्योंकि जब बड़े विराट का हिस्सा हो जाना है तो अपनी सारी अकड़ छोड़ देनी चाहिए। अकड़, वह शरीर पर अकड़ भी हमारी भीतर की मन की अकड़ का हिस्सा है। अकड़ छोड़ दें। समर्पण, हम हैं ही नहीं जैसे। एक हिस्सा हो गए--इस बड़ी प्रकृति का, इन वृक्षों का, इस जमीन का, इस आकाश का, इस हवा का, इन किरणों का। हम भी एक हिस्सा हैं। हम अलग से नहीं हैं।
छोड़ दें अपने को। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। जैसे कोई प्राण ही नहीं हैं।
हो सकता है दस मिनट में शरीर गिर जाए, तो उसकी फिकर न करें। गिर जाए तो गिर जाने दें। झुक जाए तो झुक जाने दें। अपनी तरफ से छोड़ दें। हमें कुछ भी नहीं करना है। जो होगा, होगा। हो सकता है शरीर कंपने लगे, तो कंपता रहे। हो सकता है आंसू बहने लगें, तो बहते रहें। हमें कुछ भी नहीं करना है। जो होगा हम देखते रहेंगे, जानते रहेंगे और चुपचाप बैठे रहेंगे। गिर जाएंगे तो गिर जाएंगे। अगर शरीर गिरता हो तो रोकना नहीं है। कुछ भी अपनी तरफ से नहीं करना है। जो हो जाए हो जाने देना है। और दस मिनट...
चारों तरफ पक्षी बोलते रहेंगे। हवाएं बहती रहेंगी। उनकी आवाज सुनाई पड़ेगी, हवाएं शरीर को छूएंगी। वृक्ष के पत्तों में आवाजें होंगी। वह चुपचाप सुनते रहेंगे। सब हो रहा है। हम भी इसके एक हिस्से हो गए हैं। हम हैं ही नहीं। हम अलग से नहीं हैं। इस जमीन के, इस आकाश के, सूरज की किरणों के, इन सब के हम भी एक भाग हैं। एक अंश हैं। हम अलग से नहीं हैं। फिर जो भी हो होने दें। रोना आ जाए, आंसू बहें, शरीर कंपने लगे, गिर जाए। हम हैं ही नहीं।
अब आंख आहिस्ता से बंद कर लें। जोर से नहीं, कोई जोर न पड़े। धीरे से आंख ढीली छोड़ दें। पलक छोड़ दें। बंद हो जाने दें। पलक बंद हो जाने दें। आंख बंद हो गई। शरीर को ढीला छोड़ें। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। गिरे, गिर जाए। रहे, रहे। न रहे, न रहे। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। जैसे कोई प्राण ही नहीं। ताकि हम एक हिस्सा हो जाएं। हमारी अकड़ चली जानी चाहिए। हम अलग नहीं। और फिर कुछ कोशिश नहीं करनी। जो होगा, होगा। उसे हम चुपचाप देखते रहेंगे, बस देखते रहेंगे। ठीक, आंख बंद हो गई। शरीर ढीला छोड़ दिया। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। जरा भी रेसिस्टेंस नहीं। रुकावट नहीं। हो सकता है दस मिनट में गिर जाए तो

गिर जाए। बिल्कुल ढीला--ढ़ीला--ढ़ीला... एकदम रिलैक्स छोड़ दें, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे हम हैं ही नहीं। अब कुछ भी करना नहीं है। अब कुछ भी नहीं करना है। अब बिल्कुल जानते रहना है जो हो रहा है, हो रहा है। हम भी हैं। देखें, वह पक्षी बोल रहा है। पत्तों की आवाज... हवाएं... सूरज की किरणें... बस हम भी हैं। कुछ करना नहीं है, बस हम भी हैं। जस्ट टु बी, बस हैं। ठीक अब दस मिनट के लिए मैं चुप हुआ जाता हूं। जो भी हो, हो। बस दस मिनट के लिए चुप हो जाएं। मिट जाएं... समर्पण... छोड़ दें सब...
छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें, आप हैं ही नहीं। सब हैं आप नहीं हैं। बिल्कुल मिट जाएं... छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल बह जाएं... सब हैं... आप नहीं हैं। मिट जाएं... बिल्कुल मिट जाएं... हैं ही नहीं... हवाएं हैं... सूरज है... वृक्ष हैं। श्वास चल रही है... विचार चल रहे हैं। सब है... आप नहीं हैं। छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... जैसे हैं ही नहीं... मिट जाएं और पा लें। खुल जाता है द्वार... छोड़ दें... समर्पण... बिल्कुल समर्पण। हैं ही नहीं... जो भी हो हो। कुछ करना नहीं है। जानते रहें... जानते रहें... जो भी हो रहा है... पक्षियों की आवाज है... पत्तों की आवाज है... हवाओं की आवाज है। धड़कन चल रही है... श्वास चल रही है। जो भी हो रहा है हो रहा है... जान रहे हैं... बस जान रहे हैं... कुछ कर नहीं रहे हैं...
बिल्कुल छोड़ दें... मिट जाएं... हैं ही नहीं। बस जानते रहें... होश से भरे जानते रहें। पक्षियों की आवाज सुनाई पड़ रही है... खुद की श्वास मालूम पड़ रही है--धड़कन मालूम पड़ रही है। मन भीतर भीतर मौन होता चला जाएगा... मन धीरे- धीरे बिल्कुल मौन हो जाएगा। मन शांत हो जाएगा। छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... जैसे हैं ही नहीं। शरीर एकदम शिथिल हो जाएगा... मन शांत हो जाएगा... श्वास धीमी चलने लगेगी। शरीर शिथिल हो जाएगा... मन शांत हो जाएगा। मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन बिल्कुल शांत निर्भार हो गया है... जैसे कोई बोझ न रहा... मन शांत होता चला जा रहा है। छोड़ दें... छोड़ दें... देखें... द्वार को कोई चूक न जाए... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें...
मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत होता जा रहा है... मन एक दर्पण की भांति हो गया है। पक्षी की आवाज गूंजेगी... खो जाएगी... फिर सन्नाटा हो जाएगा। मन शांत हो गया है... मन शांत हो गया है।
अब धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें... धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ मन और भी शांत हो जाएगा। धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ मन और भी शांत हो जाएगा। बहुत धीरे-धीरे आंख खोलें... बहुत धीरे-धीरे आंख खोलें। आंखें दर्पण की भांति हैं। जो बाहर है वह दिखाई पड़ेगा। धीरे-धीरे आंख खोलें... धीरे-धीरे आंख खोलें। एक-दो मिनट आंख खोल कर चुपचाप देखें। जो बाहर है उसे देखें। जो अभी और यहीं है उसे देखें... जो दिखाई पड़ रहा है... उसे चुपचाप देखें... कुछ सोचें नहीं... बस देखें। धीरे-धीरे आंख खोलें... धीरे-धीरे आंख खोल दें। देखें एक दर्पण की तरह। एक-दो मिनट चुपचाप देखते रहें...
दोपहर को साढ़े तीन बजे एक घंटा मौन के लिए हम यहां इकट्ठे होंगे। उस समय कोई बात नहीं होगी। न मैं कुछ बोलूंगा, न आप ही बात करेंगे। इसलिए दो- तीन बातें उस समय के लिए समझ लें। पहली तो बात यह है, साढ़े तीन से साढ़े चार यहीं मौन से बैठेंगे। उस मौन की तैयारी पहले से ही करके आएं। अच्छा हो कि स्नान करके आएं। कपड़े बदल कर आएं। ताजे और हलके होकर आएं। और साढ़े तीन बजे यहां मौन के लिए आना है--तो उसके आध घंटे पहले से ही बातचीत बंद कर दें, ताकि यहां आते-आते मन मौन के लिए बिल्कुल तैयार हो जाए। फिर एक घंटे वृक्षों के पास जहां भी जिसको बैठना हो, चुपचाप बैठ जाएगा। एक घंटे हम मौन में ही बैठे रहेंगे। दोनों सभाओं में मैं बात करूंगा--मौन में भी बात करूंगा। जो परिपूर्ण मौन हो जाएंगे, उन्हें कुछ समझ में आ सकता है। मौन में भी बोला जा सकता है। लेकिन एक घंटा मौन होकर प्रतीक्षा करनी है कि क्या हो सकता है। और, एक घंटे फिर कुछ भी बात नहीं है, कोई सूचना नहीं है। चुपचाप बैठे रहेंगे घंटे भर और घंटे भर के बाद उठ जाएंगे। उस मौन के समय में किसी को भी ऐसा लगे कि मेरे पास आकर दो मिनट उसे बैठना है--लगे, अपनी तरफ से नहीं, तो चुपचाप मेरे पास आकर दो मिनट बैठ जाएगा। फिर उठ कर

चला जाएगा। लेकिन लगे तो ही आना है, अपनी तरफ से सोच कर किसी को नहीं आना है। साढ़े तीन बजे...

सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई।

सम्भावनाओं की आहट
तीसरा प्रवचन

विपरीत ध्रुवों का समन्वय संगीत
(21 मार्च 1969 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि यदि मेरे कहे अनुसार प्रत्येक व्यक्ति निष्क्रिय ध्यान में चला जाए तब तो दुनिया का काम बंद हो जाएगा। तब तो सारी क्रियाएं बंद हो जाएंगी, तब तो बहुत असुविधा होगी?

इस संबंध में पहली तो बात यह समझ लेनी जरूरी है कि क्रिया उतनी ही सफल
और कुशल होती है, जितना व्यक्ति अक्रिया में होता है। अक्रिया में जाने से क्रियाएं बंद नहीं होतीं, सिर्फ कर्ता मिट जाता है। क्रियाएं तो जारी रहती हैं, सिर्फ यह भाव मिट जाता है कि मैं करने वाला हूं। और इस भाव के मिटने से दुनिया में असुविधा नहीं होगी, बहुत सुविधा होगी। इसी भाव के कारण दुनिया में बहुत असुविधा है।
प्रत्येक को खयाल है कि मैं कर रहा हूं! कर तो हम बहुत कम रहे हैं, कर्त्ता बहुत बड़ा खड़ा कर लेते हैं! उन कर्ताओं में, उनके अहंकारों में संघर्ष होता है। दुनिया में जितनी असुविधा है, वह अहंकारों के संघर्ष से पैदा होती है।
दूसरी बात, जितनी ही भीतर शांति होगी, निष्क्रिय चित्त होगा, मौन आत्मा होगी, उतनी ही वह मौन आत्मा शक्ति का स्रोत बन जाती है।
जितनी बेचैन, अहंकारग्रस्त, द्वंद्व से भरी, अशांत, तनावग्रस्त आत्मा होगी, उतनी ही शक्तिहीन हो जाती है।
हम शक्ति के पुंज नहीं हैं, क्योंकि हमारे द्वंद्व में, मन की चिंता में, अशांति में, अहंकार में, हमारी सारी शक्ति व्यय हो जाती है। अगर कोई व्यक्ति भीतर बिल्कुल निष्क्रिय और शांत हो जाए तो शक्ति का जलता हुआ अंगारा बन जाएगा, शक्ति का रिजर्वायर होगा। इतनी शक्ति होगी उसके पास कि जिसका कोई हिसाब नहीं। और चूंकि उसके कर्त्ता का अहंकार भी मिट चुका होगा, इसलिए परमात्मा की सारी शक्ति उसकी शक्ति हो जाएगी। वह जो दीवाल है--वह हट गई, अब परमात्मा की या विश्व की सारी शक्ति उससे जुड़ गई। इस शक्ति के साथ और समग्ररूपेण समर्पित वह व्यक्ति परमात्मा के हाथ में एक, एक क्रिया का स्रोत बन जाएगा।
लेकिन तब उसे ऐसा नहीं लगेगा कि मैं कर रहा हूं, तब ऐसा ही लगेगा परमात्मा कर रहा है। परमात्मा करा रहा है, ऐसा ही लगेगा कि हो रहा है, मैं नहीं कर रहा हूं।
बैलगाड़ी को चलते देखा है हमने। चाक चलता है बैलगाड़ी का, लेकिन बीच में
एक कील है जो खड़ी रहती है, चलती नहीं। उस खड़ी हुई कील पर चलता हुआ चाक घूमता है। वह कील खड़ी है, इसलिए चाक घूम पाता है। अगर वह कील भी घूम जाए तो चाक गिर जाए। वह चाक उतनी ही कुशलता से घूमता है, जितनी दृढ़ता से कील खड़ी हो। ये दोनों उलटी बातें मालूम पड़ती हैं--खड़ी हुई कील, घूमता हुआ चाक!
जितना मनुष्य भीतर निष्क्रिय होता है, उतना ही उसके जीवन की सक्रियता
का चक्र कुशलता से घूमने लगता है। भीतर आत्मा की कील खड़ी होती है और व्यक्तित्व की क्रिया का चाक घूमता है। लेकिन ऐसा नहीं लगता, कील ऐसा नहीं जानती, कि मैं घूम रही हूं। कील जानती है, चाक घूम रहा है, मैं खड़ी हूं। ध्यानस्थ व्यक्ति जानता है, मैं ठहरा हुआ हूं। मैं वह जो अंतर्तम है,
वह रुका है, वह नहीं चल रहा है, चलने का सारा प्रवाह बाहर है--चाक है, परिधि है, सरकमफ्रेंस है। वह जो सेंटर है, वह जो केंद्र है, वह मौन और चुप।
जीवन में सबसे बड़ी कला यही है कि भीतर निष्क्रियता हो और बाहर क्रिया। और जीवन का सबसे बड़ा सार-सूत्र यह है कि जीवन का विराट से स्पर्श विरोधी चीजों से निर्मित है।

एक श्वास भीतर जाती है, तत्क्षण दूसरी श्वास बाहर जाती है। श्वास बाहर गई नहीं कि फिर भीतर चली जाती है। हम कभी नहीं कहते कि हम भीतर श्वास ले रहें हैं, अब हम बाहर न ले जाएंगे। अगर हम बाहर ले गए तो भीतर कैसे ले जा सकेंगे। हम यह भी नहीं कहते कि बाहर श्वास चली गई अब हम भीतर क्यों ले जाएं। जब बाहर निकल ही गई तो निकल ही जाने दो, अब बार-बार भीतर ले जाने की क्या जरूरत। लेकिन श्वास बाहर जाती है और भीतर जाती है और इन दो विरोधी डायमेंशन में, दो विरोधी आयामों में हमारा जीवन बाहर और भीतर, बाहर और भीतर।
दिन भर हम जागते हैं, रात हम सो जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि अगर हम सो
गए तो सोना तो जागने से बिल्कुल उलटा है, तो फिर हम जागेंगे कैसे? हम यह भी नहीं कहते कि हम जाग गए तो अब हम सोएंगे कैसे, जागना तो सोने से बिल्कुल उलटा है।
जागना क्रिया है, सोना अक्रिया है।
लेकिन मजे की बात है, अगर रात भर ठीक से न सो पाए तो दूसरे दिन ठीक से जाग न पाएंगे। ठीक से जो सोता है, वह ठीक से जागता है। इसका मतलब हुआ, जो ठीक से निष्क्रिय हो जाता है रात में, दूसरे दिन सुबह उतना ही सक्रिय हो जाता है। और जो जितना सक्रिय होता है दिन में उतनी गहरी निष्क्रियता में रात चला जाता है।
जीवन विरोधों पर खड़ा है, जीवन का सारा खेल विरोध पर है। दो विरोधों को मिल कर जीवन की सारी गति है।
जब मैं कह रहा हूं कि ध्यान की निष्क्रियता में चले जाएं तो उसका अर्थ
यह नहीं है कि आप मर जाएंगे, कि आपकी क्रिया खो जाएगी। नहीं, कर्त्ता का अहंकार खो जाएगा। और जितने गहरे ध्यान में जाएंगे, उतनी ही गहरी क्रिया बाहर हो जाएगी। जितनी गहरी श्वास भीतर ले जाएंगे, उतनी ही गहरी श्वास बाहर जाएगी। भीतर की गहराई और बाहर की गहराई, हमेशा अनुपात में बराबर होती है। जो जितनी निष्क्रियता में जा सकता है, वह उतना ही सक्रिय हो सकता है।
ये वृक्ष हम देखते हैं। ये वृक्ष जितने ऊपर दिखाई पड़ते हैं आपको, उतने
ही गहरे नीचे इनकी जड़ें गई हुई हैं। जो वृक्ष आकाश की तरफ जितना ऊंचा गया है, उतना ही पाताल की तरफ उसे नीचे भी जाना पड़ा। आप कहेंगे, नीचे! नीचे और ऊंचा तो उलटे आयाम हैं! अगर नीचे चले गए तो फिर हम ऊपर कैसे जाएंगे? वृक्ष अगर कहे कि अगर मैं जड़ें नीचे ले गया तो फिर ऊपर कैसे जाऊंगा? मुझे ऊपर जाना है तो मैं नीचे नहीं जाता हूं। तो फिर याद रखना, वह वृक्ष कभी ऊपर नहीं जा सकेगा। जितना वृक्ष नीचे जाता है, उतना ही ऊपर जा सकता है। जिस वृक्ष को आकाश छूना हो, उस वृक्ष को पाताल भी छूना पड़ता है।
जितना सक्रिय होना हो, उतना ही निष्क्रिय होना जरूरी है। एक ही फर्क पड़ेगा, कर्त्ता खो जाएगा। जितनी निष्क्रियता बढ़ेगी, जितना ध्यान बढ़ेगा, जितना मौन बढ़ेगा, उतना ही कर्त्ता मिट जाएगा। क्रिया तो रहेगी, कर्त्ता नहीं रहेगा।
और जब कर्त्ता नहीं होगा तो यह कहने का कारण नहीं होगा कि मैं कर रहा हूं। तब ऐसा ही लगेगा हो रहा है। जैसे पानी गिरता है, बिजली चमकती है, नदी बहती है, ऐसा ही सब हो रहा है, ऐसा प्रतीत होगा। ऐसी प्रतीति जिस व्यक्ति को हो जाती है, जानना कि वह व्यक्ति परमात्मा को समर्पित हो चुका है। परमात्मा को समर्पण का इतना ही अर्थ है कि अपना कर्तापन खो गया। अब जो विराट क्रिया का जगत है, जो विराट सृजन चल रहा है, जो विराट गति चल रही है, उस गति के हम एक भाग और अंश हो गए, उससे हम पृथक नहीं।
इसलिए यह मत सोचें कि अगर मेरी बात मान कर सब निष्क्रिय हो जाएं तो क्या होगा! अगर मेरी बात मान कर कोई निष्क्रिय हो जाए तो जगत में इतनी क्रिया का जन्म होगा कि जिसका हमने अब तक अनुभव नहीं किया है। आज तक भी जगत में वे ही लोग सक्रिय रहे हैं, कृष्ण जैसे लोग, कितनी क्रिया है। लेकिन भीतर सब मौन। भीतर जब मौन डगमगा जाता है तो क्रिया में कुशलता नहीं बढ़ती, क्रिया अकुशल हो जाती है।
एक खलीफा था उमर। कुछ वर्षों से दुश्मन से युद्ध में लगा हुआ था। सात वर्ष हो गए थे, अनेक लड़ाइयां हुई थीं। कोई जीत नहीं हो सकी, कोई निर्णय नहीं हो सका। न उमर जीतता था, न दुश्मन जीतता था। आखिरी लड़ाई चल रही थी और

ऐसा लगता था कि कुछ निर्णायक फैसला हो जाएगा। भरी दोपहर है, उमर का दांव सफल हो गया है। दुश्मन का घोड़ा गिर गया, दुश्मन जमीन पर गिर पड़ा। उमर ने छलांग लगाई अपने घोड़े से और उसकी छाती पर सवार हो गया। निकाला भाला, उसकी छाती में छेदने को है कि उस नीचे पड़े दुश्मन ने--फिर मरता आदमी अंतिम कुछ भी कर सकता है--उमर के मुंह पर थूक दिया!
एक क्षण उमर का वह जो भाला उठा था छाती में जाने को, ठहर गया! उसके थूकते ही ठहर गया! फिर वापस भाला उसने अपने स्थान पर रख दिया! उठ कर खड़ा हो गया और अपने दुश्मन को कहा कि उठ आइए, फिर सुबह कल लड़ेंगे!
उसके दुश्मन ने कहाः पागल हो गए हो! सात वर्षों से इसी की खोज में तुम थे, ऐसे अवसर की। और इसी अवसर की खोज में मैं था। आज तुम्हें मौका मिला है, आज तुम छोड़ते हो मुझे! भाले को घुस जाने दो। क्या कारण हो गया छोड़ने का? उमर ने कहाः छोड़ता हूं, क्योंकि एक संकल्प था, एक भाव था, एक योजना थी
कि जब तक शांत हूं तभी तक लडूंगा। अशांत हो गया कि फिर नहीं लडूंगा। तुमने थूक दिया और मैं अशांत हो गया। भीतर डगमगा गया थोड़ा और मन हुआ कि भौंक दूं, तब तो मुझे लगा अब लड़ाई व्यक्तिगत हो गई। अब "मैं" आ गया। अब कर्ता आ गया। अब तक उसूल की लड़ाई थी, अब तक लड़ते थे सत्य के लिए। अब तक लड़ते थे जो ठीक था उसके लिए। अब तक मैं नहीं लड़ रहा था। अब तक एक विराट योजना का मैं एक अंग था। लेकिन तुमने थूका और "मैं" मौजूद हो गया, वह बात खत्म हो गई! अब नहीं लड़ सकता हूं। कल सुबह फिर!
क्या मतलब हुआ इसका? फिर ऐसे आदमी से कोई लड़ता? वह दुश्मन तो मित्र हो गया। वह तो पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा कि मुझे पता भी नहीं कि तुम सात वर्षों से शांति से लड़ते थे! तुम्हारे भीतर क्रोध नहीं था, वैमनस्य नहीं था, ईर्ष्या नहीं थी!
यह हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि ऐसा आदमी भी लड़ सकता है, जिसके भीतर क्रोध न हो, ईर्ष्या न हो, वैमनस्य न हो। यह हम सोच ही नहीं सकते कि ऐसा आदमी भी सक्रिय हो सकता है, जो निष्क्रिय हो। हमारे सोचने-समझने के ढंग बहुत गणित की लकीर पर चलते हैं! और जिंदगी गणित की लकीर पर नहीं चलती। जिंदगी के गणित बहुत बेबूझ हैं, वहां एकदम सीधा-सीधा कुछ भी नहीं होता। वहां बड़ी उलटी चीजें होती हैं।
असल में जिंदगी की पूरी कीमिया, जिंदगी की पूरी कैमिस्ट्री ही विरोध
पर खड़ी है। देखा होगा किसी बड़े भवन पर गोल द्वार पर मेहराब बना होता है। मेहराब बना होता है, वह मेहराब कैसे संभला होता है, कभी खयाल किया? दोनों तरफ की विरोधी ईंटें दबाव डालती हैं एक-दूसरे पर और मेहराब सम्हला रह जाता है! उस मेहराब में कोई नीचे से खंभा नहीं लगा हुआ, लेकिन दोनों तरफ से आने वाली ईंटें दबाव डाल रही हैं। दोनों में विरोध पैदा किया है आर्किटेक्ट ने। और उस विरोध पर पूरे भवन को खड़ा किया हुआ है!
जिंदगी का पूरा भवन विरोध पर खड़ा है। नींद है, जागरण है; रात है, दिन है; क्रिया है, अक्रिया है; जन्म है, मृत्यु है। वह जन्म, मृत्यु भी जीवन के मेहराब के दो विरोधी छोर हैं, जिनके दबाव से जिंदगी खड़ी है। उधर जन्म है, उधर मौत है। दोनों उलटी चीजें हैं। हम कभी नहीं पूछते कि जो जन्मता है, वह मर कैसे जाता है! क्योंकि जन्म तो उलटा है, मौत बिल्कुल उलटी है। लेकिन हम कहते हैं कि जो जन्मता है, वह मरेगा! क्योंकि जन्म एक छोर है, इससे उलटा छोर होना चाहिए, अन्यथा यह मेहराब न बनेगी जिंदगी की।
उजाला अंधेरे पर खड़ा है! अंधेरा न हो तो उजाला नहीं होगा। और रात दिन
पर खड़ी है। दिन न हो तो रात न होगी। स्वास्थ्य बीमारी पर खड़ा है। सारी चीजें बहुत उलटी चीजों पर खड़ी हैं। सारी जिंदगी उलटे दबाव से बना हुआ मेहराब है। और इसलिए मैं कहता हूं जो निष्क्रिय हो जाता है भीतर--वह बाहर बड़ी सक्रियता को उपलब्ध होता है।
लेकिन हमने ऐसे संन्यासी देखे, जो निष्क्रिय हो गए और जिंदगी से भाग गए!
तो मेरा कहना है, ध्यान रखना, वे निष्क्रिय नहीं हुए। उन्होंने निष्क्रियता को भी ओढ़ा है। वे अगर निष्क्रिय हो जाते तो क्रिया से भाग नहीं जाते। क्रिया से सिर्फ वे ही भागते हैं जो क्रिया से अधिक डरते हैं। क्रिया से वे ही भागते हैं जिनकी निष्क्रियता झूठी है। जिनकी

निष्क्रियता सच्ची है उन्हें क्रिया का भय खत्म हो जाता है। क्रिया का तूफान चलता रहे और उनके भीतर कोई अंतर पड़ने वाला नहीं। लेकिन जो डरते हैं कि क्रिया चली और उनकी निष्क्रियता टूटी, उनकी निष्क्रियता थोथी है, सम्हाली गई, थोपी गई, कल्टीवेटेड है। और इस तरह के संन्यासियों ने दुनिया में एक गलत धारणा पैदा कर दी कि जो लोग शांत हो जाते हैं, वे जिंदगी से भाग जाते हैं!
ध्यान रहे, शांत आदमी कहीं नहीं भागता, सिर्फ अशांत भागते हैं।
अशांत डरते हैं, इसलिए भागते हैं। शांत आदमी को भागने का कारण ही नहीं
रह जाता। शांत तो जहां भी खड़ा है, वहीं खड़ा रहेगा, क्योंकि शांत को और कोई कारण नहीं है, जो अशांत कर सके। अब अशांति के तूफान चलते रहें, बवंडर बाहर और भीतर की शांति अपनी जगह खड़ी होगी।
बल्कि शांत आदमी ही ऐसे बवंडरों को निमंत्रण दे देगा, ऐसे बवंडरों को बुलाएगा, बुलावा दे आएगा कि आना, क्योंकि जब भीतर शांति हो और बाहर तूफान चलते हों तो इन दोनों के विरोध में जो पुलक, जो अनुभूति उपलब्ध होती है, वह और किसी क्षण में कभी उपलब्ध नहीं होती। इन दोनों के विरोध के बीच में जैसे अंधेरी रात में बिजली चमक जाए तो वह चमक भरे दिन में चमकी हुई बिजली की चमक से बहुत भिन्न है। ठीक वैसे ही शांत चित्त हो जाए और बाहर की अशांति चारों तरफ डोलती हो तो कोई अंतर नहीं पड़ता। बल्कि उस अशांति के बीच वह शांति और घनी और गहरी और प्रगाढ़ हो जाती है। यह तो सोचना ही मत, इसलिए घबड़ाना भी मत।

एक दूसरे मित्र ने भी यही इसी संबंध में पूछा है।
उन्होंने पूछा हैः अगर लोग ध्यान में गहरे हो गए, शांत हो गए, तो घर-गृहस्थी, परिवार, दुकान, धंधा, इन सबका क्या होगा?

इन सबका अभी क्या हाल है? घर-गृहस्थी का, पत्नी का, बच्चों का, दुकान का, धंधे का अभी क्या हाल है? अभी कोई बहुत अच्छी हालत है? इससे भी बुरी हालत हो सकती है। लेकिन हम बड़े भयभीत होते हैं। इस नरक को जो हमने पैदा कर लिया है, कोई उसको परिवार कहता है, कोई धंधा कहता है! कोई कुछ और कहता है, इस पूरे नरक को भी! ये कहीं धर्म में न मिल जाएं, इससे भी बड़ी घबड़ाहट होती है। धंधा नहीं मिटेगा। और न पत्नी मिटेगी, और न परिवार मिटेगा। न बेटे और बेटियां मिट जाएंगी। लेकिन यह जो नरक हमने खड़ा किया है यह जरूर मिट जाएगा। लेकिन नये रूप प्रकट होते हैं। किसी स्त्री को प्रेम करना एक बात है
और पत्नी बना कर घर में बांध लेना बिल्कुल दूसरी बात है। घर में बांधने की चेष्टा ही इसलिए चलती है कि प्रेम नहीं है। प्रेम हो तो घर में बांधने की चेष्टा नहीं चल सकती। वह डर है कि अगर नहीं बांधा तो... और तो भीतरी कोई उपाय नहीं है कि जोड़ने वाला... तो बाहर से उपाय करने पड़ते हैं। समाज के सामने सात चक्कर लगाने पड़ते हैं और कानून की अदालत में जाकर रजिस्ट्री करवानी पड़ती है। क्योंकि और भीतर कोई जोड़ने वाला कुछ भी नहीं तो बाहर के जोड़ उत्पन्न करने पड़ते हैं, तो फिर इनके ही सहारे जीना पड़ता है।
जिस दिन दुनिया में प्रेम होगा, उस दिन पति भी नहीं होगा, पत्नी भी नहीं होगी। पति और पत्नी प्रेम के न होने के कारण हैं।
प्रेम हो तो पति पत्नी बड़े बेहूदे शब्द हैं, यह बरदाश्त योग्य नहीं है। इनसे कोई दुनिया अच्छी नहीं हो गई है, बहुत अगली, बहुत गंदी हो गई है, कुरुप हो गई है। मित्र होंगे--पति-पत्नी की क्या जरूरत? मित्र होंगे, साथ रहने वाले सहयोगी होंगे, साथी होंगे, कंपेनियन होंगे--कानून की क्या जरूरत है? अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो बीच में कानून की क्या जरूरत है? कानून की जरूरत बताती है कि प्रेम संदिग्ध है। कानून के सहारे उसको रोकने की कोशिश की जाती है। प्रेम का कोई भरोसा नहीं है, इसलिए कानून का सहारा लेना पड़ता है। जहां प्रेम संदिग्ध है, वहां कानून की जरूरत है। जहां प्रेम संदिग्ध नहीं है वहां कानून की क्या जरूरत?
तो हम बड़े डरते हैं। वह डर ठीक भी है एक अर्थ में, क्योंकि शांत हो जाएंगे तो बहुत घबड़ाहट लगती है कि यह सब जो नरक का जाल हमने बना रखा है, यह टूट जाएगा। यह टूटना चाहिए। लेकिन एक स्वर्ग बन सकता है। पति-पत्नी तो

जाने चाहिए, मित्र बचने चाहिए। अभी हम धंधा कर रहे हैं, दुकान कर रहे हैं, नौकरी कर रहे हैं, वह सब बोझ है, जबरदस्ती है। और एक आदमी को जिंदगी भर चालीस साल तक रोज एक दफ्तर में सुबह से सांझ तक जबरदस्ती बैठे रहना पड़ता है। अगर उसका दिमाग पत्थर न हो जाता हो तो कोई आश्चर्य! एक काम, जो उसका मन नहीं है करने का, चालीस साल तक एक आदमी लगातार एक काम को करता है, जो करने का उसका एक क्षण को मन नहीं है! लेकिन करता है, करना पड़ता है!
तो चालीस साल अगर किसी मस्तिष्क पर इस तरह की नासमझी और ज्यादती गुजरे, तो वह आदमी मरने के पहले ही बहुत पहले मर चुका होगा। उसके कोमल तंतु मस्तिष्क के टूट चुके होंगे। उसके हृदय ने बहुत पहले पंखुड़ियां बंद कर ली होंगी। उसके प्राण बहुत पहले मशीन हो गए होंगे। वह मशीन की तरह दफ्तर जाता है, आता है। दफ्तर आता है, जाता है--वह कर रहा है चालीस साल से! जैसे कि एक ट्रेक पर रेलगाड़ी दौड़ती रहती है, ऐसे ही बेचारा घर से दफ्तर, दफ्तर से घर दौड़ता रहता है! यह शंटिंग उसकी होती रहती है, घर से दफ्तर, दफ्तर से घर और इसको वह कहता है कि धंधा कर रहे हैं! कहीं शांत हो गए तो यह चला न जाए। शांत होने से जिंदगी जरूर दूसरी होगी। जरूर, काम काम नहीं रह जाएगा, आनंद हो जाएगा। और जब काम आनंद हो जाता है तो जिंदगी में और तरह के फूल खिलने शुरू होते हैं। लेकिन हम तो जानते नहीं किसी काम को, जो आनंद हो! हम तो सब काम जानते हैं! हम काम ही जानते हैं। काम और आनंद में हमारा कोई संबंध नहीं है। आनंद बात ही अलग है, काम बात ही अलग है।
अभी जो दुनिया हमने बनाई है, उसमें काम का आनंद से कोई संबंध नहीं है! इसलिए आदमी बरबाद होता चला गया है। आदमी की सारी की सारी आत्मा डिटेरिओरेट हुई है, पतित हुई है; पतित हो रही है, होती चली जाएगी। धीरे- धीरे हम एक मशीन पर आदमी को पहुंचा दिए हैं।
नहीं, अगर चित्त शांत होगा तो काम बोझ नहीं रह जाएगा, काम आनंद हो जाएगा। कबीर कप.ड़ा बुनता है। फिर शांत हो गया तो कपड़ा बुनना बंद नहीं हो गया, कपड़ा बुनना जारी रहा। लेकिन कपड़े की बुनावट बदल गई, कपड़े के बुनने का ढंग बदल गया। कपड़े को बुनने वाला आदमी बदल गया, कपड़े को बुनने की वृत्ति बदल गई, कपड़े को बुनने के समय का भाव बदल गया। अब कबीर बुनता भी है, नाचता भी है, गीत भी गाता है! उसके मित्रों ने कहाः अब बंद कर दो, अब अच्छा नहीं लगता कि तुम जुलाहे का काम करो।
कबीर ने कहाः कि अब जब मैं काम करने योग्य हुआ हूं, तब तुम कहते हो बंद
कर दो! अब तक तो कभी काम किया ही नहीं था, सिर्फ बोझ ढोया था, अब आनंद हो गया है काम। अब यह जो बुन रहा हूं, यह तुम्हें पता नहीं, किसके लिए बुन रहा हूं। यह राम के लिए बुन रहा हूं!
लेकिन लोगों ने कहाः राम आएंगे कहां बाजार में खरीदने, उनको हुए तो बहुत वक्त हो गया है!
कबीर ने कहाः अब राम के सिवाय कोई दिखाई ही नहीं पड़ता! अब तो जो भी आ जाएगा, वह राम! और जो भी मेरे कपड़े पहन लेगा, मैं धन्यभागी हुआ। और कैसे भगवान की सेवा कैसे करूं?
तो कबीर बुनता है कपड़ा और भागता है बाजार की तरफ! और लोग पूछते हैं कहां जा रहे हो? तो वह कहता है कि राम की तलाश में जा रहा हूं। कपड़ा बना लिया, बहुत बढ़िया बनाया है, राम पहनेंगे तो खुश हो जाएंगे। और वह बाजार में चिल्लाता है कि राम, कपड़ा ले आया हूं, कोई राम को जरूरत हो तो ले जाए, बहुत अच्छा बनाया है।
अब यह बात और हो गई, अब यह काम और हो गया। अब इस काम में और उस काम को, जिसे हम करते रहे हैं, कोई संबंध नहीं है।
काम नहीं रुक जाएगा आदमी के शांत होने से--काम रूपांतरित होगा। ट्रांसफार्म होगा, काम एक खुशी हो जाएगी।
काम एक आनंद हो जाएगा, और अभी काम एक नरक है। अभी काम से किस तरह छूट जाएं, इसी की चिंता में हम रहते हैं! काम से किस तरह बच जाएं, इसी की चिंता में हम रहते हैं! और इसी काम के लिए बड़ी घबराहट भी रहती है। कहीं यह काम-धाम सब बंद न हो जाए? वह घबड़ाहट क्यों है?
वह इसीलिए है कि काम-धाम हम बंद करना चाहते हैं। वह बंद करने योग्य है। लेकिन मजबूरी है। रोटी चाहिए, कपड़े चाहिए--पत्नी है, बच्चे हैं। वह भी

सब मजबूरियां हैं। उनको भी खिलाना है, उनके लिए भी मकान बनाना है। सब मजबूरियां हैं। पूरी जिंदगी मजबूरी है। वह एक पुलक नहीं, एक नृत्य नहीं। जरूर शांत आदमी की जिंदगी और ढंग की होगी। वह भी जीएगा यहीं, लेकिन दूसरा आदमी हो जाएगा। वह भी काम करेगा, लेकिन उस काम करने में सब कुछ बदल जाएगा। वह काम भी उसका प्रेम हो जाएगा। वह काम भी उसकी सेवा बन जाएगी। वह काम भी उसकी पूजा और प्रार्थना हो जाएगी।
मुझे ऐसा नहीं लगता कि शांत आदमी दुनिया में बढ़ेंगे तो दुकानें कम हो जाएंगी, शांत आदमी बढ़ेंगे तो दुकानें दुकानें नहीं रह जाएंगी। एक बात जरूर है, दुकानें तो कम नहीं होंगी, लेकिन शांत आदमी बढ़ जाएं तो मंदिर, मस्जिद, गुरु, संन्यासी, साधु, ये कम हो जाएंगे। क्योंकि इनके पास अशांत आदमी जाते हैं। इनके पास कोई शांत आदमी किसलिए जाएगा। गुरूडम चली जाएगी, एक दुकान बंद हो जाएगी। गुरुओं की दुकान बंद हो जाएगी। और कोई दुकान बंद होने का कोई कारण नहीं है। मंदिर-मस्जिद जरूर बंद हो जाएंगे। उनमें फिर कोई नहीं जाएगा। क्योंकि जब पूरी जिंदगी मंदिर मालूम पड़ने लगे तो कौन मंदिरों में जाएगा। वह तो पूरी जिंदगी नरक मालूम पड़ती है तो गांव में एक मंदिर बनाते हैं।
वह गांव में मंदिर इस बात का सबूत है कि पूरा गांव मंदिर नहीं बन पाया। हम ऐसे समाज निर्मित नहीं कर पाए जहां पूरा गांव मंदिर होता। तो अपना मन समझाने को एक मंदिर बनाया हुआ है। गांव पूरा नरक है। उसमें एक मंदिर बना है। अब नरक में मंदिर बन सकता है? और नरक में रहने वाले मंदिर बना सकते हैं? और नरक में रहने वाले दान करके मंदिर खड़ा कर सकते हैं? आखिर नरक के रहने वाले जो बनाएंगे, वह नरक ही होगा। तख्ती भर मंदिर की
हो सकती है। नरक में रहने वाले लोग जो भी बनाएंगे वह नरक होगा। इसीलिए हमारे मंदिर-मस्जिद भी सब नरक के स्थान हैं। हमारे तीर्थ सब नरक के स्थान हैं। हम बनाते हैं, और हम जो भी बनाते हैं, वह नरक हो जाता है! हम जो भी छूते हैं, वह नरक हो जाता है! जब हम अपने घर को भी स्वर्ग नहीं बना पाए, जब हम अपने बच्चे और पत्नी के संबंध को स्वर्ग नहीं बना पाए, तो हम इन सब नरक बनाने वाले लोग मिल कर एक मंदिर बना लेंगे गांव में? वहां बनाएगा कौन उसे? हम ही बनाएंगे न? हमारी काली छाया उसको भी घेर लेगी।
नहीं, एक दिन ऐसा हो सकता है कि लोग शांत होते चले जाएं तो पूरा गांव मंदिर हो जाए। और जब कोई पूछे उस गांव में आकर कि मंदिर कहां है, तो हमें हैरानी हो जाएगी कि कहां बताएं, क्योंकि पूरा गांव ही मंदिर है।
पूरा गांव मंदिर हो सकता है, इसलिए मैं मंदिरों के खिलाफ हूं।
लेकिन हमें अब तक ऐसी बातें समझाई गई हैं कि जो आदमी शांत हो जाएगा-- धंधा छोड़ देगा, पत्नी छोड़ देगा, बच्चे छोड़ देगा, भाग जाएगा। और भाग कर क्या करेगा फिर? फिर एक आश्रम बनाएगा, फिर शिष्याएं इकट्ठी करेगा, शिष्य इकट्ठे करेगा, बेटे-बेटियां जोड़ेगा, फिर एक नई दुकान, फिर एक नया घर बनाएगा! वह सब चलेगा।
आखिर भाग कर जाएगा कहां? यह आदमी जिस तरह का आदमी है, यह करेगा क्या?
यह एक दुकान छोड़ेगा, दूसरी दुकान बनाएगा। यही आदमी बनाएगा न, फिर यह जाएगा कहां? यह जंगल में जाएगा तो वहां दुकान करेगा!
आदमी बदलना है और अब तक हमने स्थान बदलने की चेष्टा की है! आज तक मनुष्य-जाति के इतिहास में हमने स्थान और परिस्थिति बदलने की फिकर की है! आदमी नहीं बदलता। आदमी नहीं बदलता, वह आदमी फिर जाकर दूसरी जगह, फिर वही स्थिति बना लेता है!
मैंने सुना है कि एक आदमी ने अपने जीवन में, अमरीका में आठ विवाह किए। पहले विवाह को करने के छह महीने बाद वह घबड़ा गया। छह महीने भी लंबा वक्त है, छह दिन में ही घबड़ाहट शुरू हो जाती है! छह महीने में वह घबड़ा गया और परेशान हो गया और उसने कहा, यह कहां की गलत औरत मिल गई! औरत ने सोचा होगा, कहां का गलत आदमी मिल गया!
फिर उसने तलाक दे दिया। फिर उसने दूसरी बार बहुत खोज-बीन करके विवाह किया, बहुत जांच-पड़ताल की। अब वह पहली ही दृष्टि में प्रेम में नहीं पड़ गया। पहली दफा भूल हो चुकी थी। अनुभवी था, उसने बहुत सोच-विचार करके बहुत खोज-बीन करके विवाह किया।

लेकिन दो महीने बाद पाया कि यह औरत फिर वैसी औरत साबित हुई, जैसी पहली थी! वह बहुत परेशान हुआ, उसको भी तलाक दिया!
उसने आठ बार विवाह किए और आठवीं बार उसे यह समझ में आई कि हर बार विवाह
तो मैं ही करता हूं। हर बार स्त्री तो मैं ही चुनता हूं। हर बार खोज तो मैं ही करता हूं। और मैं जैसा आदमी हूं, मैं फिर वही औरत ढूंढ लाता हूं, जैसी पहली थी! यह आदमी, यह माइंड, आखिर यह ही चुनने जाएगा न बाजार में फिर। तो यह लाएगा कहां से! इसकी समझ, इसकी पसंद, इसकी पकड़ वही है! वह तो बदलती नहीं, वह फिर उसी औरत को पकड़ कर ले आता है!
जहां-जहां, जिन-जिन मुल्कों में तलाक विकसित हुए हैं, वहां एक अदभुत अनुभव हुआ। और वह अनुभव यह है कि हर बार आदमी फिर उसी तरह के संबंध जोड़ लेता है, जैसे उसने पहले जोड़े थे! इसलिए आप बहुत चिंतित मत होना कि हमें यहां तलाक की सुविधा नहीं। तो आप कोई बहुत नुकसान में नहीं हैं। एक सा ही मामला है। वह स्त्री बदल जाती है, आदमी बदल जाता है। लेकिन फिर उसी तरह का आदमी स्त्री खोज लाता है! वह खोजने वाला नहीं बदलता न! असली सवाल तो खोजने वाले की बदलाहट का है।
लेकिन हमेशा ऐसा हुआ है। तलाक वालों ने ऐसा किया नहीं है, संन्यासी भी यही करते हैं! एक घर छोड़ कर भाग जाते हैं लेकिन कभी नहीं पूछते कि मैं तो आदमी वही का वही हूं, मैं जा कहां रहा हूं, तो मैं जहां पहुंच जाऊंगा, मैं फिर न्यूक्लियस बन जाऊंगा, फिर वही चीज खड़ी कर लूंगा, जो मैं यहां से छोड़ कर गया था। नाम बदल जाएंगे, लेकिन फिर वही होगा! फिर वही होने वाला है! वह जो आदमी भाग कर जा रहा है, वह जिस तरह का मस्तिष्क है, जिस तरह का मन है-- उसके पास वही मन तो फिर अपने चारों तरफ नया संसार रचेगा। वह फिर वहां वही बना लेगा। बचना मुश्किल है, अपने से बचना मुश्किल है, इसलिए भाग कर जाइएगा कहां?
मेरा कहना है, अब तक जो धर्म दुनिया में विकसित हुए, उन्होंने एस्केपिज्म सिखाया, भागना सिखाया, पलायन सिखाया, लेकिन परिवर्तन नहीं। और असली सवाल है कि आदमी बदले। और वह बदल ध्यान से आती है, शांति से आती है, भीतर शून्य और मौन से आती है। वह बदल आ जाए तो जिस घर में आप हैं, वह घर और तरह का घर हो जाएगा, क्योंकि उसको बनाने वाला आदमी बदल गया है, उस घर को और होना ही पड़ेगा।
महावीर के जीवन में बहुत अदभुत उल्लेख है। महावीर युवा हुए और उन्होंने अपनी मां को और अपने पिता को कहा कि मैं संन्यासी हो जाना चाहता हूं। तो महावीर की मां ने कहा कि मेरे जीते जी दुबारा अब यह बात मेरे सामने मत रखना। यह हमारे सामर्थ्य के सुनने के बाहर है। यह मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि मेरा बेटा और संन्यासी हो जाए। जब मैं मर जाऊं, तब तुम इस तरह की बात सोच सकते हो, उसके पहले नहीं।
महावीर बड़े अदभुत आदमी रहे होंगे। अगर और संन्यासियों से जाकर पूछें
तो उनको हैरानी होगी कि कच्चे संन्यासी रहे होंगे। महावीर राजी हो गए, मां से बोले कि ठीक है।
हमको भी लगेगा कि आदमी कैसा है! अरे कहीं संन्यास ऐसे छोड़ा जाता है कि मां ने कह दिया तो कहेंगे ही लोग! मां कहेगी, पत्नी कहेगी, बेटे कहेंगे, बाप कहेगा कि नहीं-नहीं, मत जाओ। ऐसे कहीं संन्यासी कोई हो सकता है? पहली तो बात यह कि संन्यासियों को पूछना नहीं चाहिए, चुपचाप भाग जाना चाहिए, क्योंकि पूछने का मतलब है, झंझट पड़ेगी। और फिर ऐसा मान लोगे तब तो संन्यास हो गया!
लेकिन महावीर मान गए! उन्होंने मां से कहा कि ठीक है। भाग्य की बात, दो साल बाद मां और पिता दोनों की मृत्यु हो गई। पिता को दफना कर लौटते थे तो अपने बड़े भाई से महावीर ने कहा--रास्ते में ही अभी मरघट से लौटते हैं-- रास्ते में कहा, कि अब मैं संन्यासी हो जाऊं? क्योंकि मां और पिता का कहना था कि जब तक वे हैं, बात न करूं तो मैंने बात नहीं की।
भाई ने छाती पीट ली कि तुम पागल हो गए हो। हमारे ऊपर इतनी मुसीबत पड़ी
है कि मां-बाप चल बसे और तुम्हें संन्यास की आज ही सूझी! मेरे जिंदा रहते बात मत करना और महावीर राजी हो गए कि ठीक है!

अब यह भी कोई संन्यासी रहे होंगे! संन्यासियों से पूछें तो वे कहेंगे
यह तो गड़बड़ आदमी है। यह संन्यासी नहीं है। लेकिन महावीर अदभुत आदमी थे, वह राजी हो गए! एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीता, फिर महावीर ने नहीं कहा कि मुझे संन्यास लेना है। बात खत्म हो गई। भाई कहते हैं, जब तक वे हैं, तो ठीक है। लेकिन दो वर्ष बीतते-बीतते घर के लोगों को ऐसा लगा कि महावीर हैं तो
घर में, लेकिन ना के बराबर हैं। वह घर में नहीं हैं! वह थे और नहीं थे! और घर के लोगों को लगा कि उनकी मौजूदगी पता पड़नी ही बंद हो गई है। महीनों बीत जाते, और ऐसा नहीं लगता कि वे घर में हैं! वह न किसी बात में दखल देते हैं, न वह कोई आग्रह करते हैं, न वह कोई मांग करते हैं। वह ऐसे हैं, जैसे एक छाया की तरह चुपचाप--कब निकल जाते हैं घर के बाहर, कब घर के भीतर आ जाते हैं, कब सो जाते हैं, कब उठ जाते हैं--उनका होने न होने का कोई सवाल ही नहीं रहा! घर के लोगों ने उनके बड़े भाई को कहा कि महावीर तो संन्यासी हो गया। भाई ने भी कहा कि मैं भी हैरान हूं, ऐसा लगता ही नहीं कि वह घर में है या नहीं। अब उसे रोकने से क्या फायदा? अब कोई मतलब नहीं रहा रोकने का। हम सोचते थे हमने रोक लिया है, लेकिन वह तो जा चुका है! तो घर भर के लोगों ने इकट्ठे होकर महावीर से कहा कि आप तो जा ही चुके हैं, तो अब हमें रोकने में कोई अर्थ नहीं है, अब आपकी जैसी मर्जी। और महावीर घर से चल पड़े!
यह महावीर जीवन भर भी न जाते, कि इससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता था। यह घर
से जाना, न-जाना बिल्कुल गौण बात थी, इसमें कोई अर्थ नहीं था। असली अर्थ अपने रूपांतरण का था, वह हो गया था। अब यह घर और बाहर बराबर थे।
महावीर को मानने वाले कहते हैं कि महावीर ने घर छोड़ा! सरासर झूठ कहते हैं। महावीर ने घर कभी छोड़ा ही नहीं। महावीर को घर छोड़ने के पहले, घर और बाहर सब बराबर हो गया। घर के लोग कहते थे, रहो, तो रहते थे। घर के लोगों ने कहा, चले जाओ तो चले गए! ऐसा हुआ।
महावीर को न जिद्द थी कि मैं जाऊं, न जिद्द थी कि मैं रहूं। ऐसा अनाग्रह का भाव था। ऐसे अनाग्रह का नाम ही अहिंसा है। यह भी हिंसा है कि मैं कहूं कि मैं जाऊंगा। और यह भी हिंसा है कि कहूं कि मैं यहीं रहूंगा। यह आग्रह, दबाव है और महावीर ने सब दबाव छोड़ दिया, वह हवा की तरह हो गए। घर के लोगों को ही लगा कि अब बेकार क्यों रोकना है! वह है ही नहीं घर में। वह कभी का जा चुका है सिर्फ शरीर रह गया है। आत्मा जा चुकी है। क्या फायदा है, अब हम क्यों बाधा बनें। उन्होंने कहाः कि ठीक है, अब आप जाएं। तो वह चल पड़े! यह है संन्यास, यह है व्यक्ति का रूपांतरण।
अब यह आदमी कहीं भी चला जाए--अब इसे वेश्या के घर में ठहरा दो तो दिक्कत नहीं है, क्योंकि अब इसे कहीं कठिनाई ही न रही। यह आदमी ही बदल गया। यह आदमी स्थान नहीं बदल रहा है, यह आदमी ही बदल गया है!
मैं जो बात कर रहा हूं शांति की, मौन की, ध्यान की, वह व्यक्ति के रूपांतरण की कीमिया और प्रक्रिया की बात है, उससे सब कुछ बदल जाएगा।
उस बदले हुए आदमी के आस-पास का सब बदल जाएगा, क्योंकि उसकी देखने की दृष्टि बदल जाएगी। वह करेगा काम; चलेगा, उठेगा, बैठेगा! नहीं, लेकिन अब वह दूसरा आदमी हो गया। इसलिए उस पुराने आदमी ने जो दुनिया बनाई थी, यह उस दुनिया में नहीं जीएगा, यह नई दुनिया बनाएगा। इसकी मौजूदगी--नई दुनिया का निर्माण शुरू हो जाएगा। यह आदमी दुकान पर भी बैठ सकता है, यह क्या कठिनाई है!
और जब तक ऐसे आदमी दुकान पर नहीं बैठेंगे, तब तक दुनिया स्वर्ग नहीं
बन सकती। यह आदमी पिता हो सकता है, यह आदमी भाई हो सकता है, बेटा हो सकता है। इस तरह का व्यक्तित्व पत्नी हो सकता है, मां हो सकता है। लेकिन जब तक इस तरह के लोग मां, बेटे, पत्नी और बाप नहीं बनेंगे, तब तक दुनिया स्वर्ग नहीं हो सकती।
हमने काफी, काफी उपद्रव मचा रखा है। हम अशांत हैं, इसलिए स्वाभाविक है
कि हम उपद्रव मचाएंगे। अशांत आदमी दुनिया बसाए हुए हैं! अशांत आदमी विवाह कर रहे हैं! अशांत आदमी अदालतें चला रहे हैं! अशांत आदमी राष्ट्रों के मालिक बने हैं! घरों में पति थोड़े ही हैं, राष्ट्रपति भी हैं! सब चल रहा है, लोगों का--बिल्कुल रोग चल रहा है। और कोई स्त्री इनकार नहीं करती कि हम राष्ट्रपति को बरदाश्त नहीं करेंगे। कोई स्त्री कुछ कहती नहीं। हालांकि

कोई स्त्री अगर बनेगी, और राष्ट्रपत्नी कहा जाए तो राजी नहीं होगी। राजी नहीं होगी बिल्कुल भी--हम राष्ट्रपत्नी नहीं कहला सकते। वह तो किसी दिन अगर बनी स्त्री तो उसको राष्ट्रपति ही कहना पड़ेगा। राष्ट्रपत्नी कहलाने में कोई स्त्री राजी नहीं होगी। लेकिन राष्ट्रपति के लिए कोई स्त्री नाराज नहीं होती, कि राष्ट्रपति कैसे बना हुआ है। पुरुषों का हक है दुनिया में, इसलिए सब चल रहा है--और यह चल जाता है।
हम रोगग्रस्त, अशांत लोगों ने जो जगत बनाया है, वह जगत बदल जाए, उतना
ही अच्छा है। लेकिन वह जगत बदलेगा ही ऐसे कि वह रोगग्रस्त व्यक्ति बदले, अन्यथा, अन्यथा फिर हम उसी तरह का जगत बना लेंगे। ऐसे ही हुआ है।
रूस ने बदलाहट की और कुछ बदलाहट न हुई। ऊपरी बदलाहट हुई, भीतरी कोई बदलाहट न हुई, क्योंकि वही रोगग्रस्त व्यक्तियों ने बदलाहट की! फिर वे ही रोगग्रस्त व्यक्ति ऊपर बैठ गए! फिर वही सबका सब सिलसिला वही शुरू हो गया, जो था! पुरानी हालत बदली, गरीब-अमीर के बीच का फासला कम हुआ, लेकिन नए फासले खड़े हो गए--सत्ताधिकारी के और गैर-सत्ताधिकारी का फासला उतना ही हो गया, जितना फासला गरीब का और अमीर का था। जो कल मालिक था, वह आज मैनेजर हो गया! तो नाम बदल गए, बात वही रही!
लेकिन हम नाम बदल लेने को बहुत काम समझ लेते हैं! कोई अपना गृहस्थाश्रम छोड़ कर आश्रम बना लेता है जाकर तो हम कहते हैं, कि बदलाहट हो गई! नाम सिर्फ बदलता है, कहीं कुछ बदला नहीं। घर की जगह आश्रम लिख दिया और बदलाहट हो गई!
हमारी बुद्धि ऐसी ही चीजों पर अटकती है! चीजें ऐसे ही हम बदल लेते हैं। एक आदमी सफेद कपड़े पहने हैं, तो हम कहते हैं गृहस्थ है! और उसने कल गेरुआ वस्त्र पहन लिए, तो हमने कहा स्वामी जी, संन्यासी हो गए! हम बिल्कुल पागल हैं, हमें कुछ बुद्धि में थोड़ा भी कुछ नहीं सूझता है कि हम यह क्या कर रहे हैं, हम यह क्या खेल रचा रहे हैं! एक आदमी ने गेरुआ वस्त्र पहन लिए, वह संन्यासी हो गया!
पहली तो बात यह है कि जो आदमी वस्त्र बदलने को संन्यास समझता है, वह ईडियट है, स्टुपिड है, जड़ है। बुद्धि नाम की चीज उसके पास नहीं है। क्योंकि बदलना ही था तो कपड़े बदलने को सूझे उसे! इससे ज्यादा व्यर्थ बात बदलने की और कुछ हो नहीं सकती। यह उसको सूझी, वह तो जड़बुद्धि है। और हम जड़बुद्धि हैं कि उसकी सूझ को हम भी नमस्कार कर रहे हैं कि यह बहुत-बहुत बड़ा महान कार्य किया तुमने--कि तुमने गेरुआ वस्त्र पहन लिए! हम चीजें बदल रहे हैं, नाम बदल रहे हैं, स्थान बदल रहे हैं, यह सब हम कर रहे हैं! लेकिन, लेकिन वह जो व्यक्ति है भीतर उसे बदलने की कोई चिंता ही नहीं! उसको बदलने का द्वार ध्यान है।

ध्यान पर एक-दो प्रश्न और, संक्षिप्त। फिर हम रात के ध्यान के लिए बैठेंगे।
एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान कोई विधि नहीं है क्या? कोई मेथड?

इसे थोड़ा समझना जरूरी है। ध्यान कोई विधि नहीं है। हमारी भाषा की तकलीफ है बहुत ज्यादा। हमारी भाषा के साथ बहुत मुश्किल है। क्योंकि जो भाषा हमने विकसित की है, वह बहुत कामचलाऊ बातों के लिए की है, वह ध्यान जैसी बातों के लिए नहीं की है।
तो ऐसा लगता है कि ध्यान भी कोई विधि है। ध्यान कोई विधि नहीं है। विधि तो हमेशा क्रिया की होती है। कोई क्रिया करनी हो तो उसका मेथड होता है, विधि होती है। अब अक्रिया की विधि कैसे हो सकती है। सब विधियों का छोड़ देना। अक्रिया की कोई विधि नहीं हो सकती। क्रियाओं की विधि हो सकती है-- ऐसे करो, ऐसे करो, ऐसे करो। लेकिन जहां न-करने का सवाल है, वहां विधि कैसे होगी! इसलिए ध्यान कोई विधि नहीं है। और इसलिए यह भी मत पूछें कि ध्यान की कितनी विधियां होती हैं? और यह भी मत पूछें कि ध्यान के कितने प्रकार होते हैं। और यह भी मत पूछें कि फलां गुरु एक तरह की विधि सिखाते हैं और फलां गुरु दूसरे तरह की विधि सिखाते हैं। गुरुओं को रहना है तो विधियां सिखानी

पड़ेंगी। उसकी वजह से ध्यान में गति नहीं होती, उसकी वजह से गुरुडम मजबूत होती है।
ध्यान की कोई विधि नहीं है। ध्यान तो विधि-शून्यता है।
इस बात को चूंकि मैंने कल भी कहा--अक्रिया है, नो-एक्शन है। वहां कुछ करना नहीं है, सब करना छोड़ देना है। करना छोड़ देना है।
जैसे मैं यह मुट्ठी बांधे हुए हूं। और कोई मुझसे पूछे कि मुट्ठी खोलने की विधि क्या है? तो पूछता तो ठीक है, लेकिन मैं उससे कहूंगा कि मुट्ठी बांधने की विधि थी, खोलने की कोई विधि नहीं होती। वह जो बांधने की विधि कर रहा हूं, वह भर न करूं, मुट्ठी खुल जाएगी। मुट्ठी खुलने की कोई विधि नहीं होती, बांधने की विधि होती है। बांधना एक क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है। खुला हुआ हाथ स्वभाव है, हाथ अपने आप खुला हुआ है। बांधते हम हैं, बांधना हमारा काम है। खुला होना, हाथ की स्वाभाविक दशा है। हम न बांधेंगे हाथ खुल जाएगा।
इस वृक्ष की शाखा को हम नीचे पकड़ कर खींच दें और फिर कोई मुझसे पूछे कि इसको इसकी जगह पर वापस पहुंचाने की कोई विधि है? तो उससे कहेंगे, कोई विधि नहीं है। आप कृपा करके इसको रोकने की जो विधि कर रहे हैं, वह भर न करें। आप छोड़ दें, यह अपनी जगह पहुंच जाएगी।
यह बेचैन है शाखा अपनी जगह पहुंचने को। यह चिल्ला रही है कि मुझे छोड़
दो, मैं अपनी जगह पहुंच जाऊं। और आप उसे पकड़े हुए हैं खींच कर। खींच कर पकड़ना एक विधि है। छोड़ना कोई विधि नहीं है। हालांकि भाषा में छोड़ना भी क्रिया मालूम पड़ती है, लेकिन छोड़ना क्रिया नहीं है। छोड़ने का मतलब है कि जो पकड़ने की क्रिया आप करते थे, अब नहीं कर रहे हैं। छोड़ना हो गया। छोड़ना निगेटिव है, छोड़ना पाजिटिव नहीं है। पकड़ना पाजिटिव है। पकड़ने में आपको कुछ करना पड़ा है। छोड़ने में आपको कुछ करना नहीं है, बल्कि जो आप कर रहे थे, वह भी नहीं करना है और शाखा अपनी जगह पहुंच जाएगी। प्रत्येक चीज--अपने स्वभाव में पहुंचने को आतुर है। प्रत्येक चीज अपने स्वभाव में होना चाहती है।
अगर ध्यान से समझें तो धर्म की जो प्यास है दुनिया में, उसका और कोई कारण नहीं है। धर्म की प्यास का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव में जाने को आतुर है। और जब तक दुनिया अपने स्वभाव में नहीं पहुंचती, तब तक धर्म की जरूरत बनी रहेगी। जिस दिन लोग स्वभाव में पहुंच गए, धर्म बेमानी हो जाएगा। धर्म की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी।
हम अपने स्वभाव से च्युत हैं, हम अपने स्वभाव से कहीं इधर-उधर भटक रहे हैं और इसलिए बेचैनी है। यह जो अशांति है, वह यही है कि हम अपने स्वभाव में नहीं हैं। वह हम वही नहीं हैं जो हम होने को हैं। हमें कहीं कुछ खींचा, ताना गया है। हम कहीं खिंचे हुए हैं।
हम वह नहीं हैं जैसे होकर हम एट ईज, सरल हो जाएंगे। यह शाखा को देखें। अपनी जगह होकर कैसी शांत हो गई। इसे जरा खींचें और बेचैनी इसकी सारे रग-रेशों में दौड़ जाएगी, इसका स्नायु-स्नायु खिंच जाएगा। सारे वृक्ष के प्राण कंपकंपाने लगेंगे। दूसरी शाखाएं भी हिलने लगेंगी, इसको अपनी जगह से खींचेंगे--पूरे वृक्ष के प्राण कठिनाई में पड़ जाएंगे। जड़ों तक खबर पहुंच जाएगी कि कुछ गड़बड़ हो गई, कहीं कुछ खिंचाव, कहीं कोई तनाव है! लेकिन छोड़ दें, शाखा अपनी जगह पहुंच जाएगी; वृक्ष निश्चिंत हो जाएगा, मौन हो जाएगा, ठहर जाएगा। अपने को खोज लेगा।
हम सब खिंचे हुए शाखाओं के लोग हैं, अलग-अलग तरफ खिंचे जा रहे हैं! सब एक-दूसरे को खींच रहे हैं! जिनको हम संबंधी कहते हैं, उनसे एक ही संबंध है हमारा, एक-दूसरे की शाखाएं खींचो! संबंधी का मतलब रिलेशनशिप इतनी हमारी है कि एक दूसरे को खींचो सब तरफ से। बाप बेटे को खींच रहा है, बेटे बाप को खींच रहे हैं, सब एक-दूसरे को खींच रहे हैं! यह जो खिंचा हुआ पूरा का पूरा समाज है, इसमें हम सब एक-दूसरे को च्युत कर रहे हैं, अपनी जगह से! हम खुद भी च्युत हैं और इसलिए इतनी अशांति, इतना तनाव, इतनी टेंशन, इतनी एंक्झाइटी है। इतनी चिंता है।
ध्यान का मतलब हैः अपने स्वभाव में होना, अपने में होना, अपने घर लौट आना। यह बड़ी कठिनाई की बात है।

मैंने सुना है, एक आदमी एक दिन शराब पी लिया बाजार में जाकर। शराब पीकर लौटा अपने घर। किसी तरह टटोलता हुआ घर पहुंच गया, लेकिन नशे में था। घर पहचान में नहीं आता था, तो वह सीढ़ियों पर बैठ कर चिल्लाने लगा जोर-जोर से कि कोई मुझे मेरे घर पहुंचाओ। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए, उसे हिलाने लगे, कहने लगे क्या हो गया, पागल हो गए हो, घर में बैठे हुए हो! पर वह आदमी चिल्लाने लगा--मुझे व्यर्थ मत समझाओ, मुझे मेरे घर पहुंचा दो, मेरी मां मेरी राह देखती होगी। नींद खुली मां की आधी रात, दरवाजा खोल कर बाहर आई, उसके सिर पर हाथ रख उससे कहने लगी, बेटा, घर के भीतर चल, तुझे हो क्या गया है!
वह कहने लगा, कोई मुझे घर पहुंचा दे। मेरी मां मेरा रास्ता देखती होगी। मेरा घर कहां है? मुझे मेरे घर पहुंचा दो। अब गांव में सब सेवक तरह के लोग भी होते हैं, कोई सेवक भी थे गांव में, वे गाड़ी ले आए। उन्होंने कहा, बैठ जा इस पर, हम पहुंचा देंगे!
पड़ोस के दूसरे लोगों ने कहा, पागल, अगर गाड़ी में बैठा तो घर से दूर निकल जाएगा; क्योंकि घर पर तू मौजूद है; अब तू कहीं भी गया तो घर से दूर चला जाएगा। तू कहीं जाना ही मत, किसी नेता के चक्कर में मत पड़ना, किसी गुरु के चक्कर में मत पड़ना, किसी गाड़ी वाले की बातों में मत आ जाना। क्योंकि गाड़ी में बैठ गया तो और दूर निकल जाएगा। तू अपने घर पर ही है, तुझे कहीं जाना नहीं है, तुझे सिर्फ होश में आना है। तुझे कहीं जाना नहीं है, तुझे सिर्फ होश में आना है। तू होश में आ जाएगा तू पाएगा तू अपने घर में है।
हम खिंचे भी नहीं हैं वस्तुतः, सिर्फ बेहोशी में खिंचे हुए का खयाल है। होश आ जाए, हम पाएंगे, हम अपनी जगह हैं। हम वहीं हैं जहां हम हैं और जैसे ही यह पता चलता है कि हम अपने घर में हैं, एक शांति सारे जीवन पर छा जाती है।

इस संबंध में एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि सब अपने स्वभाव के अनुसार करें--तो चोर चोरी करेगा, हत्यारा हत्या करेगा, बेईमान बेईमानी करेगा! आपकी बात मान लेंगे तो सब दुनिया में नीति, धर्म, अनुशासन सब गड़बड़ हो जाएगा?

अभी पता ही नहीं है आपको कि चोर का स्वभाव चोरी करना नहीं है। यह कभी सोचा? चोर चोरी करता है, स्वभाव में न होने के कारण। हत्यारा हत्या करता है, स्वभाव में न होने के कारण। स्वभाव में किसी ने न तो कभी चोरी की है, और न कभी किसी ने हत्या की है। स्वभाव में ही कोई व्यक्ति धर्म में जीता है। अगर चोर अपने स्वभाव में चला जाए तो चोरी नहीं कर पाएगा, क्योंकि चोरी करने के लिए स्वभाव के बाहर जाना जरूरी है। और स्वभाव तो पुकार-पुकार कर भीतर से कहता है--मत कर, मत कर।
लेकिन वह कहता है, नहीं करूंगा! चोरी करना पड़ती है। चोरी कर्म है। चोरी करता है। वह कर्त्ता का भाव है कि मैं कर रहा हूं।
लेकिन जैसे ही यह भाव चला गया कि मैं करने वाला नहीं हूं फिर चोरी कर सकते हैं आप? जैसे ही यह भाव चला गया कि करने वाला परमात्मा है, फिर चोरी कर सकते हैं आप? और अगर फिर चोरी की तो मैं कहता हूं कि वह चोरी भी धर्म होगी, क्योंकि फिर चोरी की ही नहीं जा सकती।
हमें पता ही नहीं है कि जो भी बुरा होता है बुरे का अर्थ ही इतना होता
है कि स्वभाव के प्रतिकूल। बुरे का और कोई अर्थ नहीं होता, बुरे का अर्थ होता है--जो मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है। और जो स्वभाव के प्रतिकूल है, वह दुख लाता है। इसलिए बुरा दुख लाता है। बुरे से दुख का और कोई संबंध नहीं है। चूंकि मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है, इसलिए दुख लाता है। मुझे खींचना पड़ता है।
एक आदमी चोरी करता है। चोरी उसे खींचती है। चौबीस घंटे वह खिंचा हुआ होता है। चोरी करके कोई निश्चिंत हो सकता है? चोरी करके कोई शांत हो सकता है? हत्या करके कोई विश्राम कर सकता है? वह चित्त खिंचेगा। पहले भी खिंचेगा, पीछे भी खिंचेगा। चित्त पूरा तन जाएगा, स्वभाव के बाहर जाना पड़ेगा।

पाप की परिभाषा मेरी दृष्टि में इतनी ही है जो स्वभाव के बाहर है, विपरीत है, प्रतिकूल है, वही पाप है।
पुण्य का इतना ही अर्थ है, कि जो स्वभाव में रहते हुए हो जाता है, वही पुण्य है।
जो स्वभाव के बाहर जाकर करना पड़ता है, वह पाप है। तो अगर ऐसा भी कोई पुण्य आप करते हों, जिसमें स्वभाव के बाहर जाना पड़ता हो तो वह पाप है। अगर एक मंदिर के बनाने में चिंता आती हो चित्त पर तो पाप है। अगर किसी की सेवा करने में दमन करना पड़ता हो, जबरदस्ती करनी पड़ती हो तो वह पाप है। जो सहज होता हो, स्वभाव से होता हो, वही पुण्य है।
यह जिन मित्र ने पूछा है, ऐसे ठीक ही पूछा है, क्योंकि हम सबके भीतर चोर बैठा हुआ है। और हमें ऐसा डर लगता है कि अगर छोड़ दिया शिथिल, तो अभी चोरी न कर लें? उन्होंने पूछा हुआ है कि अगर सब अपने स्वभाव के अनुसार छोड़ दें तो पर-स्त्री को चाहने वाला पर-स्त्री के पीछे पड़ जाएगा!
वे समझे नहीं, स्वभाव का अर्थ कि जहां स्वभाव है, वहां पर-स्त्री तो दूर, अपनी स्त्री के पीछे पड़ना भी मुश्किल है। पीछे पड़ना ही मुश्किल है किसी के, वहां अपनी स्त्री भी पर-स्त्री के बराबर ही हो गई। और ध्यान रहे, जब तक अपनी स्त्री अपनी मालूम हो रही है, तब तक पर-स्त्री का पीछा जारी रहेगा। वह जो डिस्टिंक्शन है, वह जो कहता है कि यह मेरी और वह मेरी नहीं! और ध्यान रहे, जो मेरा नहीं है, उस पर कब्जा करने की हमेशा कामना बनी रहेगी। यह हो ही नहीं सकता कि जो मेरा नहीं है, इसका पता है हमें। और हमारे मन में उसकी मालकियत का खयाल पैदा न हो। जो मेरा है, उसकी मालकियत का ख्याल हो ही जाता है। उसकी मालकियत मिल गई। जो मेरा नहीं है, उसकी मालकियत पुकारती है। इस पर और कब्जा करो, इस पर और कब्जा करो! वह पर-स्त्री इसलिए पर-स्त्री है कि इधर एक अपनी स्त्री भी है। वह अपनी स्त्री की वजह से पर-स्त्री है, दूसरी। इस पर कब्जा मिल गया है, इसलिए अपनी है! उस पर कब्जा नहीं मिला है, इसलिए पराई है!
और जिस पर कब्जा नहीं मिला है, मन कहेगा इस पर भी कब्जा करो। दूसरे की कार दिखाई पड़ती है उस पर, दूसरे का मकान दिखाई पड़ता है उस पर, दूसरे की इज्जत दिखाई पड़ती है उस पर; दूसरे का पद, दूसरे का ज्ञान, दूसरे का त्याग दिखाई पड़ता है। इस सब पर कब्जा करो। जो भी दूसरे का है, वह भी मेरा होना चाहिए। ऐसा कुछ भी न बचे, जो मेरा नहीं हो।
लेकिन वह पर-स्त्री किसी दूसरे की है, वह भी पहरा दिए हुए खड़ा है! और फिर यह भी डर है कि अगर मैंने दूसरे की स्त्री की तरफ देखा, तो मेरी स्त्री की तरफ कोई देखेगा फिर मैं क्या करूंगा? ये सब भय हैं और इन सब भयों को बांध कर आदमी खड़ा हुआ है, जकड़ा हुआ खड़ा है और चिल्ला रहा है कि पर-स्त्री की तरफ देखना पाप है! और क्यों चिल्ला रहा है? और क्यों साधु-संत समझा रहे हैं कि दूसरे की स्त्री को देखना पाप है? क्योंकि सबको पता है कि सब दूसरे की स्त्री को देख रहे हैं।
यह ध्यान रहे, जब तक अपनी स्त्री जैसा खयाल है, तब तक पर-स्त्री पीछा करेगी। जब तक कोई कहता है कि मेरा धन है यह, तब तक वह आदमी चोर रहेगा, क्योंकि मेरे धन के दावे में ही चोरी छिपी है।
जिंदगी का रूपांतरण बहुत ही और बात है। वहां अपना पराया मिट जाता है, जैसे ही कोई अपने स्वभाव में आता है।
एक बहुत अदभुत घटना घटी है। एक वाचस्पति मिश्र एक अदभुत आदमी हुआ, उसकी शादी हुई। शादी हुई कहना मुश्किल है, क्योंकि उसने कुछ की नहीं, घर के लोगों ने कर दी। और कुछ अदभुत लोग होते हैं। घर के लोगों ने कहा, चलोगे, शादी करोगे? उसने कहा, जैसी मर्जी! रामकृष्ण के साथ ऐसा हुआ। रामकृष्ण के घर के लोग समझते थे कि शायद रामकृष्ण शादी नहीं करेंगे। फिर मां ने बहुत डरते-डरते पूछा कि रामकृष्ण शादी करोगे? रामकृष्ण ने कहा, जरूर करेंगे, बारात जाएगी; घोड़े पर बैठेंगे। मां भी चौंकी, कि इस लड़के से आशा थी कि इनकार करेगा। मां-बाप को भी बड़ा मजा आता है, जब बेटे इनकार करते हैं--नहीं शादी करेंगे! बहुत मजा आता है, समझाते-बुझाते हैं! लेकिन भीतर बहुत मन में रस आता है कि यह हुआ बेटा अच्छा पैदा। समझाते-बुझाते हैं, कोशिश करते हैं; बहुत रस आता है, लेकिन--यहां यह है चरित्रवान, कहता है नहीं करेंगे!

रामकृष्ण ने कहाः घोड़े पर बैठने को मिलेगा तो करेंगे। भोला, एकदम भोला! इसे शादी-वादी से कुछ मतलब न था। घोड़े पर बैठने में मजा आ जाएगा... वैसे ही वाचस्पति से घर के लोगों ने पूछा, डरे हुए थे वे, क्योंकि वह आदमी ऐसा था कि क्या करेगा। दिन-रात किसी और ही लोक में खोया हुआ था। घर के लोगों ने कहाः शादी करोगे? उसने कहाः जैसी मर्जी। अगर सब को मजा आता हो तो हो।
शादी हो गई। पत्नी को ले आया गया घर। फिर बारह साल बीत गए और वाचस्पति अपने काम में लग गया। वह भूल ही गया कि पत्नी घर आ गई।
वह तो काम खत्म हो गया, घर वालों को मजा आ गया। बारात गई, आई, सब हो गया। फिर वह पत्नी को भूल ही गया कि पत्नी घर में है!
ऐसी घटना शायद दुनिया में कभी नहीं घटी। और पत्नी भी अदभुत रही होगी। वाचस्पति से कम मूल्य की नहीं। उसने एक बार जाकर उसे छेड़ा भी नहीं कि मैं घर में बैठी हूं, मुझे किसलिए ले आए हो! उसने जाना कि जो इस तरह खोया है किसी दूर अज्ञात में, उसे बाधा दूं तो फिर मेरा प्रेम बहुत कच्चा है। वह प्रतीक्षा करती रही अंधेरे में बैठ कर बारह वर्ष! जागती थी वह रात-रात भर, वाचस्पति लिखता था! वह कुछ किताब लिख रहा था, वह कुछ उपनिषदों पर भाष्य लिख रहा था, ब्रह्मसूत्र की टीका लिख रहा था। वह बहुत काम कर रहा था, वह खोया था किसी दूर के लोक में! पत्नी छाया की तरह उसकी सेवा करती!
बारह वर्ष बाद--वाचस्पति ने तय किया था, वह जो किताब लिख रहा था-- ब्रह्मसूत्र का जो भाष्य--वह पूरा हो जाएगा जिस दिन, उसी दिन वह घर छोड़ देगा! वह ब्रह्मसूत्र का भाष्य पूरा होने को है। आखिरी पन्ना वह लिख रहा है कि दीया बुझ गया। उसकी पत्नी तो छाया की तरह उसकी सेवा करती थी। वह आई और उसने दीया जलाया। पहली दफा वाचस्पति ने उस जले हुए दीये में उसका हाथ देखा और उसने कहा, तू कौन? इतनी आधी रात हुई, तू कौन यहां!
उसकी पत्नी ने कहाः धन्यभाग मेरे कि आज पूछा तो! बारह वर्ष से प्रतीक्षा थी, कभी पूछेंगे तो निवेदन कर दूंगी, कौन हूं! बारह वर्ष पहले, शायद आप भूल गए होंगे, विवाह करके मुझे घर ले आए थे--तबसे प्रतीक्षा करती हूं।
वाचस्पति रोने लगा। उसने कहाः यह तो बड़ी देर हो गई। पागल, तूने बीच में क्यों न कहा? क्योंकि मैंने तो तय किया है कि यह किताब पूरी हो जाएगी-- किताब पूरी हो गई और कल सुबह सूरज उगा और मैं चला जाऊंगा, तूने पहले क्यों नहीं कहा?
उसकी पत्नी ने कहाः लेकिन कुछ भी देर नहीं हुई। आपने इतनी चिंता जाहिर की मेरे लिए--कि तूने देर कर दी, और आज सुबह मैं चला जाऊंगा, तूने पहले क्यों न कहा--मुझे सब मिल गया और चाहिए भी क्या था!
उस पत्नी की स्मृति में किताब का नाम "भामती" रखा। भामती पत्नी का नाम था। और भामती का कोई संबंध नहीं है ब्रह्मसूत्र की टीका से, लेकिन किताब का नाम "भामती" रखा उसकी याद में!
जो बारह साल पीछे चुपचाप था, अब ऐसे आदमी को पर-स्त्री दिखाई पड़ सकती है? इधर बारह साल अपनी स्त्री दिखाई नहीं पड़ी! अपनी स्त्री न हो, तो पर-स्त्री कहां है? ऐसे आदमी को स्त्री भी दिखाई पड़ सकती है?
हां, दिखाई तो पड़ेंगे ही लोग, आंख में तस्वीरें बनी हैं वही दिखाई पड़ना नहीं है। ऐसे आदमी को क्या दिखाई पड़ता है! ऐसा आदमी अपने स्वभाव में जीता है।
ऐसा ही रामकृष्ण का। रामकृष्ण गए--तो बड़े नये कपड़े पहने हैं, लड़की को देखने जा रहे हैं! बहुत सज-संवर कर तैयार हो गए हैं। बार-बार आकर बाहर पूछते हैं, कब चलना है, कितनी देर! और बहुत खुश हैं कि आज यह नये कपड़े मिल गए हैं और तीन रुपये भी मां ने उनके खीसे में डाल दिए हैं, वह उनको भी बार-बार गिन कर अंदर रखते हैं! ऐसा कभी नहीं हुआ था। वह बहुत ही खुश हैं।
फिर वे गए हैं उस लड़की को देखने। फिर वह थाली पर बैठे हैं। वह लड़की परोसने आई है। उन्होंने तीन रुपये निकाल, उसके पैर पर रखकर उसके पैर पकड़ लिए!
तो सब घर के लोग कहने लगे पागल, यह क्या कर लिया?

तो उन्होंने कहाः बिल्कुल मेरी मां जैसी है--इतनी ही भोली, उतनी ही सरल! मेरी मां हो गई!
उन्होंने कहाः यह तेरी पत्नी है, तेरी मां नहीं हो सकती।
तो उन्होंने कहाः पत्नी का तो मुझे पता नहीं कैसी होती है, लेकिन मां
का मुझे पता है। और यह मेरी मां तो हो ही गई। अब जो होगा होगा! फिर वह स्त्री मां ही रही जिंदगी भर!
अब ऐसे आदमी की अपनी ही पत्नी नहीं होती, तो दूसरे की पत्नी दिख सकती है? और अपनी ही पत्नी में मां दिख गई तो अब किस स्त्री में मां नहीं दिखेगी? ठीक ऐसे लोग स्वभाव में जीते हैं।

और वह मित्र पूछते हैं कि अगर स्वभाव में चले गए और पराई स्त्री की चाह मन में है, तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। पराई स्त्री के पीछे चले जाएंगे!

स्वभाव में भर चले जाइए, फिर किसी के पीछे नहीं जाएंगे। स्वभाव में जाने का मतलब हैः अपने पीछे चले जाना। और जो अपने पीछे चला जाता है, वह फिर किसी के पीछे नहीं जाता।
वह जब तक हम अपने पीछे नहीं गए हैं, तभी तक दूसरे के पीछे भटकते हैं-- छायाओं के पीछे, कि लगता है कि इसके पीछे जाने से कुछ मिल जाएगा। उसके पीछे जाने से कुछ मिल जाएगा। इसीलिए दूसरों के पीछे भटकते हैं!
और जब अपने ही पीछे जाकर कोई पा लेता है तो फिर क्यों जाएगा किसी के पीछे? वह तो जब तक नहीं मिला है हमें, तब तक भटकन है। और जब मिल गए, खुद को खुद ही मिल गया, फिर किसके पीछे किसको जाना है। वह सब जाना आना, वह सारी दौड़-धूप; वह चोरी और पाप और हत्या और पर-स्त्री; वे सब के सब विभाव हैं, वे हमारे स्वभाव के बाहर घटने वाली घटनाएं हैं।
इसीलिए यह मत कहें कि अगर स्वभाव में आ गए तो बड़ी अव्यवस्था फैल जाएगी। अव्यवस्था फैली हुई है। स्वभाव में आ जाएं तो व्यवस्था आ जाएगी। लेकिन वह ऐसी व्यवस्था नहीं होगी, जिसे ऊपर से आयोजित करना पड़ता है। वह कोई ऐसी डिसिप्लिन नहीं होगी, वह कोई ऐसा अनुशासन नहीं होगा, जिसे ऊपर से थोपना पड़ता है। वह भीतर से आया हुआ होगा। अब रामकृष्ण को ऐसा समझना नहीं पड़ा कि यह मेरी मां है, ऐसा दिखा।
हम भी अपने बच्चों को समझाते हैं कि दूसरे की मां-बहन को अपनी मां-बहन समझना! अब समझने का मामला कभी सच हो सकता है? जब हम कहते हैं समझना तो उसका मतलब साफ है कि जो समझना नहीं है, वह पहले समझ चुके हैं और अब यह समझना पड़ेगा!
कभी आप नहीं समझाते किसी को कि दूसरे की पत्नी को अपनी पत्नी समझना--
वह नहीं समझाते! क्योंकि वह हम समझते ही हैं। समझाना यह पड़ता है कि मां समझना, क्योंकि जो हम नहीं समझते, वह हमें समझाना पड़ता है। सचाइयां और हैं जो हम समझते हैं, झूठ हम ऊपर से थोपते हैं कि ऐसा समझना!
और ऐसी समझावन की जो डिसिप्लिन है--वह डिसिप्लिन कोई डिसिप्लिन है, कोई अनुशासन है! सरासर मिथ्या और झूठ है। और उसी मिथ्या पर खड़ा हुआ समाज है। और उसका ही हम गौरव गान किए चले जाते हैं कि बड़ी संस्कृति है, बड़ी सभ्यता है! और सब इसी तरह के झूठों पर खड़ी हुई सभ्यता है।
हम कहते हैं कि हमारी सभ्यता बहुत ऊंची है! हम दूसरे की पत्नी को... दूसरे की मां-बहन को अपनी मां-बहन समझते हैं! समझने की बात हमेशा झूठी होती है। दिखाई पड़ना चाहिए। वह किसी के समझाने का सवाल नहीं होना चाहिए। दिखना चाहिए। और जब दिखता है, तब तो एक अनुशासन भीतर से आता है। एक इनर डिसिप्लिन पैदा होती है। वह भीतर से चली आती है। उसे पैदा नहीं करना पड़ता।
स्वभाव में जीने वाले व्यक्ति का एक अनुशासन होता है, जो आंतरिक होता है। और हम नहीं पहचान पाते अक्सर, क्योंकि हम सिर्फ उसी अनुशासन को पहचानते हैं, जो ऊपर से थोपा जाता है! हम झूठ के इतने आदी हो गए हैं कि हम सत्य को देख भी नहीं पाते, पहचान भी नहीं पाते!

अनेक बार हमें स्वभाव में लीन व्यक्ति बेबूझ मालूम पड़ सकता है। चूंकि
हम जो समझते हैं वह समझता नहीं वैसा। उसे कुछ दिखाई पड़ता है। जो दिखाई पड़ता है उसके अनुसार वह जीता है।

कुछ और प्रश्न रह गए, वह कल रात हम बात करेंगे। अब रात्रि के ध्यान के लिए बैठना है। दो-तीन बातें समझ लें।
पहली बात, समर्पण उतना ही गहरा हो सकता है जितना हम शरीर को, श्वास को,
मन को पूर्ण शिथिलता में छोड़ दें। उतना ही फ्लोटिंग, उतना ही बहाव पैदा हो सकता है। अगर हम अकड़े बैठे हैं, तने बैठे हैं तो फिर यह अकड़ यह तनाव यह स्ट्रेन जो है शरीर पर यही हमें रोक लेगा।
तो रात के इस प्रयोग में सब काफी फासले पर बैठेंगे कि शरीर अगर शिथिल होकर गिर जाए तो... फिर हम प्रकाश भी बुझा देंगे ताकि आपको यह चिंता न रह जाए कि कोई देख रहा है। सब काफी फासले पर बैठेंगे ताकि शरीर को इतना ढीला छोड़ा जा सके कि अगर वह गिर जाए तो गिरने की जगह हो। गिरने की अपनी जगह देख लें। कि आस-पास अगर शरीर गिरेगा तो जगह होनी चाहिए। और बातचीत जरा भी न करें। चुपचाप हट जाएं। और जिसको जगह न दिखाई पड़े वह दूसरे की प्रतीक्षा न करे खुद उठ कर बाहर चला जाए। और जरा भी बात नहीं। जल्दी... अगर आप पास बैठे हैं और कोई आपके ऊपर गिर जाए तो परेशान न हों, उसको गिर जाने दें। हट जाएं। थोड़ा फासला कर लें। हां, थोड़े फासले पर बैठें क्योंकि कोई भी आपके ऊपर गिर गया तो आपको परेशानी हो जाएगी। इसलिए हट जाएं। जल्दी बैठ जाएं ताकि मैं दो-तीन बातें समझा दूं। फिर हम ध्यान के लिए बैठें। हां, जिनको भी ठीक से गहराई से करना है चुपचाप बाहर हो जाएं।
पहली बात अभी ध्यान के शुरू होने के पहले प्रकाश हम बुझा देंगे, ताकि घनघोर अंधेरा हो जाए। अंधेरे में जितना संभव हो सकता है उसका कोई मुकाबला नहीं है। क्योंकि रात तो समर्पण का समय ही है। और रात तो खो जाने का, सो जाने का, मिट जाने का समय ही है। वह रात तो विश्राम का वक्त है। सब तरफ अंधेरा हो जाएगा। उस घुप्प घनघोर अंधकार में हमें बिल्कुल अपने को छोड़ देना है। जैसे अंधकार के सागर में हम अपने को छोड़ दें।
आंख बंद कर लेंगे। फिर शरीर को शिथिल छोड़ेंगे। और थोड़ी देर तक मैं सुझाव दूंगा कि आपका शरीर शिथिल हो रहा है। शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है। तो मेरे साथ आपको अनुभव करना है कि शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है। जितना आप अनुभव करेंगे, उतना ही शरीर शिथिल हो जाएगा। शरीर गिरने लगेगा, आगे झुक सकता है, पीछे झुक सकता है, कहीं भी झुकता हो आप मत रोकना। आप गिरने देना जहां जाए गिर जाए। इससे भी मत घबड़ाना कि गिर जाए तो चोट लग जाएगी। चोट लगती है--जब शरीर अकड़ा हो। अगर शरीर बिल्कुल शिथिल हो तो कभी चोट नहीं लगती। कोई चोट नहीं लगेगी। फिर मैं दो-तीन मिनट के बाद सुझाव दूंगा कि श्वास धीमी हो रही है। आपको धीमी करनी नहीं है सिर्फ भाव करना है कि श्वास धीमी होती जा रही है, धीमी होती जा रही है। श्वास धीमी हो जाएगी। फिर मैं कहूंगा मन शांत हो रहा है फिर मन शांत हो जाएगा। फिर दस मिनट के लिए मैं कहूंगा अब खो जाएं। फिर जो भी होता रहे होने दें। फिर जो भी हो, हो। हवाएं चलें, पक्षी चिल्लाएं; आवाज हो; श्वास चले; भीतर कोई विचार चले-- चुपचाप देखते रहें। जो भी हो, हो। उस घने अंधकार में बिल्कुल लीन हो जाएं। अब आप बैठ जाएं। आंख बंद कर लें। हां... आंख बंद कर लें। जैसा अंधकार बाहर है भीतर भी हो जाए। आंख बंद कर लें। शरीर को ढीला छोड़ दें। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। अब मैं सुझाव देता हूं मेरे साथ अनुभव करें।
शरीर शिथिल हो रहा है... और एक-एक सुझाव के साथ शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ते जाएं... झुकें, झुकें... गिरें, गिर जाएं। अपनी तरफ से कोई रुकावट नहीं है, कोई रोक नहीं। सुझाव दें--शरीर शिथिल हो रहा है।
छोड़ दें... छोड़ दें... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... । छोड़ दें, अंधकार में छोड़ दें, खो जाएं। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है। छोड़ दें, इस अंधकार में बिल्कुल

छोड़ दें अपने को। छोड़ दें। शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है...
श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है। अंधकार में बिल्कुल खो गए। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... छोड़ दें, श्वास को भी बिल्कुल शिथिल छोड़ दें। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है...
मन भी शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... छोड़ दें, भीतर मन पर भी सारी पकड़ छोड़ दें। मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है। इस अंधेरी और शांत रात्रि में बिल्कुल मिट जाएं। दस मिनट के लिए एक हो जाएं--रात से, वृक्षों से, तारों से, हवाओं से, आकाश से, बिल्कुल एक हो जाएं। पृथ्वी से मिट जाएं। आप नहीं हैं। आप बिल्कुल नहीं हैं। सब शांत और शून्य हो गया। दस मिनट के लिए सब शून्य हो गया। बस जानते रहें, जो भी हो रहा है जानते रहें--आवाज सुनाई पड़े, सुनते रहें... जानते रहें... बस जानते रहें।
और सब खो जाएगा, सिर्फ जानना ही शेष रह जाता है। अब दस मिनट के लिए बिल्कुल मौन शांत हो जाएं।
कितनी अदभुत रात! मन शांत हो गया है... आवाज झींगुरों की सुनाई पड़ रही है... मन शांत हो गया, मन बिल्कुल शांत हो गया... मन शांत हो गया। छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें... हम मिट गए, हम बिल्कुल मिट गए। मन शांत हो रहा है... मन बिल्कुल शांत होता जा रहा है... मन शून्य होता जा रहा है। देखें, भीतर देखें--मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है। इस रात के साथ बिल्कुल एक हो जाएं। मन शांत होता जा रहा है... मन शांत होता जा रहा है... मन शांत हो गया है... रात के साथ बिल्कुल एक हो जाएं... एक-एक... रात्रि के साथ बिल्कुल एक हो जाएं।
मन कितना शांत हो गयाः रात के साथ एक, वृक्षों के साथ एक, अंधेरे के साथ एक। हम बिल्कुल मिट गए, जैसे बूंद सागर में खो जाए। मन शांत हो गया है... देखें, भीतर देखेंः कितना सन्नाटा, कितना मौन, कितना शून्य! और गहरे, और गहरे... बिल्कुल, बिल्कुल छोड़ दें, सब छोड़ दें, मिट जाएं। सब ठहर गया, भीतर सब रुक गया... एक शून्यमात्र--सब शून्य हो गया।
धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ और गहराई बढ़ेगी, शांति बढ़ेगी, शून्य बढ़ेगा। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। फिर धीरे-धीरे आंख खोलें, बाहर देखें। बाहर भी बहुत शांति है। भीतर भी शांति है, बाहर भी। धीरे-धीरे आंख खोलें और देखेंः वृक्षों को, रात को, तारों को-- कितनी शांति है। बाहर और भीतर की शांति को मिल जाने दें।
आंख खोलें और देखें। एक-दो मिनट आंख खोल कर चुपचाप देखते रहें।

हमारी रात की बैठक पूरी हुई।

सम्भावनाओं की आहट
चौथा प्रवचन

अपना-अपना अंधेरा
(22 मार्च 1969 सुबह)

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य का मन एक बोझ है--बोझ है अतीत का। लेकिन मनुष्य का मन एक तनाव
भी है--तनाव है भविष्य का। अतीत के बोझ को हटा देने के लिए कल कुछ बातें की हैं। भविष्य के तनाव से मुक्त हो जाना भी उतना ही आवश्यक है। भविष्य भी बहुत बड़े तनाव की तरह मनुष्य के मन पर सदा मौजूद है। भविष्य का तनाव बहुत रूपों में हमारे मन को पकड़े है।
एक तो, हम आज जीते ही नहीं! हम सदा कल में जीते हैं! और कल में कोई भी नहीं जी सकता। जीना सदा आज है, अभी है।
एक सुबह युधिष्ठिर बैठे हैं अपने झोपड़े पर वनवास के दिनों में। और एक भिखारी ने भिक्षापात्र उनके सामने फैलाया है। युधिष्ठिर ने कहाः कल! कल ले लेना, कल आ जाना, कल दूंगा!
भीम बैठा हुआ सुनता था, वह जोर से हंसने लगा! पास में पड़े हुए घंटे को उठा कर बजाने लगा और गांव की तरफ भागने लगा!
युधिष्ठिर ने पूछाः क्या हुआ है तुझे, पागल हो गया?
भीम के कहाः पागल नहीं हुआ हूं। यह जान कर बहुत खुश हुआ हूं कि मेरे भाई ने कल कुछ करने का वायदा किया है। जाऊं गांव में खबर कर आऊं कि मेरे भाई ने समय को जीत लिया है, क्योंकि मैंने सुना नहीं है आज तक कि कल कोई भी कभी कुछ कर सका हो। तुमने कहा है, कल देंगे! जाऊं खबर कर आऊं गांव में, क्योंकि इतिहास में ऐसी घटना नहीं घटी है।
बहुत मजे की बात है। कल तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो भी किया जा सकता है-अभी और यहां; आज, इसी क्षण।
जिस कल की हम बात करते हैं, वह कल्पना के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं। वह कभी नहीं आएगा। कल कभी नहीं आता है। जो आता है, वह आज है, अभी है।
लेकिन हमारा मन जीता है कल में! हम आज के जीने को कल पर पोस्टपोन करते हैं। जो अभी हो सकता है, उसे कल पर छोड़ते हैं! और कल कभी नहीं होगा। फिर यह कल की लंबी धारा, आने वाले कलों की लंबी कल्पना मन पर बैठती चली जाती है, मन को खींचती चली जाती है। इसका बोझ बहुत ज्यादा है, वह हमें पता नहीं! हमें उन्हीं बोझों का पता चलता है, जिनके हम आदी नहीं होते। और भविष्य के बोझ के हम पैदा होने के क्षण के साथ ही आदी हो जाते हैं! वह हमें पता ही नहीं चलता! यूरी गागरिन पहली दफा जब अंतरिक्ष में गया पहला आदमी, तो उसने लिखा पहली बार मुझे पता चला कि पृथ्वी पर कितना बोझ था ग्रेवीटेशन का! लेकिन हमें कुछ पता नहीं चलता!
हम उसमें ही जन्मते हैं, उसमें ही बड़े होते हैं। यूरी गागरिन जब लौट
कर पृथ्वी पर आया तो लोगों ने उससे पूछा कि सबसे नया अनुभव क्या हुआ? उसने कहा, सबसे नया अनुभव हुआ ग्रेवीटेशन से मुक्त हो जाने का। शरीर निर्भार हो गया! समझ में नहीं पड़ा कि यही मेरा शरीर है! और यह भी समझ में नहीं पड़ा कि इतना बोझ इस शरीर पर पृथ्वी पर था, इतना खिंचाव इस शरीर पर था! शरीर हलका रुई की तरह हो गया, बॉडीलेसनेस--जैसे शरीर है ही नहीं, ऐसा अनुभव हुआ! हवा में जैसे ऊपर तैरने लगा शरीर। यान के छत से लग गया जाकर। कोई वजन न रहा। हाथ उठाओ तो मालूम न पड़े कि उठाया कि नहीं उठाया। सारा शरीर निर्भार हो गया!
लेकिन हमारे शरीर पर कितना बोझ है, वह हमें पता नहीं चलता, क्योंकि जमीन पर ही हम पैदा होते हैं, जमीन पर ही बड़े होते हैं, जमीन पर ही मर जाते हैं। वह बोझ लेकर ही पैदा होते हैं, लेकर ही मर जाते हैं। इसलिए पता नहीं चलता कि जमीन कितने जोर से खींचे हुए है। वह जिसको हम शरीर का वजन कहते हैं, वह शरीर का वजन नहीं है, जमीन की कशिश है। अगर दो सौ पौंड शरीर का वजन है तो शरीर का कोई वजन नहीं होता। वह जमीन खींच रही है इतनी ताकत से कि

शरीर पर दो सौ पौंड का भार पड़ रहा है। लेकिन वह हम जीते हैं। हमें उसका कोई पता नहीं है, क्योंकि हम उसमें ही जन्मते हैं, उसमें ही आदत बन जाती है। ऐसे ही भविष्य का तो और भी न मालूम कितना बड़ा बोझ है, कितनी कशिश है। जमीन से भी ज्यादा, लेकिन उसका हमें पता नहीं चलता! हम बचपन से ही कल में जीते हैं--आगे! आगे! आगे!
और यह कल में जीने की जो हमारी मनोवैज्ञानिक भूल है, इसे समझ लेना बहुत जरूरी है। तो शायद हम आने वाले कल से मुक्त हो जाएं। इसका यह मतलब नहीं है कि आने वाले कल से मुक्त हो जाने का यह मतलब नहीं है कि कल आपको कहीं जाना है तो आप उसकी कोई योजना नहीं करेंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है कि कल सुबह ट्रेन पकड़नी है तो आज रिजर्वेशन नहीं कराएंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है कि कल के लिए कोई जीवन की आयोजना, कोई प्लानिंग नहीं होगी। क्रोनोलोजिकल टाइम तो है, समय तो है। लेकिन हमने एक मनोवैज्ञानिक समय भी ईजाद किया हुआ है, जो कहीं भी नहीं है!
जैसे एक आदमी क्रोधी है, हिंसक है। और वह आदमी कहता है, कल, परसों, कुछ वर्षों बाद, अगले जन्म में मैं अहिंसक हो जाऊंगा, शांत हो जाऊंगा! वह यह कहता है हिंसक हूं, कोई फिकर नहीं है, लेकिन मैं चेष्टा करूंगा, श्रम करूंगा, प्रार्थना करूंगा, पूजा करूंगा, ध्यान करूंगा, साधना करूंगा, योग करूंगा। नीति का आचरण करूंगा, व्रत लूंगा, अहिंसक हो जाऊंगा! हिंसक है, लेकिन कल्पना करता है कि कल भविष्य में कभी अहिंसक हो जाएगा!
यह समझने जैसा है, जो आदमी हिंसक है, वह कुछ भी योजना करे, वह कोई भी व्रत ले, वह कोई भी धारणा करे, वह कोई भी ध्यान करे, वह आदमी कोई भी योग साधे, तप करे; तपश्चर्या करे--हिंसक आदमी जो कुछ भी करेगा, उससे कभी भी अहिंसक नहीं हो सकता है, हिंसक ही करेगा ना। व्रत भी हिंसक ही करेगा। उस व्रत के करने में भी उसकी हिंसा पूरी तरह मौजूद है। तपश्चर्या हिंसक ही करेगा, उस तप में भी उसकी हिंसा पूरी तरह मौजूद है।
कल तक वह दूसरों के शरीरों को सताता था, अब अपने शरीर को सताएगा। हिंसा पूरी तरह मौजूद है। कल तक वह रस लेता था किसी दूसरे की गर्दन दबाने में, अब वह अपनी ही गर्दन दबाने में रस लेगा। हिंसा मौजूद है, वह हिंसक ही कर रहा है। हिंसक जो कुछ भी करेगा उसमें हिंसा मजबूत होगी। वह कल अहिंसक नहीं होने वाला है। लेकिन आज की हिंसा भूलने में सहारा मिलेगा उसे, कल की अहिंसा की कल्पना से। सोचेगा कल अहिंसक हो जाऊंगा तो वह जो हिंसा की पीड़ा है, वह जो हिंसा का दंश है, वह जो हिंसा का कांटा चुभ रहा है, वह हलका हो जाएगा! वह कहेगा कोई फिकर नहीं। आज हूं कल अहिंसक हो जाऊंगा। वह कल की अहिंसा को सत्य मान लेगा, आज की हिंसा को झूठा कर लेगा! आज की हिंसा जारी रहेगी, वह कभी अहिंसक नहीं होगा। लेकिन कल अहिंसक हो जाऊंगा इस भाव से, हिंसा की जो पीड़ा होनी चाहिए, वह कम हो जाएगी। और हिंसा की पीड़ा जितनी कम हो जाएगी, उतना ही हिंसा से मुक्त होना असंभव है।
लेकिन वह कल की कल्पना करेगा! वह कहेगा, इस जन्म के बाद अगले जन्म में भगवान को पा लूंगा। वह कहेगा मृत्यु के बाद मोक्ष चला जाऊंगा। वह टालता रहेगा इस तरह भविष्य पर और आज के तथ्य को नहीं देखेगा! इस बात को ठीक से जान लेना, जो लोग भी आज के तथ्य को नहीं देखना चाहते हैं, वे भविष्य की योजनाओं और कल्पनाओं में, अंधेरे में, धुएं में अपने को छिपा लेते हैं!
आज का तथ्य ही सत्य है। उसे छिपाना नहीं है, उसे भुलाना भी नहीं है। उसे विस्मरण भी नहीं करना। उसे पूरी तरह जानना है क्योंकि वह जानने से ही, सिर्फ जानने से ही बदलेगा।
और बदलाहट का कोई उपाय नहीं, अगर चित्त में हिंसा है--और है। हिंदुस्तान कितने हजारों सालों से अहिंसा की बातें करता है, कितने हजारों साल से हमने अहिंसा के गीत गाए, अहिंसा के शास्त्र रचे हैं, अहिंसा, अहिंसा की हम बात करते रहे हैं और एक भी आदमी अहिंसक है? कोई एक आदमी अहिंसक नहीं! इधर बीस, पच्चीस, चालीस सालों से तो हम बहुत ही अहिंसा की बातें कर रहे हैं! लेकिन जब खुद पर मुसीबत आती है तो हम उतने ही हिंसक सिद्ध होते हैं, जितना कोई और! चीन ने देश पर हमला किया, फिर हमारी अहिंसा खो गई! पाकिस्तान के साथ मुठभेड़ हो हमारी अहिंसा खो जाती है! फिर कोई अहिंसा की बात नहीं करता। फिर हम कहते हैं, अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत है!

अहिंसा की रक्षा के लिए भी हिंसा की जरूरत पड़ती है तो अहिंसा बहुत नपुंसक है। ऐसी अहिंसा का क्या मतलब है जिसकी रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत पड़ती है। और अहिंसा की रक्षा हिंसा से की जा सकती है? अगर अहिंसा की रक्षा हिंसा से की जा सकती है, तब तो फिर अमृत की सुरक्षा के लिए जहर का इंतजाम करना पड़ेगा, और प्रेम की रक्षा के लिए घृणा सीखनी पड़ेगी, और जिंदा रहने के लिए मरना पड़ेगा!
अहिंसा हमारी बातचीत है हजारों साल की और उससे सिर्फ एक, एक बात घटी
है कि हम अपनी हिंसा को देखना बंद कर दिए हैं! अहिंसा की बातों में हिंसा का तथ्य भूल गया है वह हमें दिखाई नहीं पड़ता!
चित्त अशांत है तो हम कहेंगे, कल हम शांत हो जाएंगे! कुछ विधि का उपयोग करेंगे, किसी जप का उपयोग करेंगे! और कल हम शांत हो जाएंगे। अशांत आज हैं और कल होंगे शांत, फिर कल भी आ जाएगा। कल तो आता नहीं, वह भी आज होगा। और फिर आप कहेंगे, आज अशांत हैं, कोई बात नहीं, कल शांत हो जाएंगे।
यह पोस्टपोनमेंट, सेल्फ डिसेप्शन है। यह स्थिगितिकरण आत्मवंचना है।
कल पर छोड़ना, और आज को देखने से बचना इतना बड़ा तनाव है कि फिर जिंदगी में कभी परिवर्तन नहीं होगा। सिर्फ तने ही रह जाएंगे, तनाव ही रह जाएगा। पीछे लौट कर देखें, जिंदगी में कितनी बार सोचा होगा, कल यह कर लेंगे, कल यह कर लेंगे। मनोवैज्ञानिक बात कह रहा हूं--मानसिक, भीतर आंतरिक वह आज तक नहीं हुआ। वह कभी नहीं होगा। वह तरकीब तथ्यों को झुठलाने की है।
उनको भूलने की है, विस्मरण की है। वह तरकीब फॉरगेटफुलनेस की है। और किसी तथ्य को भूलने से कभी उसको बदला नहीं जा सकता।
अगर हिंसा बदलनी है तो अहिंसा की बातचीत बंद कर दें। हिंसा को देखें।
वह जो अभी है, उसे देखें, उसे पहचानें, उसे खोजेंवह क्या है। और जितना उसे जानेंगे, जितना पहचानेंगे, जितना उसको देखने में समर्थ हो जाएंगे, वह हिंसा का तथ्य उतना ही बदलना शुरू हो जाएगा--अभी और यहीं, कल नहीं।
अगर भीतर घृणा है, तो उसे देखें और पहचाने, और अगर भीतर चोर बैठा है तो उसे देखें और पहचानें। यह मत कहें कि कल, कल मैं चोरी छोड़ दूंगा। अगर चोरी गलत हो गई है तो कल की बात क्यों करते हैं?
अभी सांप रास्ता काटता है तो आप ऐसा नहीं कहते कि कल मैं बच जाऊंगा। अभी छलांग लगाते हैं, इसी वक्त क्योंकि सांप सामने खड़ा है फन फैलाए हुए। तो आप यह नहीं कहते, कि ठीक है, कोई बात नहीं अभी खड़े रहो सांप। कल हम बच जाएंगे। कल हम छलांग लगाएंगे। सांप सामने खड़ा होता है तो आप अभी, इसी वक्त छलांग लगाते हैं। क्यों? क्योंकि सांप दिखाई पड़ता है। सांप पूरी तरह दिखाई पड़ता है, सांप के साथ मौत दिखाई पड़ती है। सांप का जहर दिखाई पड़ता है। एक छलांग में आप बाहर हो जाते हैं।
हिंसा सामने खड़ी है और आप कहते हैं, कल हम अहिंसक हो जाएंगे! तो फिर आपको हिंसा का जहर दिखाई नहीं पड़ता, हिंसा की मौत दिखाई नहीं पड़ती, हिंसा का पागलपन दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए आप कहते हैं, कल। अभी क्या जल्दी है, कल! अभी घर में आग लगी हो, तब आप यह नहीं कहते कि कल बाहर निकल जाएंगे। तब
आप कहते हैं, अभी इसी क्षण मुझे बाहर निकलना है। आप यह कहते भी नहीं कि इसी क्षण बाहर निकलना है; आप निकलना शुरू हो जाते हैं, आप निकल ही जाते हैं! जिंदगी के तथ्य भी आग लगे होने से या सांप के तथ्यों से ज्यादा खतरनाक हैं। लेकिन कल की तरकीब से आप झुठला जाते हैं और उनको नहीं बदल पाते हैं! जीवन की बदलाहट, जीवन की क्रांति, जीवन का रूपांतरण इस क्षण होगा, अभी होगा। कल कभी नहीं होगा।
लेकिन हमने एक आइडिया, एक विचार, एक प्रत्यय बनाया हुआ है कि कल, कल हम अहिंसक हो जाएंगे। और हम कल्पना कर लेते हैं कि कल हम अहिंसक हो गए। और आज की हिंसा भूल जाती है जो कि सत्य है और कल की अहिंसा जो कि बिल्कुल झूठ है, वह हमें सच मालूम होने लगती है! फिर हम अहिंसक होने की कोशिश में भी लग जाते हैं। हिंसा तो मौजूद रहती है और अहिंसक होने की कोशिश में लग जाते हैं! घृणा मौजूद रहती है, प्रेम करने की कोशिश में लग जाते हैं!
एक फकीर के पास किसी आदमी ने जाकर कहा। वह फकीर कभी-कभी उस आदमी के द्वार पर भीख मांगने आता था। कई बार उसने भीख दी थी। एक दिन उसके झोपड़े पर जाकर कहा कि आज मैं भी भीख मांगने आया हूं। मेरे भीतर बहुत घृणा है। मेरे

भीतर बहुत हिंसा है, बहुत क्रोध है। मेरे भीतर बहुत ईर्ष्या है, बहुत जलन है। मैं कैसे इससे छुटकारा पाऊं? मुझे कुछ रास्ता बता दें।
उस फकीर ने कहाः कल जब मैं भोजन मांगने आऊंगा तेरे द्वार पर, तभी रास्ता भी बता दूंगा।
वह फकीर दूसरे दिन फिर भोजन मांगने आया। भिक्षा का पात्र उसने उस घर
के सामने फैला दिया। वह आदमी आज बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाया था। आज उस फकीर को भिक्षा और ही ढंग से देनी थी। आज उससे कुछ लेना भी था। उसने बहुत मिठाइयां बनाई थीं। वह बहुत फल लाया था। वह सारे फल और मिठाइयां लेकर भिक्षा के पात्र में डालने आया तो देख कर हैरान हो गया भिक्षा के पात्र में तो कंकड़, पत्थर, गोबर पड़ा हुआ है! उसने हाथ रोक लिया। उसने कहाः महाशय, भिक्षुजी, इस, इस पात्र में मैं कैसे ये मिठाइयां डालूं?
उसने कहाः डाल दो, क्या हर्ज है?
उसने कहाः सब खराब हो जाएंगी। यह पात्र तो गंदा है। तो उसने कहा क्या करूं, उस संन्यासी ने कहा? उस गृहस्थ ने कहाः पहले पात्र को धो लें। संन्यासी ने पात्र धो लिया। फिर मिठाइयां दे दीं। और भिक्षु वापस लौटने लगा तो उसने कहा, आपने मुझे कहा था, कुछ मुझे भी कहेंगे।
उस संन्यासी ने कहाः मैंने कह दिया है। इस पात्र में गंदगी पड़ी है, तो तुम मिठाइयां डालने को तैयार नहीं हो! और भीतर हिंसा पड़ी है तो अहिंसा कैसे डाली जा सकती है! और भीतर क्रोध है तो क्षमा कैसे डाली जा सकती है! और तुम्हें यह दिखता है कि थोड़े से कंकड़, पत्थर, यह गोबर, सब मिठाइयों को खराब कर देंगे। लेकिन तुम्हें यह नहीं दिखता कि तुम्हारे भीतर सब पड़ा है और तुम उसी में भगवान तक को डालने की कोशिश कर रहे हो!
लोग आते हैं, वे पूछते हैं भगवान को कैसे पाएं? वे यह कहते नहीं कि अपने पात्र को कैसे साफ करें! वे कहते हैं, भगवान को कैसे पाएं! वे कहते हैं, प्रार्थना कैसे करें! वे यह नहीं कहते कि यह घृणा और यह क्रोध!
जीवन के तथ्यों को हम देखते नहीं, जो अभी हैं! और उन सत्यों को चाहना चाहते हैं, जो कभी होंगे! वे कभी भी नहीं होंगे और मन एक खिंचाव में पड़ जाएगा। क्रोध भीतर होगा और प्रार्थना की चेष्टा चलेगी। यह कितना असंभव तनाव है। क्रोध करने वाला चित्त कैसे प्रार्थना कर सकता है? वह प्रार्थना में भी क्रोध से भरा रहेगा।
घरों में देखें! लोग, जो प्रार्थना करते हैं उनको, वे प्रार्थना भी कर रहे हैं और चारों तरफ देख रहे हैं कि कब क्रोध का अवसर मिल जाए! वह पूजा भी कर रहे हैं और क्रोध की प्रतीक्षा भी कर रहे हैं कि कब क्रोध करें। पूजा और प्रार्थना करने वाले लोग अक्सर क्रोधी हो जाते हैं। और उसका कारण है, अकारण नहीं। भीतर तो क्रोध है, ऊपर से प्रार्थना की कोशिश चल रही है! भीतर जो है, वही सच है।
ऊपर जो चल रहा है, वह सच नहीं है। वह झूठा है। लेकिन भविष्य की आशा है
कि कभी प्रार्थना पूरी हो जाएगी, कभी क्रोध खत्म हो जाएगा। क्रोध कभी खत्म नहीं होगा। क्रोध को किसी प्रोसेस, किसी प्रक्रिया के द्वारा कभी खत्म नहीं किया जा सकता। क्रोध को, घृणा को, हिंसा को--जो भी हमारे भीतर गलत है, उसको कभी भी हम धीरे-धीरे, धीरे-धीरे कभी दूर नहीं कर सकते।
जिंदगी में जो फर्क होते हैं वे क्रांतियां हैं, वेपरिवर्तन नहीं हैं।
अगर आपको अपने भीतर की हिंसा दिखाई पड़ जाए तो इसी क्षण एक जंप, एक छलांग हो जाएगी, जैसे सांप को देख कर हो जाती है। आप हिंसा के बाहर हो जाएंगे।
और यह कल कभी नहीं होगा। यह क्रमिक नहीं है, यह ग्रेजुअल नहीं है। यह ठीक से समझ लें, कि जिंदगी में जो भी होता है वह क्रांति है। रिवोल्यूशन है, वह ग्रेजुअल ग्रोथ नहीं है। वह ऐसा नहीं है कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे हम सब ठीक कर लेंगे। कौन करेगा धीरे-धीरे ठीक और जितनी देर आप ठीक करेंगे, उतनी देर हिंसा मौजूद रहेगी। वह और मजबूत होती चली जाएगी।
एक आदमी एक बीज बो देता है। बीज प्रतिक्षण बड़ा हो रहा है। वह आदमी कहता है कि धीरे-धीरे हम इस वृक्ष को उखाड़ कर फेंक देंगे। और तब तक पानी भी डाल रहा है, तब तक खाद भी डाल रहा है, क्योंकि वह कहता है कि धीरे-धीरे, बाद

में, कभी हम इसे उखाड़ कर फेंक देंगे! तब तक पानी भी डालेगा, खाद भी डालेगा, वह बीज बड़ा हो रहा है। वह अंकुर बड़ा हो रहा है, वह वृक्ष बड़ा हो रहा है। वह वृक्ष मजबूत होता चला जा रहा है। वह आदमी कहता है कि कभी आगे, कल, परसों हम इसे उखाड़ कर फेंक देंगे। और इस बीच वह पानी भी डाल रहा है। खाद भी डाल रहा है और वृक्ष मजबूत होता चला जा रहा है। उसकी जड़ें जमीन को पकड़ती चली जा रही हैं। और वह कहता है कल; कल, फिर, आगे!
और इस देश में तो जहां हमें पुनर्जन्मों की बहुत लंबी बात बताई गई है, वहां हम कहते हैं, अभी भी क्या जल्दी है! अगले जन्म में, उसके आगे! हिंदुस्तान के पास भविष्य की सबसे बड़ी योजना है! जितनी दुनिया के किसी मुल्क के पास नहीं! हमारे लिए समय की कमी ही नहीं है! हम कहते हैं, अनंत-अनंत जन्म हैं, अनंत-अनंत आगे भी जन्म हैं! गलत नहीं कहते हैं हम, जिन्होंने कहा है, उन्होंने जान कर कहा है। लेकिन जिन्होंने सुन लिया है, उनके लिए घातक हुआ है। उनके लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ है। उनके लिए नुकसान पहुंचा है। क्योंकि उन्होंने कहा कि ठीक है--फिर क्या जल्दी है। फिर आज करने की जल्दी क्या है? अगर यह जन्म भी खो गया तो हर्ज क्या है! आगे और जन्म हैं!
हिंदुस्तान के पास भविष्य का सबसे लंबा विस्तार है। और इसलिए हिंदुस्तान का वर्तमान सबसे ज्यादा निकृष्ट और नीचा हो गया है। भविष्य का इतना बड़ा विस्तार है कि उसकी वजह से वर्तमान को बदलने की कोई जरूरत नहीं रह गई।
और ध्यान रहे, जो भी होना है, वह अभी होना है, यहां होना है, इसी क्षण होना है, क्योंकि जिंदगी एक छलांग है।
जब हमें कोई चीज दिखाई पड़ती है, हम एकदम बदल जाते हैं। फिर ऐसा नहीं होता, फिर ऐसा नहीं होता कि हम धीरे-धीरे बदलेंगे।
धीरे-धीरे बदलने की बात हमारे मोह को प्रकट करती है कि हम बदलना नहीं चाहते हैं। इसीलिए हम कहते हैं, धीरे-धीरे बदलेंगे। और बदलना हम क्यों नहीं चाहते? क्योंकि हमने देखा ही नहीं इस तथ्य को कि भीतर क्या है! अगर आपको पता चल जाए कि भीतर कैंसर है, तब आप यह नहीं कहते कि धीरे-धीरे। आप अभी भागते हैं, कहते हैं, इसी वक्त कुछ करना पड़ेगा!
लेकिन कैंसर कुछ भी नहीं है। हिंसा और भी बड़ा कैंसर है, क्रोध और भी बड़ा कैंसर है, घृणा और भी बड़ा कैंसर है। कैंसर सिर्फ शरीर, शरीर को खाता है। घृणा, हिंसा और क्रोध तो पूरी आत्मा को खा जाते हैं। लेकिन वे हमें दिखाई नहीं पड़ते! हमने उन्हें कभी देखा ही नहीं है। हम उन्हें देखने से बचते हैं! जब भी देखने का मौका आ जाए, हम इधर-उधर देखने लगते हैं! हम किनारे देखने लगते हैं, सीधा नहीं देखते!
और हमने ऐसी तरकीबें निकाली हैं कि अपने को झुठलाने की, भुलाने की, प्रवंचना की! अगर भीतर क्रोध भी हो तो हम कहते हैं कि यह क्रोध तो दूसरे को सुधारने के लिए है! अगर भीतर हिंसा हो तो हम कहते हैं अगर हिंसा नहीं होगी तो लोग समझेंगे कि हम कायर हैं, कमजोर हैं! अगर भीतर ईर्ष्या हो तो हम कहेंगे कि अगर ईर्ष्या नहीं होगी तो प्रतिस्पर्धा कैसे होगी! प्रतिस्पर्धा नहीं होगी तो विकास कैसे होगा! हम अपने भीतर के सब जहर, सब रोगों की सुरक्षा के लिए बहुत आयोजन किए हुए हैं, बहुत दलीलें इकट्ठी कर लिए हैं हम! हम अपने भीतर की सब बुराई की रक्षा करते हैं और फिर कहते हैं कि धीरे-धीरे बदलेंगे! वह धीरे-धीरे बदलना भी, न बदलने की तैयारी है।
जो आदमी कहता है कि धीरे-धीरे बदलेंगे, वह नहीं बदलना चाहता है।
उसे शायद पता भी नहीं है कि जो है भीतर; वह कितना रुग्ण, कितना बीमार, कितना कुरूप, कितना गंदा है। वह क्या है भीतर जो हमारे सब भरा हुआ है। लेकिन हम शास्त्रों में पढ़ लेते हैं कि भीतर तो परमात्मा का निवास है, भीतर तो आत्मा है! उस भीतर का हमें कोई पता ही नहीं है, जहां आत्मा है और जहां परमात्मा है।
अगर हम भीतर जाएंगे तो मिलेगी घृणा, आत्मा नहीं। अगर हम भीतर जाएंगे
तो मिलेगा क्रोध, आत्मा नहीं। अगर भीतर जाएंगे तो मिलेगी ईर्ष्या, मिलेंगे सब तरह के जहर, धुंआ आत्मा नहीं। वह आत्मा किताब में लिखी है कि आत्मा है भीतर। जब ये सब भीतर नहीं होंगे, तब वह मिलेगा, जो आत्मा है, जो

परमात्मा है। लेकिन अभी तो यह है, अभी ये हैं और इनको हम देखने से बचना चाहते हैं! हम कहते हैं, देखने की क्या जरूरत, धीरे-धीरे हम बदल लेंगे! आत्म-साक्षात्कार का पहला कदम अपने भीतर वह जो सब कुरूप है, उसका साक्षात्कार है। जो कुरूप है भीतर, उसका साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार का पहला कदम और बड़े आश्चर्य की बात है जो उसे देख लेता है, जो भीतर है--उसी क्षण बदलाहट शुरू हो जाती है। एक क्षण रुकना नहीं पड़ता। देखा और बदलाहट शुरू हो जाती है। निरीक्षण की, ऑब्जर्वेशन की, देखने की, अवेयरनेस की इतनी बड़ी क्षमता है, जिसका कोई हिसाब नहीं।
क्रांति का एक ही सूत्र है--भीतर जो है, उसके प्रति जाग जाना।
लेकिन हम तो भविष्य के प्रति जागे हुए हैं। जो है, उसके प्रति नहीं जागे! हम चूके हुए हैं उस बिंदु से जहां हम हैं। और भागे हुए हैं वहां, जहां हम नहीं हैं! भागते रहते हैं, भागते रहते हैं, जहां हम नहीं हैं! और जहां हम हैं, वहां हम आंख भी नहीं डाल कर देखते कि कहां हम हैं, हम क्या हैं!
और अच्छे-अच्छे सिद्धांतों की बातें वह हमें कंठस्थ हो गई हैं, उनको
हम दोहराए चले जाते हैं! और हर चीज के लिए हमने जस्टिफिकेशन, हर चीज को न्याययुक्त ठहराने की व्यवस्था कर ली है! हम कहते हैं हिंसा है, क्योंकि पिछले जन्म में बुरे काम किए थे, इसलिए उनकी हिंसा बाकी रह गई है। वह तो भोगनी पड़ेगी! क्रोध है, क्योंकि पीछे जो किया था, वह क्रोध पैदा कर गया है! जो हमारे भीतर है, उसके लिए हम दलीलें खोजते हैं कि वह क्यों है! दलीलें खोज कर हम निश्चिंत हो जाते हैं! व्याख्या, एक्सप्लेनेशन निश्चिंत कर देता है कि ठीक है।
हमें पता चल गया है कि क्यों है! और हम फिर पूछते हैं इसको मिटाएं कैसे! तो हमें विधियां बताने वाले लोग हैं। वे कहते हैं कि अगर क्रोध को मिटाना है तो क्षमाभाव ग्रहण करो! अगर सेक्स को मिटाना है ब्रह्मचर्य का व्रत लो! अगर हिंसा मिटानी है अहिंसा का पालन करो! इससे ज्यादा खतरनाक शिक्षा न हो सकती है, न है। यह सबसे ज्यादा खतरनाक बात है जिसने मनुष्य को पतित किया है। क्योंकि वे हिंसक को समझाते हैं कि तुम अहिंसा का भाव ग्रहण करो!
अब हिंसक अहिंसा का भाव कैसे ग्रहण कर सकता है? यह इंपॉसिबिलिटी है,
यह असंभावना है। हिंसक कैसे अहिंसा का भाव ग्रहण कर सकता है, यह कभी आपने सोचा? क्रोधी कैसे क्षमा की धारणा कर सकता है, यह कभी आपने सोचा? और कामी कैसे ब्रह्मचर्य का व्रत ले सकता है, यह कभी आपने सोचा? हालांकि, कामी ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं, और हिंसक अहिंसा का व्रत ग्रहण करते हैं, और लोभी अलोभ की बात करते हैं, आसक्त अनासक्ति के नियम लेते हैं! और हम कभी सोचते नहीं कि यह क्या हो रहा है?
इससे सिर्फ तनाव पैदा होता है। वे जो हैं उसमें और जो होना चाहते हैं उसमें तनाव पैदा होता है। वह तनाव मस्तिष्क की सारी शक्तियों को, प्राणों की सारी ऊर्जा को नष्ट करता है, और कुछ भी नहीं करता।
हर आदमी तना हुआ है, क्योंकि हर आदमी जो है, उसे देखने को राजी नहीं! और
जो नहीं है, वह होने की कोशिश कर रहा है! हर आदमी तना हुआ है, क्योंकि वह जो है, उसे देखता नहीं। और जो नहीं है, उसे होने की चेष्टा में संलग्न है! कितना तनाव पैदा नहीं हो जाएगा? इसी तनाव में मनुष्य की सारी शक्ति क्षीण हो जाती है। फिर मनुष्य शक्ति का एक अंबार नहीं रह जाता, फिर उसके पास कुछ भी शक्ति नहीं होती।
और एक दुष्परिणाम और घटित होता है कि जब बार-बार सोचता है कि यह हो जाऊं, यह हो जाऊं और बार-बार पाता है कि नहीं हो पाता, तब आत्म-विश्वास क्षीण होता चला जाता है।
मैं कलकत्ता था। एक बहुत अदभुत वृद्ध आदमी ने--जो चल बसे, उनसे मैं यह बात कर रहा था। उन्होंने खड़े होकर सभा में यह कहा कि मैंने अपनी जिंदगी में चार बार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। सुनने वालों ने सोचा कि बहुत गजब का काम किया, चार बार जीवन में व्रत लिया!
लेकिन वह बूढ़ा हंसने लगा और उस बूढ़े ने कहा कि समझ लो चार बार लेना पड़ा, उसका मतलब क्या होता है? और पांचवीं बार नहीं लिया तो यह मत समझना कि व्रत पूरा हो गया। पांचवीं बार नहीं लिया, क्योंकि समझ में आ गया कि व्रत

पूरा नहीं हो सकता है। और चार बार व्रत के असफल होने से जो आत्मग्लानि पैदा हुई, वह अलग, जो आत्महीनता पैदा हुई वह अलग, जो अपने पर विश्वास खो गया कि मैं कुछ कर सकता हूं, वह अलग।
दुनिया में नियम और व्रत देने वाले लोगों ने मनुष्य की आत्मा को हीन ग्लानि से भर दिया है। एक-एक आदमी की आत्मा ग्लानि से भर गई। उसे लगता है कि मुझसे कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि कितनी बार व्रत लिया और कुछ भी नहीं होता है। हर बार हार जाता हूं तो हारने की धारणा मजबूत हो जाती है। हिंसा नहीं छूटती, सेक्स नहीं छूटता। लेकिन सेक्स नहीं छूट सकता है, यह व्रत लेने वाले को बार-बार व्रत लेने से स्पष्ट हो जाता है।
और तब वह सोचता है अगर महावीर का छूट गया होगा तो वह तीर्थंकर थे। अगर कृष्ण का छूट गया होगा वह भगवान के अवतार थे। हम साधारण आदमी हैं, यह हमारे वश की बात नहीं। फिर वह सोचता है कि पिछले जन्मों के दुष्कर्म होंगे, उनके कारण नहीं छूटता! फिर वह सोचता है कि भविष्य में कोशिश करते रहेंगे, करते रहेंगे तो जन्मों-जन्मों में छूटने वाली चीज धीरे-धीरे छूट जाएगी! और इस तरह आदमी जैसा है, वैसा ही रह जाता है, उसके जीवन में कोई क्रांति नहीं हो पाती।
नहीं, सब छूट सकता है--इसी क्षण। लेकिन कल कभी नहीं छूट सकता। फिर क्या करें?
तो पहली तो बात है कल के छोड़ने की धारणा से छुटकारा चाहिए। यह खयाल ही भूल जाएं कि कल कुछ हो सकता है, क्योंकि आप अभी हैं--समय अभी है, घृणा अभी है। कल की बात क्यों करते हैं? और कल भी आप ही होंगे--यही घृणा होगी, यही समय होगा। फिर कल क्या करेंगे? कल कुछ नया हो जाने वाला है?
आज से आप कल और कमजोर होंगे। और आज से कल घृणा और मजबूत होगी। क्योंकि
एक दिन घृणा ने और यात्रा कर ली होगी, और एक दिन घृणा ने आपको और कमजोर कर दिया होगा। कल आप कमजोर होंगे। आपका क्रोध कल और भी मजबूत होगा, क्योंकि कल तक क्रोध ने और यात्रा कर ली होगी, और जड़ें फैला दी होंगी। कल तक क्रोध कई बार हो चुका होगा। फिर कल आप कहेंगे कि फिर आगे, कल करूंगा!
और यह यात्रा जारी रहेगी। मरते वक्त आप क्रोधी मरेंगे, कामी मरेंगे, हिंसक मरेंगे। फिर आप सोचेंगे, अगले जन्म में होगा! अगले जन्म में आप और कमजोर हो जाएंगे! भविष्य आपको मजबूत नहीं कर देगा। भविष्य आपको कमजोर करता चला जाएगा, क्योंकि जिन चीजों से आप कमजोर हो रहे हैं, उनकी यात्रा जारी रहेगी।
अगर टूटना है कुछ तो आज टूटेगा, कल नहीं। अगर बदलना है कुछ तो अभी, कल नहीं।
लेकिन बदलने की चेष्टा से भी कुछ नहीं बदला जाता है, क्योंकि बदलने की चेष्टा आप करते हैं। आप, जो कि हिंसक हैं, क्रोधी हैं--कैसे अहिंसक हो जाएंगे? फिर क्या किया जा सकता है? न कल बदला जा सकता है? और मैं कह रहा हूं कि न बदला जा सकता है। फिर क्या किया जा सकता है?
जागा जा सकता है। जो स्थिति है अभी, यहीं, उसके प्रति पूरी तरह जागा जा सकता है।
क्या है मेरे भीतर? एक-एक पल, रोआं-रोआं अहंकार से भरा हुआ है। उठना, बैठना अहंकार से भरा हुआ है। आंख के इशारों में घृणा है, हिंसा है, हाथ के उठने में हिंसा है, घृणा है। चलते हैं तो हिंसा है, घृणा है। जिंदगी की पूरी-पूरी व्यवस्था में वह सब छिपा है, जो कभी-कभी प्रकट होता है। हम सोचते हैं कि कभी-कभी मुझे क्रोध आता है! ऐसी भूल में मत पड़ना। क्रोध सदा रहता है, कभी-कभी प्रकट होता है। जो नहीं है, वह प्रकट कैसे हो जाएगा?
एक बिजली के तार में बिजली दौड़ रही है। बटन दबाते हैं तो बल्ब जल जाता
है, बटन नहीं दबाते तो बल्ब बुझा रहता है। लेकिन बिजली दौड़ रही है। बटन दबेगा तभी तो बल्ब जलेगा--बजली अगर दौड़ती होगी। अगर नहीं दौड़ती होगी तो बल्ब क्या जलेगा--बटन कोई कितना ही दबाए?
अगर मुझे कोई आकर गाली दे दे और भीतर क्रोध की करंट दौड़ न रही हो तो क्रोध निकलेगा कहां से। वह देता रहे गाली, बटन दबाता रहे, लेकिन भीतर अगर करेंट दौड़ रही है तो बल्ब जल जाएगा। लेकिन हम सोचेंगे कि कभी-कभी क्रोध होता है! कभी-कभी क्रोध नहीं होता! क्रोध प्रतिपल है, पूरे वक्त है। घृणा

कभी-कभी नहीं होती, वह मौजूद है। वह बिल्कुल मौजूद है, पूरे वक्त। हिंसा पूरे क्षण मौजूद है।
हम हिंसा ही हैं, क्रोध ही हैं, घृणा ही हैं--और इसको जानना पड़ेगा, इसको पहचानना पड़ेगा, इसको भीतर खोजना पड़ेगा, इसके पूरे के पूरे दर्शन करने पड़ेंगे, और यह अभी, यह दर्शन तो अभी करने पड़ेंगे, क्योंकि हम भी मौजूद हैं; वह सब भी मौजूद है, जिसका दर्शन करना है। तो कल का क्या सवाल है! खोलें अपने भीतर और अपने को पूरी तरह देखें कि यह मैं हूं।
और जैसे ही यह दिखाई पड़ जाए कि यह मैं हूं--आप हैरान हो जाएंगे कि बदलाहट शुरू हो गई। वह आपको करनी नहीं पड़ी। वह बदलाहट वैसे ही हो जाती है, जैसे सांप रास्ते पर खड़ा है और आप छलांग लगा जाते हैं। एक क्षण भी नहीं लगता छलांग लगाने में! सोचना भी नहीं पड़ता! अपने भीतर भी नहीं सोचना पड़ता कि मैं बचूं। छलांग हो जाती है।
तथ्य दिखता है सांप का और छलांग लग जाती है। अगर घृणा का पूरा तथ्य दिखाई पड़ जाए, आप उसी क्षण घृणा के बाहर हो जाएंगे--उसी क्षण। न कोई पिछले जन्म रोकेंगे न पिछले कर्म रोकेंगे। कोई रोकने वाला नहीं है। लेकिन दर्शन हो जाए तथ्य का--नग्न तथ्य का। वह जो नेकेड फैक्ट है हमारे भीतर जिंदगी का, वह दिख जाए, छलांग हो जाती है।
इसलिए पहली बात मैंने कही--अतीत का बोझ छोड़ दें और भविष्य की मानसिक योजना कि मैं यह हो जाऊंगा, मैं यह हो जाऊंगा। नहीं, जो हम हैं, उसे जानना है; जो मैं हूं, उसे जानना है। बहुत कष्टपूर्ण है, नहीं तो, नहीं तो हम भविष्य की योजना ही न करते। बहुत कष्टपूर्ण है; जो मैं हूं, उसे जानना, क्योंकि वह बहुत कुरूप है। वह बहुत कुरूप है, जो मैं हूं।
मैंने सुना है एक स्त्री थी, वह कभी दर्पण के सामने नहीं आती थी। और अगर कोई उसके सामने दर्पण ले आए तो वह दर्पण तोड़ डालती थी, क्योंकि वह कहती थी कि दर्पण बड़े गंदे हैं! इन दर्पणों के कारण मैं कुरूप दिखाई पड़ने लगती हूं! वह कुरूप थी। लेकिन जब तक दर्पण सामने नहीं आता था, तब तक तो कुरूप नहीं थी; तब तक तो वह सुंदर थी, क्योंकि तब तक कल्पना की बात थी। दर्पण सामने उसे बताता था वह क्या है। और दर्पण सामने नहीं होता था तो वह सुंदर थी। क्योंकि अपनी कल्पना में थी। फिर कोई देखने का तो सवाल न था। तो वह दर्पण देखती ही नहीं थी, वह दर्पण तोड़ डालती थी और वह मानती यह थी कि दर्पण के कारण मैं कुरूप हो जाती हूं! क्योंकि जब तक दर्पण नहीं होता, मैं सुंदर होती हूं! वह औरत पागल रही होगी!
लेकिन हम सब भी वैसे ही पागल हैं। हम सब भी उसे देखने से बचते हैं, जो
हम हैं! और उसे देखने से बचने के लिए हमने भी कल्पना में एक इमेज बना रखी है। हर आदमी ने अपनी एक प्रतिमा बना रखी है कि मैं यह हूं। वह प्रतिमा बिल्कुल झूठी है। वह प्रतिमा वही नहीं है, जो हम हैं। बल्कि जो हम हैं, उसे छिपाने के लिए हमने प्रतिमा बना रखी है कि हम यह हैं।
हर आदमी अपने को कुछ और समझता है, जो वह है। और आप इसको सोचेंगे तो यह बहुत साफ दिखाई पड़ जाएगा कि जो मैं हूं, वह मैं कभी नहीं। कभी स्वीकार भी नहीं करता कि मैं यह हूं! बल्कि लड़ता हूं, अगर कोई स्वीकार कराने के लिए मजबूर करे तो झगड़ा करूंगा, लडूंगा, अपनी प्रतिमा को बचाने की कोशिश करूंगा कि नहीं, मैं यही हूं।
लेकिन ध्यान रहे, ये सारी प्रतिमाएं मेरे व्यक्तित्व को रूपांतरित होने से रोकेंगी। ये क्रांति में नहीं जाने देंगी, ये बदलने नहीं देंगी। यह नये आदमी का भीतर जन्म नहीं हो सकेगा, क्योंकि मैंने अगर एक झूठी प्रतिमा बना रखी है। तो मैं उसी प्रतिमा को मान कर जीता रहूंगा। और जो मैं हूं, वह कुछ और ही हूं, उसका मुझे पता भी नहीं चलेगा! हम भूल ही गए हैं। हमने अपने को इतना भीतर दबाया हुआ है कि हम पहचान भी नहीं पाते कि हम क्या हैं! फिर हम नये-नये वस्त्रों में, नये-नये मुखौटों में, नई-नई ऊपर से ओढ़ कर ओढ़नियां, छिपा लेते हैं, उसे जो हम हैं। लेकिन वही है, इसका दर्शन कठिन। मेरी दृष्टि में स्वयं की जो स्थिति है, उसको देखने से बड़ी और कोई तपश्चर्या नहीं। धूप में खड़ा होना बहुत आसान है, भूखा बैठ जाना भी बहुत आसान है। और अगर भूखे रहने की आदत डाल ली जाए, तब तो खाना खाना कहीं ज्यादा कठिन है, भूखा रहना ही फिर ज्यादा आसान है। नग्न खड़े हो जाना भी बहुत आसान

है। ये सब थोड़ी सी बातें हैं, जो कोई भी कर सकता है। इसमें तपश्चर्या का कोई भी संबंध नहीं है। असली तपश्चर्या--मैं जैसा हूं, उसे जानने से शुरू होती है, क्योंकि असली कष्ट वहीं से शुरू होते हैं, जैसा मैं हूं।
हम सब समझते हैं कि हम सत्य बोलते हैं। और हम सब अगर कोई झूठ बोलता हो
तो भारी निंदा करते हैं। और हम हैरान होते हैं कि इतना अच्छा आदमी इतनी छोटी सी बात पर झूठ बोल गया! लेकिन हम कभी नहीं सोचते कि हमारा सारा व्यक्तित्व झूठ से खड़ा हुआ है। हम चौबीस घंटे झूठ हैं। झूठ न केवल बोल रहे हैं, झूठ जी रहे हैं! और यहां तक हालत पहुंच गई है कि हमें पता भी नहीं चलता कि हम झूठ बोल रहे हैं!
मेरे एक अध्यापक थे। मैंने कई बार ऐसा अनुभव किया कि किसी भी किताब का नाम लिया जाए और वह जरूर कहते थे कि मैंने पढ़ी है! ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई किताब ऐसी हो, जो उन्होंने न पढ़ी हो! फिर मुझे शक हुआ। मैं एक दिन गया और मैंने एक ऐसी किताब का नाम लिया, जो है ही नहीं। और वह बोले, मैंने पढ़ी है! लेकिन कोई पंद्रह-बीस साल पहले पढ़ी है। अब मुझे उसका खयाल नहीं है, लेकिन किताब मैंने पढ़ी है! कौन सी बात थी, अब उनको झूठ बोलने से कोई फायदा भी न था। लेकिन शायद उन्हें पता भी नहीं, शायद उन्हें खयाल भी नहीं कि वह क्या कर रहे हैं! आदत का हिस्सा हो गया है, आदत का हिस्सा हो गया है। सहज बोल रहे हैं। बड़ी सहजता से बोल रहे हैं। उन्हें कहीं खयाल भी नहीं है कि यह जो मैं बोल रहा हूं, उसमें क्या प्रयोजन है!
एक आदमी झूठ बोलता हो, कुछ लाभ होता हो तो भी समझ में आता है। हम ऐसे झूठ भी चौबीस घंटे बोल रहे हैं, जिनसे कोई लाभ भी नहीं! लेकिन नहीं हमारा व्यक्तित्व ही, जिसको कहें झूठ हो गया है, वह झूठ बोल रहा है, वह बोलता चला जा रहा है! यह जो ऐसा जो झूठ है, इसे पहचानेंगे तो मन को बड़ी पीड़ा होगी। वह जो हमने अपनी सत्य बोलने वाले की एक प्रतिमा बना रखी है, एकदम खंड-खंड होकर नीचे गिर जाएगी। गिर जानी चाहिए।
वह जिसको भी आत्यंतिक सत्य की खोज है, जिसको भी जान लेना है कि क्या है गहरे से गहरा जीवन का सत्य, जिसको भी पहचान लेना है, उसे जिसे परमात्मा कहें, जिसे भी मुक्त हो जाना है, उसे सबसे पहले अपनी झूठी प्रतिमा को तोड़ना पड़ता है। अपने ही हाथों से अपनी ही मूर्ति का भंजन करना होता है।
कितनी हिंसा है--खयाल ही नहीं रहा है कि कितनी हिंसा है। हम सोचते हैं
कि शायद हिंसा का मतलब यह है कि किसी आदमी की छाती में छुरा मार दो तो हिंसा हो गई। शब्द छुरे मार सकते हैं, आंख का इशारा छुरा मार सकता है।
जब आप अपने नौकर को देखते हैं, तब आपने खयाल किया, वह आंख वही नहीं होती जब आप अपने मित्र को देखते हैं तब होती है। मित्र को जब आप देखते हैं तो आंख वही नहीं होती है, जब आप नौकर को देखते हैं तो आंख दूसरी होती है। नौकर को देखते वक्त आंख में हिंसा होती है, लेकिन वह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। वह हमें खयाल में भी नहीं आती!
हम सोचते हैं, पानी छान कर पी लेते हैं, हम अहिंसक हो गए! हम सोचते हैं
कि हम रात खाना नहीं खाते, अहिंसक हो गए। हम सोचते हैं, हम मांसाहार नहीं करते! हम अहिंसक हो गए, हम मछली नहीं खाते हम अहिंसक हो गए, ठीक है। हिंसा इतनी ही होती तो ठीक था। हिंसा बहुत गहरी है, हिंसा बहुत-बहुत रोएं-रोएं में समा गई है। आदमी चलता है तो पता चल सकता है कि आदमी हिंसक है कि नहीं। उसकी चाल में हिंसा हो सकती है, उसके उठने-बैठने में हिंसा हो सकती है, उसके माथे की बलों में हिंसा हो सकती है और उसे पता भी नहीं होगा! वह सब उसमें जीते-जीते इतना पक गया है कि उसे पता भी नहीं चलेगा कि वह किस तरह की हिंसाएं कर रहा है! वह हंस सकता है और हंसने में हिंसा हो सकती है। वह किसी का व्यंग्य कर सकता है और व्यंग्य में हिंसा हो सकती है। वह मजाक कर सकता है और मजाक में हिंसा हो सकती है।
वायलेंट माइंड का सवाल है, अगर भीतर हिंसक चित्त है तो हम जो भी करेंगे, उसमें हिंसा होगी।
यह भी हो सकता है, वह आदमी सारी दुनिया से छूट कर भाग जाए, वह जंगल में अकेला बैठ जाए तो भी, तो भी हिंसा जारी रहेगी। हिंसा हमारे व्यक्तित्व के भीतरी रसों का सवाल है। वह हमारे भीतरी केमिस्ट्री का सवाल है। और उसको

पहचानना पड़ेगा। हम उठते-बैठते, बातचीत करते, चलते, सोते हिंसक तो नहीं हैं?
महावीर एक ही करवट सोते थे। महावीर ने सोते में करवट नहीं बदली। बुद्ध एक करवट सोते थे। आनंद उनका भिक्षु वर्षों तक उनके साथ सोया। वह बहुत हैरान हुआ कि वे रात में करवट क्यों नहीं बदलते! एक दिन आनंद ने बुद्ध को पूछा कि बड़े आश्चर्य की बात हैआप रात भर करवट नहीं बदलते? मैं कल पूरी रात जागकर देखता रहा कि आप करवट बदलते हैं कि नहीं, पर आपने जहां हाथ रखा, रखा। जहां पैर रखा, रखा। फिर आप रात भर वैसे ही सोए रहे!
बुद्ध ने कहाः अकारण करवट बदलने में हिंसा हो सकती है। कोई कीड़ा- मकोड़ा आ गया हो, पीछे विश्राम करता हो, सो गया हो, रात के अंधेरे में करवट बदलूं, अकारण--क्या जरूरत है? जीवन में एक बार करवट बदली थी और तब खयाल आया कि बिना करवट बदले भी सोना हो सकता है तो क्यों बदलूं।
तो आनंद ने पूछाः क्या होश से सोते हैं पूरी रात, होश रखते हैं? क्योंकि हमसे तो करवट बदल जाती है, हम बदलते थोड़े ही हैं।
बुद्ध ने कहाः नहीं, होश से नहीं, मन जितना शांत हो गया है, उतनी करवट बदलनी कम हो गई है।
आप हैरान होंगे, मन जितना अशांत होगा, रात उतनी करवट ज्यादा बदली जाएगी। वह जो करवट बदलना है, वह वायलेंट माइंड का हिस्सा है। एक अशांत आदमी बैठेगा तो बैठे टांग हिलाता रहेगा! कोई पूछे कि ये टांगें किसलिए हिल रही हैं, यह क्या हो गया है टांगों को? कुर्सी पर बैठे हैं लेकिन टांगें क्यों हिलती हैं? भीतर वायलेंस है, वह वायलेंस कंपा रही है, वह टांगों को हिला रही है! अब यह टांगों के हिलने में वायलेंस हो सकती है, हिंसा हो सकती है तो किसी की छाती में छुरा मारकर ही पता नहीं चलता। वह तो हमारे पूरे व्यक्तित्व की अंतरधारा पहचाननी पड़ेगी कि ये पैर क्यों हिल रहे हैं अकारण। यह पैर क्यों हिलते हैं? जैसे-जैसे आदमी शांत होगा, उसका शरीर भी शांत होता चला जाएगा, उसके कंपन कम हो जाएंगे, क्योंकि कंपन भीतर की हिंसा से पैदा होती है।
यह व्यक्तित्व की एक-एक पर्त को उघाड़ कर देखना होगा। जैसा व्यक्तित्व है, उसे पहचानना होगा।
रास्ते पर आप जा रहे हैं, दो आदमी लड़ रहे हैं, आप खड़े होकर देख रहे हैं! आपने कभी भी नहीं सोचा होगा कि यह हिंसा है! दो आदमी लड़ रहे हैं, आप खड़े होकर क्यों देख रहे हैं? आपको खड़े होकर देखने में रस आ रहा है कि नहीं? और अगर झगड़ा ऐसे ही खतम हो जाए, बिना मार-पीट हुए, तो आप थोड़े से दुखी लौटेंगे कि नहीं? कि व्यर्थ ही खड़े रहे, कुछ निकला नहीं! थोड़ा सा मन उदास होकर लौटेगा। और अगर तेजी से झगड़ा हो जाए, छुरेबाजी हो जाए और लहू बह जाए तो आप थोड़े से हलके होकर लौटेंगे! मन थोड़ा निश्चिंत हो गया होगा। ऐसा लगेगा कि कुछ हुआ, कुछ देखा!
आखिर ये फिल्में डिटेक्टिव फिल्में, और खूनी और हत्यारों की कहानियां क्यों पढ़ी जाती हैं? ये हिंसक चित्त के कारण। जितना दुनिया में हिंसक चित्त बढ़ता चला जाएगा, उतना हिंसक चित्र, हिंसक कथाएं रस देती हैं। क्यों? क्योंकि हिंसक कथा को देखते-देखते आप भूल जाते हैं कि आप कथा के हिस्से नहीं हैं--आप कथा के हिस्से हो जाते हैं! अगर आप एक जासूसी फिल्म देख रहे हैं तो आप भूल जाते हैं आप, किसी के साथ आइडेंटिटी हो जाती है आपकी! नायक के साथ आप एक हो जाते हैं! आप देखेंगे कि जब नायक घोड़े पर भागा जा रहा है तेजी से तो आप भी कुर्सी पर अकड़ कर बैठ गए हैं! झुके हुए नहीं रह गए हैं, आप क्यों अकड़ कर बैठ गए हैं? यह आपकी रीढ़ को क्या हो गया? यह आकस्मिक नहीं है, यह भीतर की हिंसा है! आप भी किसी घोड़े पर इसी तरह बैठ कर, इसी गति से यात्रा करना चाहते हैं। किसी की छाती में इसी तरह भाला भोंकना चाहते हैं, वह भोंक नहीं सके हैं आप, कहानी में देख कर रस ले रहे हैं, तृप्ति कर रहे हैं!
वहां स्पेन में भैंसों के साथ आदमियों को लड़ाया जाता है! लाखों लोग देखने इकट्ठे होते हैं! भारी धूप है, आग बरस रही है और घंटों वे बैठे हुए हैं कि भैंसे से एक आदमी लड़ रहा है! और भैंसे के सींग उसकी छाती में घुस गए हैं और लाखों लोग उत्सुकता और आतुरता से उसके गिरते हुए खून को देख रहे

हैं? इनको क्या हो गया है? इन आदमियों को क्या हो गया है? कुश्ती देखने हजारों लाखों लोग इकट्ठे होते हैं, किसलिए? भीतर की हिंसा को रस मिलता है! यह रस पहचानना पड़ेगा, तो हमें अपनी प्रतिमा का पता चलेगा कि प्रतिमा कैसी है? यह हम कैसे आदमी हैं? यह हमारे भीतर क्या हो रहा है?
जो अखबार जितनी हत्याओं की, आत्महत्याओं की, स्त्रियों को भगाने की; खबरें छापता हो, वह उतना ही ज्यादा बिकता है! कौन पढ़ता है? जो लोग पढ़ते हैं, उनके भीतर की किसी हिंसा को, किसी बात को रस उपलब्धि होती है। वे इसको पढ़ कर सुखी होते हैं, कहीं उन्हें कुछ आनंद आता है! यह आनंद हिंसा है! और इसे पहचानना पड़ेगा, और ये तथ्य हैं। और किसी भविष्य में आप अहिंसक नहीं हो जाने वाले हैं। इन तथ्यों को आज और यहीं देखना पड़ेगा।
गांधीजी के आश्रम में एक दिन सुबह रामायण की कथा पढ़ी जाती थी। और एक प्रसंग आया, एक बहुत अदभुत प्रसंग है। प्रसंग आया कि सीता को रावण चुरा कर ले गया तो सीता अपने हाथ के, पैर के, अपने गले के जो आभूषण थे, वह फेंकती गई, ताकि पीछे राम खोजने आएं तो उन्हें रास्ते का पता हो सके कि सीता किस रास्ते से ले जाई गई है। फिर राम आए और उन्हें वे आभूषण मिल गए।
लेकिन राम तो आभूषण नहीं पहचान सके! तो उन्होंने लक्ष्मण को कहा कि ये आभूषण तुझे पहचान में आते हों? ये सीता के ही हैं? क्योंकि मैं तो देख ही नहीं पाया कभी। मैंने तो खयाल ही नहीं किया!
तो लक्ष्मण ने कहा मैं सिर्फ पैर के आभूषण पहचान सकता हूं, चूंकि मैंने पैर के ऊपर कभी आंख उठा कर नहीं देखा! तो गांधीजी ने कहाः यह बड़ी हैरानी की बात है कि लक्ष्मण इतने दिन साथ था! तीनों थे अकेले, राम थे, सीता थी, लक्ष्मण थे। तीनों ही वर्षों जंगल में साथ हैं! और लक्ष्मण ने कभी आंख उठा कर नहीं देखा! यह बड़ी हैरानी की बात है! इसका क्या मतलब?
तो विनोबा ने कहाः इसका मतलब है कि लक्ष्मण ब्रह्मचारी था और वह ऊपर आंख उठा कर उसने नहीं देखा! उसने सिर्फ पैर ही देखे!
गांधीजी तृप्त हुए और उन्होंने कहा कि विनोबा की व्याख्या अदभुत है
और बिल्कुल सही है।
और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह विनोबा की व्याख्या एकदम गलत है। और अगर यह व्याख्या सही है तो लक्ष्मण एकदम ही व्यभिचारी चित्त का आदमी था, अगर यह व्याख्या सही है। क्योंकि लक्ष्मण सीता को भी देखने में डरे, यह ब्रह्मचर्य का सबूत नहीं हो सकता, सीता को भी देखने में डरे! यह व्यभिचारी चित्त का सबूत तो हो सकता है। लक्ष्मण ब्रह्मचर्य की स्थिति में हो तो सीता को देखने, न-देखने में क्या फर्क पड़ता है? और ऐसे नजर नीचे ही नीचे रखनी पड़े, पैर ही पैर पर वर्षों तक, और नजर ऊपर जाने में डर लगे, तो ही रोकनी पड़े, और नियम रखना पड़े कि नजर पैर पर ही रखनी है। यह बहुत घबड़ाए हुए चित्त का लक्षण है। विनोबा ने लक्ष्मण की प्रशंसा नहीं की--इससे बड़ी कोई निंदा नहीं हो सकती।
लेकिन गांधी और विनोबा को बात जंची! वह जंची उनको, इसलिए नहीं कि वह बात सही है, वह जंची इसलिए कि उनके ब्रह्मचर्य की धारणा यही है।
यह ब्रह्मचर्य नहीं है, यह अबह्मचारी चित्त का लक्षण हुआ। यह हमें पहचानना पड़ेगा, यह हमें अपने भीतर खोज करनी पड़ेगी। किसी स्त्री के चेहरे को हम इसलिए न भी देख सकते हैं कि भीतर काम है, वासना है। और किसी स्त्री के चेहरे को देखने से हम आंख इसलिए भी बचा सकते हैं कि भीतर काम है और वासना है। अगर भीतर काम और वासना नहीं है तो न-चेहरे को देखने की कोई विशेष चेष्टा होती है, न न-देखने की कोई विशेष चेष्टा होती है। देखने की या न देखने की विशेष चेष्टा भीतर के काम का सबूत है। विशेष चेष्टा भीतर काम का सबूत है।
सहज, आप वृक्ष को देख लेते हैं, ऊपर भी देखते हैं, नीचे भी देखते हैं।
और अगर वृक्ष सुंदर होता है तो आप कहते हैं, अहा, बहुत सुंदर है। लेकिन कोई नहीं कहता है कि यह आदमी कामी है। फूल है, खिला है। आप देख लेते हैं, अपने रास्ते पर बढ़ जाते हैं और कहते हैं, बहुत सुंदर हैं, लेकिन कोई नहीं कहता, यह आदमी कामी है! और अगर एक स्त्री का चेहरा बहुत सुंदर है और आप देखते हैं, देखते हैं, आगे बढ़ जाते हैं और कहते हैं बहुत सुंदर हैं तो लोग कहेंगे कि यह आदमी कामी है!

यह आश्चर्यजनक बात है। अगर एक पुरुष का चेहरा सुंदर है और एक स्त्री खड़े होकर देखती है और कहती है, सुंदर है, तो हम कहेंगे, यह स्त्री कामी है! अगर सरलता जीवन में हो तो जैसे फूल सुंदर है, जैसे चांद सुंदर है, वैसे आदमी के चेहरे भी सुंदर होते हैं। स्त्री के चेहरे भी सुंदर होते हैं। आंखें भी सुंदर होती हैं। और जिस दिन दुनिया अच्छी होगी और भली होगी, उस दिन हम किसी अजनबी को रास्ते पर रोक कर कह सकेंगे कि बहुत सुंदर आंखें हैं तुम्हारी, बहुत आनंद हुआ। नमस्कार।
लेकिन आज अगर किसी को ऐसा रोक कर कहें तो झगड़ा भी हो सकता है, क्योंकि चित्त कामुक है! वह चित्त सेक्सुअल है। वह चीजों को सेक्स सिंबल में ही लेता है। अगर किसी स्त्री को रोक कर कह दें बहुत सुंदर आंखें, बहुत खुश हुआ, तो झंझट हो जाएगी, क्योंकि स्त्री पूछेगी, तुम मेरे कौन हो--भाई हो, पति हो, मेरे बेटे हो? कौन हो, पहले यह सिद्ध करो। अगर यह कोई भी नहीं हो तो अजनबी, राह चलते तुमने मेरी आंखों के सौंदर्य की बात कैसे की? ब्रह्मचारी को पैर पर नजर रखनी चाहिए। तुमने आंखें देखी ही कैसे?
लेकिन हमें पता नहीं कि पूरी सभ्यता कामुक है! और हमारे सारे प्रतिमान कामुकता के हैं! और हम पहचान भी नहीं पाते। और जब हम इस तरह की व्याख्याएं कर लेते हैं तो कामुकता को जानना मुश्किल हो जाता है। नहीं, भीतर एक-एक पर्त उघाड़ कर देखनी पड़ेगी कि मैं जो कर रहा हूं, जो सोच रहा हूं, जो जी रहा हूं, वह क्या है? अपनी नग्नता में वह सीधा और सच क्या है? वह सीधा और सच जो है, अगर देखा जा सके तो उससे तत्क्षण छुटकारा हो सकता है।
धर्म क्रांति है, धर्म विकास नहीं है। लेकिन क्रांति होती है तथ्य के दर्शन से।
इसलिए आज की इस बैठक में मैंने आपसे यह कहा। मत सोचें कि कल आप ऐसे हो जाएंगे। आज क्या हैं, उसे देखें। भविष्य के तनाव को बिल्कुल छोड़ दें। वह बिकमिंग का खयाल कि मैं यह हो जाऊंगा, बिल्कुल छोड़ दें और जो है, उसे जानें।
और आश्चर्य की घटना घटती है कि जो है, उसे जानते ही जो गलत है, वह विसर्जित हो जाता है; जो श्रेष्ठ है, वह प्रकट हो जाता है। जो है, उसे जानते ही, और भीतर, और भीतर प्रवेश शुरू हो जाता है, क्योंकि निकृष्ट गिरने लगता है, व्यर्थ गिरने लगता है, कुरूप विसर्जित होने लगता है, सुंदर खिलने लगता है, शिव प्रकट होने लगता है, सत्य की निकटता बढ़ने लगती है। और एक दिन वह जो वस्तुतः हम हैं भीतर, वह प्रकट हो जाता है। एक दिन का मेरा मतलब कल से नहीं; एक दिन से मेरा मतलब--अभी, यहीं, इसी क्षण। जितनी तीव्रता होगी तथ्य को जानने की, सत्य के हम उतने ही निकट पहुंच जाते हैं।
लेकिन हमारे मन की जो आदत है, वह कहेगी, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। हम इसका प्रयोग करेंगे, बस बात खत्म हो गई, वहीं सब व्यर्थ हो गया। आपका मन कह रहा होगा कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, करेंगे। करेंगे नहीं; करना है--अभी, आज, यहीं। सारा जोर मेरा इस क्षण पर है, क्योंकि इस क्षण के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं। जो होगा, वह इस क्षण में ही हो सकता है। नहीं करना हो, तो फिर कल के क्षण की बात सोची जा सकती है। नहीं करना हो तो सोचना चाहिए, कल करेंगे। जो भी न करना हो उसे कल पर टाल देना चाहिए, जो भी करना हो--उसे अभी। यह अगर हम अतीत के बोझ से और भविष्य की योजना से मुक्त हो जाएं तो जीवन बदल जाता है। ऐसा जीवन, जिस पर अतीत का बोझ नहीं, भविष्य का तनाव नहीं, ऐसे जीवन को मैं भागवत जीवन, डिवाइन लाइफ कहता हूं। ऐसा जीवन भगवान को उपलब्ध हो जाता है।
इन्हें, यह जो मैंने कहा, इन्हें आप इस तरह मत सोचना कि मैं जो कह रहा हूं, वह ठीक है या गलत; वह किस किताब में लिखा है, या नहीं लिखा। इन्हें आप इस तरह मत सोचना, क्योंकि इस तरह सोचने से कोई भी अर्थ, प्रयोजन नहीं है। इन्हें आप इस तरह सोचना कि जो मैंने कहा है, वह आपके भीतर सही है या गलत। इस तरह सोचना, इस दिशा में सोचना कि मेरे भीतर यह सही है या गलत। इस तरह मत सोचना, अभी जैसे मैंने गांधी की बात कही, विनोबा की बात कही। न मुझे विनोबा से कोई मतलब, न गांधी से कोई मतलब। इस तरह मत सोचना कि गांधी ने ऐसा क्यों कहा, कहा कि नहीं कहा; या दूसरी बात कही कि विनोबा ने, कुछ और मतलब रहा होगा। इससे कोई लेना-देना नहीं है, न विनोबा से कुछ लेना, न गांधी से।

सवाल यह है कि जब आप किसी स्त्री के पैर पर ही आंख रखें और ऊपर आंख उठाने की हिम्मत न पड़े तो खोज करना कि बात क्या है! तो खोज करना कि मामला क्या है! मैं डरा हुआ क्यों हूं? यह आंख ऊपर सरलता से क्यों नहीं उठती? उससे संबंध है!
और जब रास्ते पर रुक जाएं आप, और किसी को लड़ते देखें तो उस वक्त देखना
कि चित्त कोई प्रसन्नता अनुभव कर रहा है? चित्त चाहता है कि झगड़ा हो जाए? ठीक से हो जाए। अपने पर खोजना, अपने पर देखना। तो, तो जो मैं कह रहा हूं, उसका कोई परिणाम हो सकता है। और वह क्रांति आ सकती है, जिस दिशा के लिए सारी चेष्टा है।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। थोड़े-थोड़े फासले पर हो आएं। चुपचाप बिना बात किए... धूप से हट जाएं। तकलीफ न हो, घनी छाया में हो जाएं... बिना बात किए जल्दी से बैठ जाएं।
शरीर को एक दम... शांत और शिथिल छोड़ दें। आंख आहिस्ता से बंद कर लें...
दस मिनट के लिए बिल्कुल मिट जाना है... प्रकृति के साथ एक हो जाना है। इन वृक्षों के... धूप के... हवाओं के साथ एक हो जाएं... और फिर जो भी चारों तरफ होता रहे, उसे चुपचाप जानते रहना है... सिर्फ एक द्रष्टा, एक साक्षी की भांति... कुछ करना नहीं... भीतर कुछ भी नहीं करना है... जो हो रहा है, उसे जानते रहना है... देखते रहना है... आवाज सुनाई पड़े... सुनते रहना है। जो भी हो... धूप आंख पर पड़े, उसे जानते रहना है। हम एक हिस्सा हैं... इन दरख्तों के... इस जमीन के... इस आकाश के... इस धूप के... इस हवा के हम एक हिस्सा हैं... हम अलग नहीं। और... हमें कुछ भी नहीं करना है। जो भी हो रहा है... वह परमात्मा कर रहा है। वह हो रहा है... हमें सिर्फ जानना है... सिर्फ देखना है। क्या हो रहा है--भीतर बाहर जो भी हो रहा है... उसे जानते रहना है। भीतर कोई विचार चलें उन्हें जानते रहना है... श्वास चले उसे जानते रहना है... हृदय की धड़कन सुनाई पड़ने लगे उसे जानते रहना है। कोई पक्षी की आवाज आए उसे जानना... कोई बच्चा रोने लगे उसे जानना... बस जानने का एक बिंदू हम रह जाएंगे। अब शरीर को शिथिल छोड़ दें। आंख बंद कर ली हैं... दस मिनट के लिए मिट जाएं।
हम नहीं हैं... एक हिस्सा हो गए समस्त का... और... जानते रहें। हवाएं चलेंगी, जानते रहें... आवाज आएगी, जानते रहें। और जानते... जानते ही मन शांत होता चला जाएगा। जानते... जानते ही मन शांत होता चला जाएगा... देखें... अनुभव करें... जानें... और मन शांत होता चला जाएगा। मन धीरे-धीरे शांत होता चला जाएगा। जैसे-जैसे आप जागेंगे भीतर वैसे-वैसे मन शांत होता चला जाएगा। सोया मन अशांत होता है... जागा मन शांत होता है... जागें... पूरे जागरूक साक्षी बन कर अनुभव करते रहें।
अब दस मिनट के लिए अनुभव करें जो भी है... जैसा भी है... बस जागे हुए देखते रहें... अनुभव करते रहें... जो भी होता हो होने दें... छोड़ दें अपने को... बिल्कुल एक हो जाएं... जो भी होता हो, हो। जागे रहें... जागे रहें... बिल्कुल छोड़ दें... जैसे हैं ही नहीं... मिट जाएं... जो भी होता हो होने दें...
मन धीरे-धीरे शांत होता चला जाएगा... मन शांत होता चला जा रहा है... मन शांत होता चला जा रहा है... मन शांत होता चला जा रहा है... जानते रहें... जानते रहें। बस जागे हुए जान रहे हैं, कुछ करना नहीं है... अपने को बिल्कुल छोड़ दें... जो भी होता हो होने दें। आंसू बह जाएं, बह जाएं... रोना आ जाए, आ जाए... शरीर गिर जाए, गिर जाए... अपने को बिल्कुल छोड़ दें... सिर्फ जानते रहें... जो भी हो रहा है, जानते रहें... बिल्कुल छोड़ दें जैसे हैं ही नहीं। जो भी हो रहा है, हो रहा है... हम सिर्फ जान रहे हैं। मन शांत होता जाएगा... मन शांत होता जाएगा... मन बिल्कुल शांत हो जाएगा।
मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है। जागे हुए... होश से भरे हुए बैठे रहें। होश... जागरण... भीतर साक्षी बने रहें... जो भी हो रहा है--बाहर भीतर जो भी है... जानते रहें। और अपने को बिल्कुल छोड़ दें... और गहरे में... और गहरे में मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत होता जा रहा है।
मन शांत होता जा रहा है... मन बिल्कुल शांत होता जा रहा है... मन गहरी शांति में उतरता जा रहा है।
छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... जो भी हो हो... मन शांत होता जा रहा है... बिल्कुल छोड़ दें... शरीर को बिल्कुल छोड़ दें... गिरे, गिर जाए... कोई भीतर

नियत्रंण न रखें... आंसू आते हों आ जाएं... उससे हलका हो जाएगा... बहुत कुछ बह जाएगा... जो बंधा है... उसे छोड़ दें... बिल्कुल तोड़ दें।
मन शांत हो गया है... मन शांत होता जा रहा है। मन बिल्कुल शांत हो जाएगा... भीतर एक शून्य आ जाएगा। धूप है... हवाएं हैं... वृक्ष हैं... पक्षियों की आवाज... लेकिन हम... हम मिट गए।
एक शांति, एक शून्य भीतर पैदा हो गया है... मन शांत हो गया।
अब धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ और भी शांति आती मालूम होगी। दो चार गहरी श्वास लें। फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। जैसी शांति भीतर है वैसी बाहर भी है। धीरे-धीरे आंख खोलें।
चार बजे मौन के लिए हम मिलेंगे। तो चार बजे जब यहां आएं, उसके आधा घंटे पहले से ही चुप होने की कोशिश करें। मौन होने की कोशिश करें। बात बंद कर दें। कम कर दें। स्नान कर के आ सकें, अच्छा! कपड़े बदल कर आ जाएं। फिर चुपचाप यहां बैठ जाएं। उस घंटे भर में किसी को भी लगे कि मेरे पास आना है--वह दो मिनट के लिए मेरे पास आ जाए, फिर चुपचाप अपनी जगह चला जाए।

सुबह की बैठक हमारी पूरी हुई।

सम्भावनाओं की आहट
पांचवां प्रवचन

धारणाओं की आग
(22 मार्च 1969 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि क्रोध को हम जानते हैं, पहचानते हैं, लेकिन फिर
भी क्रोध मिटता नहीं है! और सुबह आपने कहा कि यदि हम देख लें, जान लें, पहचान लें, तो क्रोध मिट जाना चाहिए!

इस संबंध में दो-तीन बातें समझनी हैं। पहली तो बात यह क्रोध के विरोध में हमें इतनी बातें सिखाई गई हैं कि उन विरोधी बातों के कारण क्रोध को हम कभी भी सरलता से देखने में समर्थ नहीं हो पाते हैं।
जिससे हमारा विरोध है, उसे देखना मुश्किल हो जाता है।
जिसके संबंध में हमने पहले से ही निर्णय ले रखा है कि वह पाप है, बुरा है, नरक का द्वार है, उसे हम देख कैसे सकेंगे? देखते ही हमारे भीतर विरोध दौड़ जाता है। विरोध के कारण हमारे और क्रोध के बीच में एक दीवाल खड़ी हो जाती है, वह दीवाल देखने नहीं देती।
आपने कभी अपने दुश्मन के चेहरे को गौर से देखा है? जिससे दुश्मनी है, उसे देखने का मन ही नहीं करता है। और फिर जिससे दुश्मनी है, उसे आप देखना भी चाहें तो नहीं देख सकते हैं। आप वही देख लेंगे, जो आपकी दुश्मनी ने मान रखा है। दुश्मन को देखना बहुत मुश्किल है, क्योंकि दुश्मन के संबंध में हमने निश्चित धारणा बना रखी है कि बुरा आदमी है। वह जो हमारी धारणा है, उसके ही हमें दर्शन हो जाएंगे। उसके नहीं, जो दुश्मन असलियत में है, जैसा है।
क्रोध के, काम के, लोभ के, भय के संबंध में हमें इतनी बातें सिखाई गई हैं कि हमारा पूरा चित्त धारणाओं से भर गया है!
क्रोध को हम नहीं जानते, क्रोध के संबंध की धारणा को ही जानते हैं, कनसेप्ट जो हमारा है, वही हम जानते हैं। हमने क्रोध को कभी आमने-सामने एनकाउंटर नहीं किया। हमने कभी उसे वैसा ही नहीं देखा, जैसा वह है। हमें बताया गया है। और जो हमें बताया गया है, वही हम देख लेते हैं!
तो पहली तो बात यह है कि अगर क्रोध को, लोभ को, सेक्स को देखना हो तो उस संबंध में सारी सीखी धारणाओं को एक बार भी छोड़ देना आवश्यक है। निष्पक्ष मन लेकर जाना पड़ेगा। बड़ी मुश्किल होगी। क्रोध के संबंध में कैसे निष्पक्ष मन लें। सेक्स के संबंध में कैसे निष्पक्ष मन लें। वह तो जाहिर पाप है। सभी संतों ने, सभी महात्माओं ने, सभी महापुरुषों ने कहा है कि पाप हैं, बुरे हैं। उसके संबंध में निष्पक्ष कैसे हो जाएं। ये संत महात्माओं की सारी शिक्षा निष्पक्ष नहीं होने देती। और जब तक निष्पक्ष नहीं होते तब तक दर्शन नहीं होगा। और जब तक दर्शन नहीं होता तब तक मुक्त होना असंभव है। पहली बात है, निष्पक्ष मन से, क्रोध क्या है? लेकिन आप कहेंगे, हमें मालूम है कि क्रोध क्या है। हम जानते ही हैं, सब किताबों में लिखा है, सब शिक्षाएं कहती हैं कि क्रोध आग है, जहर है, नरक है--क्रोध मत करना। वह हम मानते हैं।
यह हमने मान रखा है क्रोध को बिना जाने! क्या यह अन्यायपूर्ण नहीं है? जैसे किसी आदमी को हमने कभी न देखा हो और उसके संबंध में हम कोई धारणा बना लें और फिर यह धारणा हम मजबूत करते चले जाएं। और अगर वह आदमी कभी हमारे सामने भी आ जाए तो भी फिर देखना मुश्किल हो जाएगा। धारणा हमारे और उस आदमी के बीच में खड़ी हो जाएगी एक चश्मे की तरह। और जो हमारी धारणा का रंग होगा, वही हमें दिखाई पड़ जाएगा।
यह खेल सूक्ष्म है। और इसलिए हम क्रोध के विरोध में तो बहुत बातें कहते हैं, लेकिन क्रोध से मुक्त नहीं हो पाते। हम मुक्त हो ही नहीं सकते, हम मुक्त हो ही नहीं सकते। क्योंकि हम क्रोध को जान ही नहीं पाते। जिसे हम

जानते नहीं, उससे मुक्त कैसे हो सकते हैं? तो मैं आपसे कहूंगा, आप कहते हैं कि क्रोध को मैं जानता हूं, आप नहीं जानते, क्रोध के संबंध में जो आपने सुन रखा है, वही आप जानते हैं, वही आप पहचानते हैं। क्रोध की सीधी और नग्न अवस्था बिना किसी धारणा के, निष्पक्ष आपने नहीं जानी। उसे जानना जरूरी है।
तो पहली बात, मन की सारी वृत्तियों के संबंध में पूर्व निर्धारित विचार छोड़ दें। और मन के भीतर इस तरह जाएं, जैसे हम एक अनजान दुनिया में जाते हों; जहां हम कुछ भी नहीं जानते, जहां सब अपरिचित है, अन्नोन है। हम एक भी चीज नहीं जानते हैं--मन के भीतर क्या है, क्या नहीं है! हम सिर्फ देखने जा रहे हैं, परिचित होने जा रहे हैं। फिर क्रोध दिखेगा, ऐसे ही जैसे रास्ते के किनारे किसी वृक्ष पर फूल खिला हो या किसी वृक्ष पर कांटे लगे हों। ऐसे ही रास्ते के किनारे चित्त में प्रवेश करते से क्रोध दिखेगा, घृणा दिखेगी, लोभ दिखेगा।
और आज सीधा मुकाबला होगा। आज हम बीच में कोई धारणा नहीं लिए हुए हैं। शास्त्र क्या कहता है, उससे हमें प्रयोजन नहीं। संत क्या कहते हैं, उससे हमें प्रयोजन नहीं। क्रोध मेरे पास है, मैं खुद क्यों न देख लूं। इसमें संतों से उधार सीखने की क्या जरूरत है? लेकिन हमारा पूरा दिमाग उधार और बारोड है। हमारे पास अपना कुछ भी नहीं! अपने पास ही जो है, उसकी पहचान भी अपनी नहीं! वह भी हम किसी और से पूछने जाते हैं!
हां, रामकृष्ण एक दिन कहे। रामकृष्ण एक दिन बहुत हंसने लगे, बहुत लोग इकट्ठे थे। और कहने लगे, आज बहुत मजा हुआ। एक आदमी मुझसे मिलने आया था। उसके पड़ोस के मकान में रात आग लग गई थी। मैंने उससे पूछा, कि तेरे पड़ोस के मकान में सुना है, आग लगी? उसने कहाः नहीं! मैं तो अखबार देखा, अखबार में तो कोई खबर नहीं! पड़ोस के मकान में लगी आग, उसने सुबह अखबार में देखी। अखबार में तो कोई खबर नहीं है। नहीं लगी होगी आग! आग लगती तो अखबार में खबर होती। तो रामकृष्ण कहते हैं कि उस आदमी से सुन कर मुझे बहुत ही हंसी आई। पड़ोस के मकान की आग भी उसने खुद न देखी, वह भी अखबार से उधार देखेगा! पड़ोस का मकान फिर भी दूर है, लेकिन अपने भीतर जो है, वह भी हम, वह भी हम दूसरों से सीखने जाते हैं--कि क्रोध कैसा है, प्रेम कैसा है, घृणा कैसी है! वह भी हम पूछते हैं शास्त्रों से! वे पुराने अखबार हैं, हजारों साल पहले के! वह आदमी तो फिर भी नया अखबार देखता था। आप देखते हैं और जितना पुराना शास्त्र हो, हम कहते हैं, उतना ही श्रेष्ठ है! उतनी ही पुरानी खबर हम पढ़ने जाते हैं! और उसमें से हम जांच करेंगे, हमारे भीतर क्या है!
क्या हम सब सेकेंड हैंड आदमी हैं, सब पुराना माल है। कोई नया आदमी नहीं? क्या अपने भीतर जो है, उसे भी दूसरे से पूछने जाने की जरूरत है? लेकिन ऐसा ही हुआ है। पूरी मनुष्यता, पूरी सेकेंड हैंड इसीलिए हो गई। कोई आदमी मौलिक नहीं है। और जब भी कोई आदमी मौलिक होगा, तभी जिंदगी में क्रांति हो जाएगी; क्योंकि वह चीजों को जानेगा, वे क्या हैं।
हमने शब्द सीख रखे हैं! हम कहते है, क्रोध बुरा है! न हम क्रोध को जानते हैं, न हम बुरा क्या है, इसको जानते हैं। बस सीख रखे हैं शब्द, तोतों की तरह शब्द सीख रखे हैं और उन्हीं शब्दों पर हम जीते चले जाते हैं! अगर कोई अच्छे शब्द दे दिए जाएं क्रोध को तो हो सकता है, हम उसे बुरा कहना भी बंद कर दें! लोग कहते हैं, कुछ क्रोध ऐसे होते हैं, जो अच्छे होते हैं! फिर क्रोध में बुराई नहीं रह जाती।
रिचुअस, धार्मिक क्रोध भी होते हैं! क्रोध कैसे धार्मिक हो सकता है? जहर भी धार्मिक हो सकता है और नरक भी धार्मिक हो सकता है! लेकिन धर्मयुद्ध भी होते हैं! धार्मिक क्रोध भी होते हैं, धार्मिक हिंसा भी होती है! फिर हम शब्द नया दे देते हैं, और फिर हम लड़ जाते हैं, फिर हमें कोई फिकर नहीं रहती। उन्नीस सौ बावन में वहां हिमालय की तराई में, नीलगाय नाम के जानवर ने खेतों में बहुत नुकसान किया हुआ था। फिर पार्लियामेंट तक बात उठी कि क्या करें! तो लोगों ने कहा गाय है, उसको गोली तो मारी नहीं जा सकती। और नाम ही है उसका नीलगाय। गाय वह नहीं है। लेकिन नाम में गाय जुड़ा हुआ है तो धार्मिक उपद्रव, दंगे हो जाएंगे! तो एक समझदार सदस्य ने सलाह दी कि पहले उसका नाम नीलघोड़ा रख दिया जाए। फिर उसका नाम पार्लियामेंट ने नीलघोड़ा कर

दिया! फिर उस नीलघोड़े को गोलियां मारी गईं और हिंदुस्तान में किसी शंकराचार्य ने नहीं कहा कि हमारी गाय को गोली मारते हो! वह नीलघोड़ा हो गई! वह बेचारी वही की वही रही। वह जो थी, वही रही, उसके नाम से कोई फर्क न पड़ा। लेकिन नीलघोड़े को गोली मारने से हिंदू धर्म को क्या नुकसान होना है! नीलगाय को गोली लगती तो झंझट खड़ी हो सकती थी!
हम कुछ जानते हैं कि सिर्फ शब्द और लेबल से जीते हैं! बड़ी होशियारी की बात है। नाम बदल दें फिर सब खत्म हो जाता है!
क्रोध, बस एक नाम हमने सीख रखा है। हिंसा, एक नाम हमने सीख रखा है। लोभ,
एक नाम हमने सीख रखा है। और उस नाम के साथ हजारों साल का प्रचार है। और हमारा मस्तिष्क सिर्फ प्रचार से जी रहा है! और यह आपको पता नहीं शायद! प्रचार के द्वारा कुछ भी सत्य मालूम पड़ने लगता है। जो भी प्रचारित किया जाए, वही सत्य मालूम पड़ने लगता है! और जब सत्य मालूम पड़ने लगता है, तो जो सत्य है, उसको देखना मुश्किल हो जाता है। प्रचार से बचना जरूरी है, अगर क्रोध को देखना हो, जानना हो, पहचानना हो।
तो प्रचार से वह जो प्रचारित, जो कंडीशनिंग जो दिमाग पर संस्कार बिठाया गया है कि पाप है, बुरा है, पाप है, बुरा है बस उसको दोहराए चले जा रहे हैं! फिर जैसे ही क्रोध आता है, तो क्रोध को तो जानते नहीं हैं, वह हमें पकड़ लेता है! क्रोध हम पर सवार हो जाता है! हम दुखी होते हैं! दूसरे को दुख दे लेते हैं। जब क्रोध चला जाता है तो वह तोतों की रटी बातें फिर पीछे लौट आती हैं और वह कहने लगती हैं, क्रोध बहुत बुरा है, क्रोध नहीं करना चाहिए! क्रोध करके बहुत पाप किया! फिर हम कसम खाते हैं, पश्चात्ताप करते हैं अब नहीं करेंगे, अब नहीं करेंगे!
और हमें पता नहीं कि जिसको हम कह रहे हैं, नहीं करेंगे, उससे हमारी कोई पहचान नहीं है! जब वह आ जाएगा तो हम एकदम हार जाएंगे, क्योंकि जिसे हम पहचानते ही नहीं, उससे जीत कैसे संभव है? इसलिए रोज आदमी तय करता है, अब क्रोध नहीं करेंगे और रोज क्रोध करता है! रोज तय करता है, वही रोज करता है। फिर और जोर से तय करता है, फिर और जोर से कसम खाता है, संकल्प लेता है, भगवान के मंदिर में जाकर प्रण करता है, साधु-संन्यासियों के सामने प्रतिज्ञा और व्रत लेता है--और फिर फिर वही होता है!
नहीं, ये व्रत और प्रतिज्ञाएं और यह संकल्प दो कौड़ी के हैं। इनसे कुछ होने वाला नहीं है। असली सवाल जिसे आप बदलना चाहते हैं, उससे आप परिचित हैं?
पहली बात हैः सारी धारणाएं छोड़ दें। कौन कहता है, क्रोध बुरा है? कौन कहता है क्रोध बुरा है, कौन कहता है लोभ बुरा है। कौन कहता है, सेक्स बुरा है? हमें पता नहीं, है हमारे भीतर हम जानेंगे, खुद ही जानेंगे। हम दूसरे से पूछने क्यों चले जाएं? और भीतर प्रवेश करें निष्पक्ष मन लेकर। लेकिन ऐसा मत सोचना।
ऐसा मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हमने आपकी पद्धति से भी कोशिश की, लेकिन अभी तक छुटकारा नहीं हुआ! मैं आपसे यह पूछता हूं कि छुटकारा चाहते क्यों हैं! छुटकारा चाहने में वह मानी हुई बात बैठी हुई है कि क्रोध बुरा है। मैं आपसे कहता हूं जानिए, छुटकारा हो जाएगा। छुटकारा पाने के लिए अगर जानने गए तो निर्णय पहले से मौजूद है कि बुरा है, और उससे छूटना है; फिर नहीं छुटकारा होगा।
वे कहते हैं, आपकी बात भी हम माने लेते हैं, लेकिन छुटकारा कब होगा? आपने फिर मेरी बात समझी ही नहीं। छुटकारे की जो बात आप कहते हैं, वह दूसरों की माने हुए बैठे हैं कि बुरा है क्रोध, इसलिए छुटकारा चाहिए। फिर अगर मेरी बात सुनते तो कहते हैं, अच्छी बात है। अगर इस तरकीब से छुटकारा होता हो तो हम यह तरकीब भी करते हैं, लेकिन छुटकारा होगा कि नहीं? हम धारणा भी छोड़ने को राजी हैं, लेकिन छुटकारा होगा कि नहीं?
अब कैसी धारणा छोड़ रहे हैं आप! अगर धारणा छोड़ रहे हैं तो छुटकारे का सवाल समाप्त हो जाता है। हम जानने जाते हैं, क्या है। और जानने से जो होगा, वह होगा। जानने से छुटकारा होता है। छुटकारा पाने के लिए जान नहीं सकते हैं आप। छुटकारा पाने के लिए--जानने की प्रक्रिया में बाधा पड़ेगी, जान

नहीं सकेंगे। क्योंकि जिससे छूटना है जल्दी, जिससे मुक्त होना है, उसे जानने की धीरज, जानने की सरलता कैसे हम बरत पाएंगे उसके साथ?
अगर कोई आदमी आपके घर आया है और आप चाहते हैं कि जल्दी चला जाए, जल्दी चला जाए। फिर आपने कभी खयाल किया है, न आप उसकी बात सुन पाते हैं। सुनते हैं, ऐसा दिखता है कि आप सुन रहे हैं, लेकिन भीतर चल रहा है कि यह आदमी कब जाए। हां हूं भी करते हैं कि हां बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, आप जो कहते हैं, बिल्कुल ठीक है। लेकिन भीतर यह होता है कि यह आदमी जल्दी चला जाए। भीतर कुछ नहीं सुनाई पड़ रहा है! न वह आदमी दिखाई पड़ रहा है! बार-बार घड़ी देख रहे हैं और लग रहा है कि यह आदमी कितनी देर हो गई! कब चला जाए। और यह सारा चल रहा है और ऊपर से एक भाव चल रहा है कि हम देख रहे हैं, हम सुन रहे हैं, हम स्वागत कर रहे हैं--और भीतर? भीतर एक दीवाल खड़ी हो गई है, क्योंकि उस आदमी को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं।
तो फिर कैसे उसको जान सकिएगा? क्रोध को जानना है, सेक्स को जानना है, हिंसा को जानना है। छुटकारे का क्या सवाल है! जानेंगे अगर अच्छे हुए तो छुटकारा क्यों पाएंगे, अगर अच्छे हुए तो फिर क्यों छुटकारा पाएंगे। अभी हम जानते नहीं, इसलिए पहले से निर्णय न करें कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है, जिसने सोचा, यह अच्छा है, यह बुरा है, वह बुराई से कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि अच्छा और बुरा वह दूसरे के अनुभव के आधार पर तय कर रहा है! और दूसरे के अनुभव के आधार पर पक्षपात तय कर रहा है।
और पक्षपात स्वयं का ज्ञान पैदा नहीं होने देते हैं। वह एक चक्र में
पड़ रहा है, जिसमें पूरा जीवन नष्ट कर लेगा और कहीं भी नहीं पहुंच सकता है। नहीं, जानना है। और जानने से मुक्ति आती है। वह बिल्कुल गौण बात है। उसके लिए चिंता करने का सवाल नहीं, तो सारी धारणा छोड़ दें। क्रोध क्या है-- तो मत कहें कि बुरा है, मत कहें कि अच्छा है, मत कहें कि मैं जानता हूं। इतना ही कहें कि मैं नहीं जानता हूं। मैं जानना चाहता हूं। इतनी सरलता से कि मैं नहीं जानता हूं और जानना चाहता हूं। अगर आपका मन तैयार है तो आप क्रोध को जान लेंगे। और जानते ही क्रोध से मुक्ति हो जाती है। जानने के बाद एक क्षण भी कोई बंधन नहीं है किसी बात का।
यह इतना ही है, ऐसा ही, जैसे एक मकान के भीतर मैं बैठा हूं और मैं कहूं
कि मुझे दरवाजे से बाहर निकलना है। और तो मैं कहूं, आप आंख खोल कर गौर से देखिए, दरवाजा कहां है! आपको दिख जाएगा और फिर आप निकल जाएंगे। वह आदमी कहे कि ठीक है, हमें दरवाजा दिख भी गया, तो भी हम निकलेंगे कैसे! और वह आदमी कहे मुझे दरवाजा तो दिखाई पड़ता है, लेकिन मैं निकल नहीं पाता! निकलता हूं तो दीवाल से टकरा जाता हूं!
तो हम कहेंगे वह दरवाजा किसी की सुनी हुई खबर होगी कि यहां दरवाजा है। आपको नहीं दिखाई पड़ता, नहीं तो फिर कैसे दीवाल से टकरा जाते? वह आदमी कहता है मुझे दरवाजा तो मालूम है। लेकिन जब भी निकलता हूं तभी दीवाल से टकराता हूं। दरवाजे से निकल कभी नहीं पाता। लेकिन दरवाजा मुझे मालूम है! तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे दरवाजा मालूम नहीं होगा, अन्यथा निकल गए होते, दीवाल से क्यों टकराते? सुना होगा, कि यहां दरवाजा है। किसी से सुना होगा। वह सुनी हुई बात पकड़ ली है, इसलिए टकराहट होती है। और जिसे दरवाजा दिखाई पड़ता है, वह नहीं पूछता कि मैं कैसे निकलूं। दिखाई पड़ना और निकल जाना, एक ही साथ हो जाते हैं।
तो पहली बात है, अंतस-जीवन के तथ्यों का सीधा ज्ञान, उधार ज्ञान नहीं।
और इसलिए जब क्रोध आए तो, अभी हम क्या करते हैं? अगर मैं आप पर क्रोधित
हो जाऊं तो आप क्या करेंगे, पता है आपको? अगर मैं आपको गाली दूं और अपमानित करूं और मैं आप पर क्रोधित हो जाऊं तो आपके भीतर क्रोध जगेगा। उस क्रोध में आप क्या करेंगे, आपको पता है? आज तक आपने क्या किया है, आपको पता है? उस क्रोध में आप अपने को भूल जाएंगे और मेरे बाबत विचार करेंगे कि इस आदमी ने ऐसा क्यों कहा? यह आदमी बुरा है, इस आदमी से कैसे बदला लूं? जब आप क्रोध में भरेंगे तो आपका पूरा ध्यान मुझ पर चला जाएगा। और क्रोध आपके भीतर होगा और ध्यान मुझ पर होगा। आप क्रोध को जानने से वंचित रह जाएंगे, क्योंकि ध्यान मुझ पर है और क्रोध भीतर जल रहा है।

जब, अब दोबारा क्रोध आए तो उसकी फिकर छोड़ दें, जिसने गाली दी है--अब तो भीतर पहुंच जाएं, कमरा बंद कर लें और भीतर झांकें। और बैठ जाएं, और वहां ध्यान ले जाएं जहां क्रोध है। जिसने क्रोधित किया है, उस पर हमारा ध्यान होता है। जो क्रोधित हो गया है, उस पर हमारा ध्यान नहीं होता है! इसलिए हम क्रोध को कभी नहीं जान पाते। आग यहां भीतर जलती है और नजरें हमारी वहां लगी होती हैं उस आदमी पर! और हम विचार कर रहे होते हैं कि क्या करें, कैसे बदला लें। सारा चित्त वहां है और यहां भीतर आग लगी है! इस हालत में कैसे आप जान पाएंगे?
एक युवक खेल रहा है हाकी। पैर में चोट लग गई, खून बह रहा है। उसे पता नहीं, जब तक वह खेल रहा है! उसे पता नहीं, खून बह रहा है, पैर में चोट लग गई है, नाखून टूट गया है। दूसरों को खून बहता हुआ दिखाई पड़ रहा है। उसे पता नहीं, उसका सारा ध्यान खेल पर लगा हुआ है! वहां ध्यान नहीं है उसका! खेल बंद होगा और उसे ध्यान आएगा कि अरे! यह तो पैर में चोट लग गई! कब से खून बह रहा है, कितना खून गिर गया है, लेकिन मुझे पता ही नहीं है!
पता हमें उन्हीं चीजों का होता है, जहां हमारा ध्यान होता है। पता का अर्थ है जहां ध्यान है।
जब आपको क्रोध होता है तो आपका ध्यान कहां होता है? क्रोध पर होता है? अगर क्रोध पर होगा तो आप क्रोध को जान लेंगे। लेकिन क्रोध पर नहीं होता। जिसने क्रोध को जगाया है, उस निमित्त पर होता है। उस व्यक्ति पर होता है जिसने क्रोध को जगाया है, हमारी आंखें वहां अटकी होती हैं। हो सकता है वह आदमी यहां न हो, वह अब लंदन में बैठा हो। लेकिन क्रोध हमारा उस पर होगा। एक आदमी ने लंदन से आपको एक चिट्ठी लिख दी और गालियां लिख दीं। और आप चिट्ठी को फाड़ कर फेंक देंगे! और ध्यान लंदन के उस आदमी पर चला जाएगा! और यह जो आदमी भीतर बैठा है, जो क्रोध में जल रहा है, आग में भुन रहा है, इस पर ध्यान नहीं होगा! तो जहां ध्यान होगा, वहां पता चलेगा। जहां ध्यान नहीं है, वहां कैसे पता चलेगा?
लेकिन आप कहेंगे कि मैंने कई दफा क्रोध किया है, मुझे क्रोध का पता नहीं है? मुझे क्रोध का पूरा पता है, क्योंकि मैं जिंदगी भर क्रोध किया हूं। आपने जिंदगी भर क्रोध किया है, लेकिन हमेशा आपका ध्यान क्रोध के क्षण में वहां चला गया है, जहां क्रोध नहीं है। वहां से हट गया है, जहां क्रोध है। और इसलिए ध्यान और क्रोध का मिलन कभी नहीं हो पाया है।
जब क्रोध चला जाएगा, बह जाएगी आग, आप वापस लौट आएंगे उस लंदन के दुश्मन से, तब आप कहेंगे, अरे! मकान जल गया, जगह-जगह दीवालें गिर गईं, यह तो बहुत बुरा हुआ, यह तो पश्चात्ताप हो गया। अब मैं निर्णय करता हूं, अब कभी क्रोध नहीं करूंगा। फिर क्रोध आएगा, फिर यही दोहराएगी बात, फिर नजर वहां चली जाएगी, यहां क्रोध चूक जाएगा। नहीं, क्रोध पर करना है ध्यान, तब आप जान सकेंगे। जिस पर ध्यान होता है, उसे ही हम जान पाते हैं। लेकिन आप कहेंगे क्रोध पर कैसे ध्यान करेंगे, क्योंकि क्रोध में तो हम होश में ही नहीं रहते। ध्यान-व्यान कौन करेगा। वहां तो हम बेहोश हो जाते हैं।
निश्चित ही अब तक ऐसा ही हुआ है। और इसलिए आप क्रोध को जान नहीं पाए। आपको सिर्फ क्रोध की स्मृति है, गए हुए क्रोध की। मरे हुए क्रोध की, अतीत के क्रोध की स्मृति है। वर्तमान के क्रोध को आपने कभी नहीं जाना। अतीत के क्रोध की स्मृति है, भविष्य के क्रोध के लिए निर्णय है और वर्तमान के क्रोध से कोई परिचय नहीं। अतीत के क्रोध की स्मृति भर है, मेमोरी भर है कि हां ऐसा हुआ था और भविष्य में क्रोध नहीं करूंगा इसका संकल्प है। और वर्तमान क्रोध की कोई अनुभूति, वर्तमान क्रोध का कोई साक्षात्कार नहीं है। और वर्तमान क्रोध का साक्षात्कार हो जाए तो न अतीत की स्मृति की जरूरत है, न भविष्य की योजना की। वर्तमान में क्रोध को जो जान लेता है, उसकी हालत वैसी ही हो जाती है, जैसे आग लगे हुए मकान में आदमी वह छलांग लगा कर बाहर निकल जाता है। और जान लेता है कि यह आग मैं ही लगाता हूं अपने ही मकान में। बुद्ध ने कहा है कि जब मैंने जाना तो मैंने पाया कि अदभुत हैं लोग! जो आदमी दूसरे की भूल पर क्रोध करता है वह अदभुत है--क्यों? तो बुद्ध ने कहा अदभुत इसलिए कि भूल दूसरा करता है, दंड वह अपने को देता है। गाली मैं आपको

दूं और क्रोधित आप होंगे। दंड कौन भोग रहा है? दंड आप भोग रहे हैं, गाली मैंने दी है!
क्रोध में जलते हम हैं, राख हम होते हैं, लेकिन ध्यान वहां नहीं होता! इसलिए धीरे-धीरे पूरी जिंदगी राख हो जाती है। और हमको भ्रम यह होता है कि हम जानते हैं! हम जानते नहीं--क्रोध की सिर्फ स्मृति है और क्रोध के संबंध में शास्त्रों में पढ़े हुए वचन हैं और हमारा कोई अनुभव नहीं।
अब, जब मैं कह रहा हूं कि जानें! तो अब जब क्रोध आ जाए तो उस आदमी को धन्यवाद दें, जिसने क्रोध पैदा करवा दिया, क्योंकि उसकी कृपा, उसने आत्म-निरीक्षण का एक मौका दिया; भीतर आग को जानने का एक अवसर दिया। उसको फौरन धन्यवाद दें कि मित्र धन्यवाद, और अब मैं जाता हूं, थोड़ा इस पर ध्यान करके वापस आकर बात करूंगा। द्वार बंद कर लें और देखें कि भीतर कौन उठ गया है, क्या उठ गया है, हाथ-पैर किस तरह कस रहे हैं। हाथ-पैर कसते हों, तो कसने दें; क्योंकि हाथ-पैर कसेंगे। हो सकता है कि क्रोध में, अंधेरे में, हवा में, घूंसे चलें; चलने दें। द्वार बंद कर लें और देखें कि क्या-क्या होता है। अपनी पूरी पागल स्थिति को जानें और अपने पूरे पागलपन को पूरा प्रकट हो जाने दें अपने सामने। तब आप पहली दफा अनुभव करेंगे कि क्या है यह क्रोध। यह आपने बाजार में किया होता, उस आदमी की गर्दन दबा ली होती। पत्थर उठा लिया होता रास्ते के किनारे दौड़ कर, अनर्गल बातें बकने लगते, आंख से खून बरसने लगता। यह सब हो जाने दें। द्वार बंद कर लें और ये सब होने दें कि जो भी हो सकता है हो। और देखें भीतर से ये सब क्या हो रहा है। और जब पूरी आग, और पूरा मैडनेस, और पूरा पागलपन पकड़ेगा तब कंप जाएंगे भीतर, कि यह है क्रोध। यह मैंने कई बार किया था, दूसरे लोगों ने क्या सोचा होगा!
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, क्रोध संक्षिप्त रूप में आया हुआ पागलपन है, थोड़ी देर के लिए आया हुआ पागलपन है, क्षणिक पागलपन है। क्षण भर को आदमी उसी हालत में हो गया, जिस हालत में कुछ लोग सदा के लिए हो जाते हैं। क्रोध में जलते हुए आदमी में और पागल आदमी में मौलिक अंतर नहीं है। अंतर सिर्फ लंबाई का है। पागल आदमी स्थायी पागल है, क्रोधी आदमी अस्थायी पागल है।
आपने कभी देखा है! दूसरों ने आपको क्रोध में देखा है, इसलिए दूसरे कहते हैं कि यह बेचारा कितना पागल हो गया है, यह क्या कर रहा है? आपने कभी देखा है अपने को? तो कर लें द्वार बंद और अपनी पूरी हालत को देखें कि यह हो रहा है। और रोकें मत, पूरा प्रकट होने दें, जो हो रहा है। और उसका पूरा निरीक्षण पूरा आब्जर्वेशन, तब आप पहली दफा परिचित होंगे, यह है क्रोध। लेकिन ऐसा मत सोचना कि कोई क्या कहेगा--कहीं पत्नी न सुन ले! पत्नी बहुत दफा देख चुकी है आपके पागलपन को। और आप भी अपनी पत्नी के पागलपन से भलीभांति परिचित हैं। और बेटे भी आपको जानते हैं अच्छी तरह और आप भी बेटों को जानते हैं। किसी की कोई चिंता मत करना, बल्कि उनसे कह देना, क्रोध पर निरीक्षण करता हूं और पागल हो जाता हूं, कभी-कभी उसको जानना चाहता हूं। हो सकता है जोर से आवाजें निकलने लगें, गाली निकलने लगे। दीवालों पर घूंसे पड़ने लगें आपके, पड़ने देना। एक दफा, एक बार पूरे क्रोध की पूरी नग्न स्थिति को देख लेना, उसके बाद दोबारा वह नहीं होगा, चूंकि जब आप पूरी तरह परिचित होंगे, यह है स्थिति! आइना लगा लेना एक और उसमें देखते जाना कि क्या-क्या होता है? यह क्या हो रहा है?
और एक बार भी पूरा नग्न दर्शन भीतर के क्रोध के पूरे वर्तुल का, पूरे बवंडर का हो जाए तो आप पहली दफा अनुभव करेंगे, क्या है क्रोध। और उसके बाद कसम लेने की जरूरत नहीं होगी कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। उसके बाद कोई आएगा और कहेगा कि अपनी जायदाद आपके नाम लिखता हूं, आप फिर से पागल हो जाइए एक मिनट के लिए। और कोई कहेगा, सारी दुनिया आपको देते हैं। तो आप कहेंगे, क्षमा करना, मैंने जान लिया कि क्या है क्रोध।
जो जान लिया वह मुक्त हो जाता है। और जो मैं क्रोध के लिए कह रहा हूं, वही सारी चीजों के लिए सच है--चाहे लोभ हो, चाहे सेक्स हो, चाहे कुछ भी हो। जिंदगी में जो भी हमें पकड़े हुए है, उसको जानना है, और जानने से ही उसका रूपांतरण; जानने से ही उसका परिवर्तन है। ऐसा आपने जाना हो तो फिर दोबारा नहीं।

लेकिन ऐसा हमने जाना नहीं। बचपन से ही हमने दबाया है। छोटा सा बच्चा
भी क्रोध करने लगे तो हम कहते हैं, श... मां-बाप आंख का इशारा कर देते हैं-- अभी नहीं! अभी दूसरा मौजूद है, कोई मेहमान घर में आया हुआ है, अभी नहीं! वह बेचारा पी जाता है! बचपन से ही पी रहे हैं क्रोध को, वह हमारी नस, नाड़ी में घुस गया है, सब तरफ फैल गया है। फिर जिंदगी भर पीते ही चले जाना है, कभी प्रकट ही नहीं किया!
अगर मेरा वश चले तो मैं आपको कहूं, कि बच्चों को रोकना मत। जब बच्चे क्रोध में भर जाएं तो आईना सामने लाकर रख देना। और कहना करो जोर से और देखो, कि तुम किस हालत में हो, क्या हो गया है तुम्हें, इसे तुम देखो। हम सब भी घर के लोग बैठ कर तुम्हारा निरीक्षण करेंगे, क्योंकि तुम्हारे निरीक्षण से हो सकता है हमको भी लाभ हो जाए। रोकना मत उसे।
सारी शिक्षा गलत है। पूरे व्यक्तित्व का, मनुष्य को बनाने का विज्ञान गलत है। इसलिए गलत आदमी पैदा होता है। अगर बचपन से बच्चे को उसके क्रोध की पूरी की पूरी झलक मिलनी शुरू हो जाए, जवान होते-होते वह क्रोध के बाहर होगा। वह इसी तरह क्रोध के बाहर हो जाएगा जिस तरह आज वह गंदगी के बाहर है। वह गंदे कपड़े नहीं पहनता, लेकिन गंदी आत्मा को पहने रहता है! यह कैसे संभव हो सकता था! यह संभव इसलिए हो सका है कि हमने कभी पहचानने नहीं दिया कि आत्मा की गंदगी क्या है? आत्मा की अगलिनेस क्या है? कुरूपता क्या है, वह कभी सामने नहीं आई। उसने कभी देखी नहीं। सिर्फ दबा लिया है। और दबा कर उसने भीतर कर लिया है। ऊपर से मुस्कुराहट थोप ली है, भीतर से क्रोध जल रहा है! वह जलता रहा है, क्रोध बढ़ता रहा है, बढ़ता रहा है। वह उसके प्राणों को घेर लिया है।
आज हर आदमी एक ज्वालामुखी है, जिसमें चारों तरफ से वह किसी तरह अपने
को संभाले हुए है। बस किसी तरह संभाले हुए है। सब भीतर न मालूम कितनी चीजें जल रही हैं, जो उसे धक्का देती हैं कि यह करो, यह करो। जरा रास्ते पर आप निकलते हों, तब खयाल करना अपने मन पर, क्या-क्या करने का मन नहीं होता! घर बैठे हैं, तब भी क्या-क्या करने का मन नहीं होता! कितनी बार कितने लोगों की हत्या नहीं की है! कितनी बार जरा सी बात में किसी की गर्दन नहीं काट दी! बाहर नहीं काटी। नहीं तो यहां नहीं होते आप। भीतर काटी, मन में काटी! कितनी बार नहीं सोचा है कि, जहर पिला दो इस आदमी को। वह किया या सोचा बराबर है, उसमें कोई फर्क नहीं। कमजोर हैं, इसलिए कर नहीं सके। कायर हैं, इसलिए कर नहीं सके। कानून का डर है, इसलिए कर नहीं सके। लेकिन जहां कर सकते थे, वहां पूरे तरह से कर लिया है। कितनी दफे खुद की आत्महत्या नहीं कर ली है! मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने जिंदगी में
दो चार बार अपने आप को खत्म करने का विचार न किया हो। खोजना ही मुश्किल है ऐसा आदमी, जिसने दस पच्चीस दफा नहीं सोच लिया हो, खत्म कर दो। ऐसा बेटा खोजना मुश्किल है, जो बाप को खत्म करने की बात न सोच लिया हो। ऐसा पति खोजना मुश्किल है, जिसने पत्नी की गर्दन कई दफे न दबा दी हो। वह सब चल रहा है भीतर, उसको कोई बाहर से कहता नहीं! इसलिए तो दुनिया संभली हुई है।
अगर भीतर के सब राज सब आदमी खोल दें तो आज पता चल जाए कि दुनिया की असली हालत क्या है। अगर पांच आदमी तय कर लें कि हम अपनी सब असली-असली बातें, जैसी होंगी, वैसी ही कह देंगे। तब आपको पता चलेगा कि दुनिया की हालत क्या है। दिन में पच्चीस दफा वह आदमी एक दूसरे से आकर कहेंगे कि अभी मैंने तुम्हारी गर्दन में छुरा मारा। वह हम सब कर रहे हैं!
मैंने सुना है नियाग्रा जलप्रपात के पास एक पत्थर पर ऐसी खबर है कि उस पत्थर पर खड़े होकर जो भी भाव किया जाए, वह पूरा हो जाता है। तो कई लोग जाकर वहां भाव करते हैं। एक जोड़ा वहां खड़ा हुआ है पति और पत्नी का। दोनों आंख बंद करके प्रयोग कर रहे हैं। एकदम पत्नी को चक्कर आया और पत्थर से नीचे नियाग्रा में गिर गई!
उस पति ने कहा, हे भगवान, मालूम होता है भाव पूरे हो जाते हैं! वह बेचारा यही भाव कर रहा था खड़े होकर कि कहीं ऐसा हो जाए कि पत्नी चक्कर खाए और नियाग्रा में गिर जाए।
यह हमारे भीतर है सब, इसको हम छिपाए हुए हैं, इस ज्वालामुखी पर बैठे हुए हैं! और फिर हम पूछने जाते हैं, ध्यान कैसे हो! भगवान का दर्शन कैसे हो?

और नीचे देखते नहीं कि ज्वालामुखी पर बैठे हैं, जिसका पलवा पूरे वक्त हिल रहा है। नीचे से भापों के धक्के लग रहे हैं और पूछ रहे हैं कि ध्यान कैसे हो! शांति कैसे मिले! मोक्ष का रास्ता क्या है!
पहले इस ज्वालामुखी से निपटारा करिए, पहले इस ज्वालामुखी को जानिए, समझिए जो हम हैं। यह हमारी असलियत है। न भगवान से कोई लेना-देना है, न भगवान से कोई संबंध है, न सत्य से कोई मतलब है। हमारी यह जलती हुई आग, यह हमारा व्यक्तित्व असली सवाल है। और इसको हमने कभी देखा नहीं और ज्वालामुखी इसलिए इकट्ठा हो गया है! बिना देखे दबाए चले गए हैं, दबाए चले गए हैं, दबाए चले गए हैं। बहुत इकट्ठा हो गया है। इससे, इससे मुक्त होने के लिए एक ही, एक ही मार्ग है--और वह है ज्ञान का, वह है सत्य का। जो सत्य है, उसे जान लेना है उसकी परिपूर्णता में।
एक बहुत बड़े बुद्धिमान आदमी हैं। और बुद्धिमान आदमी बस किताबों से बुद्धिमान होते हैं। वे मेरे पास आए। बड़ी ख्याति है, हजारों लोग उनको मानते हैं। और ख्याति और हजारों लोगों के मानने से जितना अहित किसी व्यक्ति का होता है, उतना शायद ही किसी बात से होता हो। क्योंकि वे हजारों नासमझ मिल कर किसी को भी समझदार का भाव पैदा करवा देते हैं कि वह समझदार है! अब जरा बुढ़ापे में इधर वह आए हैं, तो थोड़ा डर पैदा हुआ है क्योंकि सब समझदारी किताब की है, बातचीत की है! तो वह मुझसे कहने लगे कि मैं क्या करूं, कैसे शांत होऊं, कैसे ध्यान करूं?
तो मैंने उनसे कहाः पहले तो एक काम कर लें। एक महीने के लिए एकांत में चले जाएं और रेचन कर लें, रिलीज हो जाने दें। एक महीने में चिल्लाने का मन हो तो चिल्लाएं, नाचने का मन हो तो नाचें, गाली देने का मन हो तो गाली दें। पत्थर फेंकने का मन हो तो पत्थर फेंकें। एक महीने अपने को बिल्कुल छोड़ दें। जो होता हो, होने दें। फिर एक महीने बाद आएं।
उन्होंने कहाः एक महीने बाद फिर मैं आऊंगा ही नहीं। कि क्यों? तो उन्होंने कहाः मैं तो पागल हो चुका होऊंगा, क्योंकि आप जो कह रहे हैं, वह सब मेरे भीतर है। और अगर मैंने जारी किया तो रोकूंगा कैसे? फिर रुकना मुश्किल है। और मैं यह नहीं कर सकता हूं। इससे मैं डरता हूं मुझे तो शांत होने की तरकीब बताएं!
शांत होने की कोई तरकीब नहीं होती। सिर्फ अशांत होने की तरकीबें होती हैं। और अशांत होने की तरकीबें समझ में आ जाएं तो आदमी शांत हो जाता है। शांत होने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता। अशांत होने की तरकीबों के हम बड़े अभ्यासी हैं और उनका सबका भार इकट्ठा हो गया है। और ज्ञानी भी हैं साथ में, क्योंकि हमको पता है क्रोध बुरा है, काम बुरा है! फलां बुरा है, सब हमको पता है! सब अच्छी बातें पता हैं। और अच्छी बातें और उनका पता होना, नरक का रास्ता बनाती हैं!
नहीं, सच में हमें पता नहीं है। तो यह मैंने कहा--इसे प्रयोग करके देखें। अगर क्रोध हो तो क्रोध की दशा में, लोभ हो तो लोभ की दशा में, काम हो तो काम की दशा में पूरा प्रयोग करके देखें और, और पूरा मेडिटेट करके देखें, पूरा ध्यान करके देखें। सारी स्थिति को निकाल लें, उघाड़ लें, सारे नंगेपन को, जाहिर कर लें और देखें। और एक बार जिस दिन आप पोर-पोर अपने शरीर के और अपने मन के और अपनी आत्मा के रोएं-रोएं तक जो छिपा है, उसकी पूरी नग्नता में देख लेंगे, उस दिन के बाद दुबारा नहीं है वह बात। वह दुबारा नहीं पाई जाएगी।
जिसने जान लिया है, वह मुक्त हो गया है। और नहीं मुक्त हैं तो जानना कि नहीं जाना है।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि सुबह मैंने कहा, कि "सीता के पैर के गहने लक्ष्मण को दिखाई पड़े और कोई गहने दिखाई नहीं पड़े, तो विनोबा ने जो व्याख्या की है कि लक्ष्मण नैष्ठिक ब्रह्मचारी है, ब्रह्मचर्य की साधना करता है, इसलिए सीता के चेहरे की तरफ नहीं देखता।"
तो मैंने कहा कि यह व्याख्या गलत है और यह लक्ष्मण का सम्मान नहीं है, अपमान है। क्योंकि इससे पता चलता है कि लक्ष्मण ब्रह्मचारी बिल्कुल नहीं है, अन्यथा सीता के चेहरे की तरफ देखने से डरता नहीं।

तो उन मित्र ने पूछा है कि "अगर विनोबा की व्याख्या गलत है तो आपकी क्या व्याख्या है? लक्ष्मण को पैर के गहने ही क्यों दिखाई पड़े?"
दो-तीन कारण हैं। एक तो कारण यह है कि लक्ष्मण रोज सुबह सीता के पैर पड़ता था। सीधी-सीधी बात। उससे ज्यादा कुछ उलझाव नहीं है। रोज-रोज पैर पड़ता था सीता के, वे पैर के गहने उसे रोज-रोज दिखाई पड़े होंगे। वह उनको पहचानता होगा। सीता के शरीर के दूसरे गहनों पर उसकी कभी नजर नहीं गई। इसका कारण यह नहीं है कि वह ब्रह्मचारी था। इसका कुल कारण इतना है कि अगर स्त्री सुंदर हो तो उसके गहनों पर नजर जाती ही नहीं। सिर्फ स्त्री कुरूप हो तो उसके गहनों पर नजर जाती है। और कुरूप स्त्री को ही गहना पहनने का शौक भी होता है। सुंदर स्त्री को होता भी नहीं। वह सौंदर्य की कमी पूर्ति होती है। सीता जैसी सुंदर स्त्री दुनिया में मुश्किल से कभी होती हैं। उस जमाने के दो सबसे अदभुत आदमी राम और रावण उसको प्रेम करते थे। उससे ज्यादा महिमामंडित, उससे ज्यादा सुंदर स्त्री खोजनी बहुत मुश्किल है। और सीता का चेहरा दिखे और किसी को उसके गले का हार दिखे तो वह सुनार होगा, लक्ष्मण नहीं। सीता जैसी सुंदर और अदभुत स्त्री को देख कर गहने दिखाई पड़ सकते हैं? वह दिखाई नहीं पड़े होंगे। उसका कारण यह नहीं है कि कोई ब्रह्मचारी है। उसका कारण यह नहीं कि ब्रह्मचारी नहीं है। लक्ष्मण ब्रह्मचारी था। लेकिन ब्रह्मचर्य इतना भयभीत, वीक नहीं होता; इतना कमजोर नहीं होता कि चेहरे की तरफ देखने से डर जाए। और ऐसा ब्रह्मचर्य बिल्कुल झूठा होता है। सीता के चेहरे को बहुत देखा होगा उसने, लेकिन गहने दिखाई पड़ने--यह ऐसे ही है, जैसे कि सड़क पर आप निकलते हैं तो आपके जूते को सिवाय चमार के और कोई नहीं देखता। और आप सोच रहे हों कि दूसरे भी आपके जूता देखकर बहुत प्रभावित हो रहे होंगे तो आप गलती में हैं। सिवाय चमारों के कोई प्रभावित नहीं होगा।
वह जूता दिखता चमार को है। सच तो यह है कि चमार शक्ल-सूरत देखते ही नहीं, सिर्फ जूते ही देखते रहते हैं। और जूते ही देखते हैं दिन-रात सड़कों पर और जूतों से आदमियों को भी पहचान लेते हैं! अपने-अपने मापदंड है। चमार जूता देख कर पहचान लेता है कि आदमी मिनिस्टर है, कि हार गया कि जीत गया! वह जूता सब बता देता है! जूते की हालत सब बता देती है कि आदमी के खीसे में कुछ है कि नहीं है। जूता बता देता है कि आदमी सड़क पर चलता है कि हवाई जहाज में उड़ता है। जूता बता देता है, कि किसका जूता है, वह आदमी कैसा होगा! वह चमार जूतों को देख लेता है और आदमी को पहचान लेता है! लेकिन चमारों के सिवाय जूतों को कोई नहीं देखता। तो ऐसा मत समझना कि चमार बड़े ब्रह्मचारी होते हैं इसलिए सिर्फ जूता ही देखते हैं, चेहरा नहीं देखते। लक्ष्मण को वह पैर का गहना, सिर्फ इसलिए याद रह गया कि रोज-रोज सिर रखा होगा उन पैरों पर। रोज-रोज निरंतर वे गहने उसकी नजर में आ गए होंगे, वे खयाल में थे। फिर सीता जैसी सुंदर स्त्री के गहने किसी को याद नहीं रह सकते; लक्ष्मण को ही नहीं, किसी को भी नहीं रह सकते। इसी वजह से राम को भी याद नहीं थे। राम तो ब्रह्मचारी नहीं थे। उनको क्यों याद नहीं थे? उन्होंने तो चेहरा देखा होगा सीता का, लेकिन उनको भी याद नहीं थे।
सच तो यह है कि जहां चेहरे का सौंदर्य होता है, वहां कौन गहने के सौंदर्य को देखने जाता है। दुनिया जितनी सुंदर होती चली जाएगी, उतने गहने विसर्जित होते चले जाएंगे। गहने कुरूपता का लक्षण हैं। आदमी अपने को सजाता तब है, जब जानता है, अनुभव करता है कि कहीं कुछ कमी रह गई है; नहीं तो नहीं सजाता है, फिर सीधा ही खड़ा हो जाता है।
महावीर जैसे लोग बहुत सुंदर लोग थे, इसलिए नंगे खड़े हो गए। फिर कपड़े- वपड़े पहनने की भी जरूरत न रही। यह मत समझना कि त्यागी, तपस्वी हैं। महावीर जैसी सुंदर काया दुनिया में मुश्किल से होती है। तो उतनी सुंदर काया पर कपड़े लगाना नासमझी है। उतनी सुंदर काया को कपड़े से ढांकना गलती है।
कपड़े से उस काया को ढांकना पड़ता है हिसाब से कि काया की सारी कुरूपता कपड़ों में ढंक जाए। और काया के सिर्फ वे हिस्से दिखाई पड़ते रहें, जो कुरूप नहीं हैं। और तब काया के सौंदर्य का एक भ्रम पैदा होता है।
महावीर अदभुत सुंदर आदमी रहे होंगे। वे कपड़े खोल कर नग्न खड़े हो गए होंगे। उस नग्नता में भी वे अप्रतिम रहे होंगे। और वे इतने सुंदर थे कि

उनकी नग्नता किसी को भी दिखाई नहीं पड़ी होगी। उस सौंदर्य के सामने कौन नग्नता को देखेगा।
तो मैं नहीं मानता हूं कि इससे ब्रह्मचर्य वगैरह का कोई भी संबंध है। लेकिन विनोबा जी और उस तरह के लोगों को इसमें ब्रह्मचर्य दिखाई पड़ सकता है, क्योंकि ये सारे लोग ऐसा सोचते हैं कि आंखें बंद कर लेने का नाम ब्रह्मचर्य है! भाग जाने का नाम ब्रह्मचर्य है! स्त्री और पुरुष के बीच फासला बनाने का नाम ब्रह्मचर्य है! यह ब्रह्मचर्य नहीं है। ब्रह्मचर्य बहुत सतेज इतना निर्वीर्य नहीं होता।
ब्रह्मचर्य बहुत सतेज होता है, शक्तिशाली होता है, ओजस्वी होता है। जहां ब्रह्मचर्य है, वहां चोरी नहीं होती, भागना नहीं होता।
जो ब्रह्मचारी स्त्री से भागता हो, वह बहुत कमजोर है, ब्रह्मचारी बिल्कुल नहीं है। कामुकता कमजोर होती है, ब्रह्मचर्य तो बहुत वीर्यवान होता है। वह भागेगा नहीं, डरेगा नहीं। डरने का सवाल नहीं है वहां कोई! तो मैं वैसा नहीं मानता। और व्याख्या करने जैसी कोई खास बात नहीं है। मुझे इतना ही लगता है जो मैंने कहा, इससे भिन्न, इससे ज्यादा, कुछ मामला नहीं है।
एक मित्र ने पूछा है कि आप जिस साधना की बात करते हैं, उससे स्वयं की ऊंचाई तो पाई जा सकती है, लेकिन इससे दूसरों का कल्याण कैसे होगा?
हमें यह पता ही नहीं है कि स्वयं की ऊंचाई से बड़ा और दूसरे का कोई कल्याण नहीं है। और जो आदमी स्वयं ऊंचा नहीं है, वह दूसरे का कल्याण कैसे कर सकता है? हां, कल्याण के नाम पर अकल्याण जरूर कर सकता है। और अक्सर समाज-सेवक, समीज-सुधारक, तथाकथित क्रांतिकारी वे सब के सब अकल्याण करते हैं, कल्याण नहीं होता। क्योंकि खुद की कोई ऊंचाई नहीं है तो दूसरे की ऊंचाई कैसे आप ला सकते हैं?
सच तो यह है कि खुद की ऊंचाई विकसित हो तो उस ऊंचाई के साथ आसपास की सारी हवाएं ऊंची उठने लगती हैं। खुद की ऊंचाई विकसित हो तो उस ऊंचाई की किरणें चारों तरफ फैलने लगती हैं और दूसरों को ऊंचा उठाने लगती हैं।
खुद की ऊंचाई विकसित हो तो आप कुछ और न करें, सिर्फ खुद की ऊंचाई विकसित करते चले जाएं तो भी आप दुनिया का इतना मंगल करते हैं जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। इसलिए यह मत सोचें कि जिस साधना की बात मैं कर रहा हूं उससे खुद की ऊंचाई भर बढ़ जाएगी तो दूसरों का, और कल्याण, दूसरों का क्या कल्याण करना है आपको? एक तो दूसरे के कल्याण करने की बात में ही बहुत ही गहरा अहंकार छिपा हुआ है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। दूसरे का क्या कल्याण करना है आपको। दूसरे का कल्याण आप कर सकते हैं? अपना ही कल्याण कितना मुश्किल है। लेकिन अपने कल्याण से बचने के लिए कई लोग दूसरे के कल्याण में लग जाते हैं! क्योंकि वह झंझट का काम मालूम पड़ता है अपना कल्याण! वह जरा कठिन कठोर रास्ता मालूम पड़ता है। दूसरे का कल्याण बिल्कुल सरल मालूम पड़ता है।
और दूसरे के कल्याण में सबसे बड़ी फायदे की बात यह है कि अगर परिणाम न निकले तो दूसरा जिम्मेवार होगा! हम तो कल्याण करते ही रहे। हम तो तब तक पद्मश्री और भारतरत्न हो ही गए। वह दूसरे का नहीं हुआ कल्याण तो जिम्मेवार है वह। और अपना कल्याण करो तो बड़ी मुश्किल है। अगर सफल न हों। एक तो पद्मश्री वगैरह मिलते नहीं खुद के कल्याण करने वालों को। और दूसरी कठिनाई यह है कि असफल हो जाओ तो असफलता अपने ही ऊपर आती है। दूसरे का कल्याण बहुत सुविधापूर्ण है। और ध्यान रहे, दूसरे के कल्याण में चित्त की हिंसा को बड़ा आनंद मिलता है। असल में दूसरे को बदलने, दूसरे को बनाने में चित्त की हिंसा को बड़ा रस आता है!
चित्त की हिंसा के बड़े अदभुत रूप हैं। जब बाप बेटे से कहता है कि मैं जैसा कहता हूं, वैसा ही करो, क्योंकि यही ठीक है, इसी में तुम्हारा कल्याण है। तो वह कभी सोचता भी नहीं है कि वह जो कह रहा है, न तो उसे कल्याण की फिकर है, न उसे इस बात की फिकर है कि क्या ठीक है। उसे फिकर इस बात की है कि जो मैं कहता हूं, वह माना जाता है कि नहीं माना जाता है। बहुत बुनियाद में उसका रस इस बात का है कि मेरा लड़का मेरी मानता है कि नहीं मानता है! उसे मनवाने के वह सब उपाय करेगा, वह सब तरह की व्यवस्था करेगा कि वह मान जाए,

क्योंकि दूसरे व्यक्ति को अपने ढांचे में ढालने में जो मजा आता है, वह मजा हिंसा का मजा है, वह दूसरे व्यक्ति को मिटाने का मजा है।
गुरुओं को जो मजा आता है शिष्यों को मिटाने में, उसमें और कोई अर्थ नहीं है। उसमें सिर्फ एक अर्थ है कि एक दूसरे आदमी को हमने मिट्टी का लोंदा सिद्ध कर दिया। हम उसको बनाने में लगे हैं। हम जैसा बनाएंगे, वैसा वह बनेगा। इसलिए गुरु एक से कपड़े पहना देते हैं। कतार खड़ी कर देते हैं नकली आदमियों की, एक से ढोंग सिखा देते हैं और यह व्यवस्था करते हैं कि इतने आदमी हमने बना दिए!
कौन बनाने वाला है, कौन किसको बना सकता है? जो बनने को राजी हो जाते हैं, वे कमजोर, डरे हुए लोग हैं और जो बनाने को राजी हो जाते हैं, वे एग्रेसिव, आक्रामक और खतरनाक लोग हैं। ये खतरनाक लोग कहते हैं, हम बनाएंगे! और डरे हुए लोग राजी हो जाते हैं कि ठीक है भई, हम तो अपने को बना नहीं सकते। यह आदमी कहता है, चलो तुम हमें बना दो! हम तुम्हारे पैर पकड़े लेते हैं!
दुनिया को गुरुओं ने और शिष्यों ने जितना नुकसान पहुंचाया है, उतना किसी और ने नहीं पहुंचाया। क्योंकि जो आदमी किसी दूसरे के हाथ से बनने को राजी होता है, उस आदमी ने अपनी आत्मा खो दी। क्योंकि उस आदमी ने यह कह दिया कि मैं व्यक्ति होने का अधिकार खोता हूं! अब मैं दूसरे के हाथ में कठपुतली बनने को तैयार हूं! उस आदमी को परमात्मा ने मौका दिया था कि तू "तू" होना और वह किसी गुरु के चरण पकड़ कर कुछ "और" होने में लग गया है। अब वह खुद होने की कोशिश उसने बंद कर दी!
धार्मिक आदमी वह है, जो स्वयं होने की कोशिश में लगा है। वे सारे लोग अधार्मिक हैं, जो किसी और जैसे होने की कोशिश में लगे हैं। अधार्मिक आदमी गुरु बनाएगा, अधार्मिक आदमी शिष्य बनेगा। धार्मिक आदमी न गुरु बनता है और न शिष्य बनता है। क्योंकि धार्मिक आदमी कहता है परमात्मा ने एक मौका मुझे खुद होने का दिया है, वह मैं होना चाहता हूं। आप कृपा करें गुरुजन, आप जरा दूर रहें। मुझे, मैं वही होना चाहता हूं, जो भगवान ने मुझे मौका दिया है। कोई फिकर नहीं छोटा सा फूल। आप कहते हैं कमल हो जाएंगे। कृपा है आपकी,
जो कमल हो सकते हैं वह हो जाएं। मैं घास का फूल हूं। मैं घास का फूल ही होना चाहता हूं। लेकिन लोभ पकड़ लेता है कि चलो हम भी कमल का फूल हो जाएं। और लोभ में आदमी वह भी खो देता है जो हो सकता था। शिष्य लोभ में पीछे चलते हैं, गुरु अहंकार में आगे चलते हैं और इसके अतिरिक्त उनके बीच कोई संबंध नहीं होता है।
शिष्य लोभ में होते हैं, ग्रीड में होते हैं कि गुरु हमें ऐसा बना देगा। गुरु दावा देता है कि हम ऐसा बना देंगे। और गुरु को मजा होता है बनाने का, कल्याण करने का!
भूलकर किसी का कल्याण मत करना, क्योंकि कल्याण नहीं होता है, सिर्फ टार्चर होता है। जिस आदमी के कल्याण के पीछे आप पड़ गए, उसकी मुसीबत हो गई। और बड़ी कठिनाई यह है कि अब वह कुछ कह भी नहीं सकता, क्योंकि आप उसी के हित में कार्य कर रहे हैं।
तो किसी को अगर पूरी तरह सताना हो तो बंदूक से वह सताने का मजा नहीं आता, क्योंकि बंदूक से आदमी मर ही जाता है, सताने का पूरा मजा नहीं आता। पूरा मजा इसमें आता है कि उस आदमी को बनाओ, बदलो! जिंदा भी रखो और जिंदा भी मत रहने दो! मरा हुआ कर दो और मरने भी मत दो, बस उसको बदलते रहो!
कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता है--न मां बेटे का कर सकती है और न बाप बेटे का कर सकता है। कल्याण प्रत्येक व्यक्ति अपना कर ले, पर्याप्त है। और जब कोई व्यक्ति अपना कल्याण करता है, अपने जीवन को ऊंचाइयों पर ले जाता है तो उसके चारों तरफ के जीवन अचानक, अनायास उन ऊंचाइयों की प्रेरणा से भर जाते हैं। यह प्रेरणा दी गई नहीं होती है, यह प्रेरणा अनायास वितरित होती है। यह ऐसे ही है, जैसे कि रास्ते के किनारे एक फूल खिल जाता है तो फिर वह चिल्लाता नहीं है कि आओ और मुझे देखो। राह से जो भी निकलता है, सुगंध छू जाती हैं। फूल पर आंखें टिक जाती हैं, क्षण भर को, क्षण भर को आदमी के हृदय में भी फूल खिल जाता है। वह जो राह के किनारे रुक जाता है, उसके मन में भी फूल खिल जाता है।

एक बड़ा वृक्ष है, उसकी घनी छाया, राह चलता आदमी उसके नीचे रुक जाता है। छाया बुलाती नहीं है कि आ जाओ, छाया कहती नहीं कि तुम्हारा कल्याण करूंगी। छाया बस है। कोई राह निकलता है वह रुक जाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति के भीतर की आत्मा का वृक्ष बड़ा होता है, एक बहुत अनजान छाया उसके चारों तरफ पड़ने लगती है, राहगीर उसके नीचे रुक जाते हैं, चले जाते हैं। न राहगीर कभी धन्यवाद देता है छाया को, न वृक्ष को कि धन्यवाद! और न वृक्ष कहता है कि देखो, जा रहे हो, दक्षिणा देते जाओ। बात खत्म हो गई है। वृक्ष को आनंद मिल गया कि कोई उसके नीचे रुका। यह भी बड़ा सौभाग्य।
जैसे व्यक्ति के भीतर का वृक्ष बड़ा होता है, वह आत्मा का वृक्ष, उसमें शाखाएं और फूल आने शुरू होते हैं, उसके नीचे बहुत लोग विश्राम करते हैं। लेकिन वह कोई गुरु नहीं बन जाता, उसे धन्यवाद की अपेक्षा भी नहीं होती कि कोई धन्यवाद भी दे जाएगा। वह तो अनुगृहीत होता है।
ध्यान रहे, वह आदमी अनुगृहीत होता है कि आपने कृपा की और दो क्षण उसके पास विश्राम किया। कौन कब, किसके पास विश्राम करता है? आपने मौका दिया तो उस वृक्ष को भी पता चला कि उसकी छाया काम में आ गई, तो धन्यवाद।
जब किसी व्यक्ति की आत्मा ऊंची उठती है तो धन्यवाद उनसे नहीं मांगता है, वे जो उसके नीचे ठहर गए होते हैं कभी। बल्कि धन्यवाद उन्हें देता है, क्योंकि उन्होंने मौका दिया। उसको आनंद दिया, उसके पास ठहरने का अनुग्रह किया।
खुद की ऊंचाई जितनी बढ़ती है, उस ऊंचाई के आकस्मिक परिणाम आने शुरू हो जाते हैं, लेकिन वे सुनियोजित नहीं होते, अनायास होते रहते हैं!
जाएं किसी, कभी भी कोई राह चलते भी कोई आदमी मिल जाए, जिस के भीतर प्रेम की वीणा बजती हो, वह कुछ भी न बोले तो भी आपके भीतर कुछ हर्क-फर्क कुछ हेर-फेर होना शुरू हो जाएगा। एक, अमरीका में एक अदभुत आदमी था। वह इस पर कुछ प्रयोग करता था कि बिना कहे भी भाव संवेदित होते हैं। एक अभिनेता उससे मिलने आया था और उस अभिनेता से उसने कहा कि बिना कहे भी भाव का संवेदन होता है। उस अभिनेता ने कहा, बिना कहे बहुत मुश्किल है। बिना कहे कैसे--कुछ कहना पड़ेगा! अगर क्रोध प्रकट करना है तो मुट्ठी बांधनी पड़ेगी, आंख खींचनी पड़ेगी, गाली देनी पड़ेगी। कुछ शब्द बोलने पड़ेंगे, कुछ करना पड़ेगा?
लेकिन उसने कहा कि नहीं, आंख भी बंद रखो, हाथ भी मत बांधो, बोलो भी मत, लेकिन सिर्फ भीतर क्रोध से भर जाओ तो भी पड़ोस तक क्रोध की किरणें पहुंचती हैं। उस अभिनेता ने कहाः मुझे विश्वास नहीं पड़ता। तभी फोन की घंटी बजी और वह अपने आफिस में चला गया। अभिनेता कमरे में अकेला रह गया। आधे घंटे तक फोन पर कुछ जरूरी वह बात करता रहा। आधा घंटे बाद वापस लौटा तो एकदम खड़ा हो गया चौंक कर!
उसने उस अभिनेता से कहा मालूम होता है, आप मुझ पर नाराज हो गए हैं-- क्या बात है? मैंने तो आपसे कुछ कहा नहीं, उस अभिनेता ने कहा नहीं, मैं नाराज नहीं हुआ, लेकिन आधा घंटा मैं प्रयोग कर रहा था, आप पर क्रोधित होने का। और आप जो कहते हैं, मालूम होता है ठीक है। पूरा कमरा जैसे क्रोध से भर गया। क्रोध की तरंगें--जैसे पानी में हम पत्थर फेंक दें, तरंगे उठती हैं और दूर तक फैलती चली जाती हैं! यहां तो हम पत्थर पटकेंगे और मीलों दूर तक वे तरंगें फैलती चली जाएंगी!
ऐसा ही मनोआकाश है। ऐसा ही हमारे मन का भी एक जगत है। और वह मन का जगत संयुक्त है, वह कलेक्टिव है, वह समष्टिगत है। वह फैला हुआ है। और जब एक आदमी उसमें जोर से क्रोध का पत्थर डालता है तो उसकी किरणें, उसकी हवाएं, चारों तरफ फैलती चली जाती हैं। और फिर जितने लोग भी क्रोध के प्रति रिसेप्टिव होते हैं, संवेदनशील होते हैं, उनके चित्त में भी क्रोध की किरणें पहुंच जाती हैं। उनके भीतर का क्रोध भी हिलने लगता है, कंपने लगता है।
अगर कभी कोई व्यक्ति बहुत प्रेम से भरा होता है तो उसके चारों तरफ प्रेम की घटनाएं घटने लगती हैं। अगर कभी कोई व्यक्ति परिपूर्ण शांत होता है तो उसके आसपास शांति की किरणें फैलने लगती हैं।
लेकिन यह आकस्मिक हो जाता है। अभी भी हो रहा है, हर वक्त हो रहा है। जब
आप अशांत हैं, तब भी हो रहा है। कभी आप प्रयोग करके देखना इस बात को कि अगर

आप बहुत अशांत हैं तो एक चौबीस घंटे प्रयोग करके देखना, कि चौबीस घंटे अशांत से अशांत होते चला जाना। लेकिन किसी से कहना मत, कि मैं अशांत हूं। कोई भाव प्रकट मत करना। और आप चौबीस घंटे में अनुभव करेंगे कि जो आदमी भी आपके पास आएगा, वह अशांत हो जाएगा।
आप इससे उलटा करके देखना। कभी चौबीस घंटे इस तरह शांत हो जाना कि जैसे कोई जीवन में अशांति नहीं है, सब तनाव छोड़ दिया है। और चौबीस घंटे ऐसे जीना कि जैसे जिंदगी में कुछ चिंता नहीं, दुख नहीं, पीड़ा नहीं; कोई अशांति नहीं। पूरे वक्त शांति से भरे रहना; कुछ कहना मत, एक शांति के अंबार बन जाना। और जो भी आदमी आएगा, और आप चौबीस घंटे में हैरान होंगे जान कर कि जो भी आया है, उसने शांति प्रकट की है!
लेकिन हमें इसका कोई साफ-साफ बोध नहीं है, क्योंकि हमें भीतर के जगत
के किन्हीं भी, किन्हीं भी आयामों का कोई अनुभव नहीं, कोई खबर नहीं। हमें पता ही नहीं है कि हम सब जो सोचते हैं, जो करते हैं, जो मन में भाव लेते हैं, उस सबके परिणाम चारों तरफ होते चले जाते हैं।
जब कोई आदमी भीतर ऊंचाई पर उठता है तो वह ऐसी लहरें पैदा करने लगता है,
जो दूसरों को ऊंचाई पर ले जाने का कारण हो जाती हैं।
तो आप अगर ऊंचे उठते हैं साधना से तो इस चिंता में मत पड़िए कि इससे दूसरों के कल्याण का क्या होगा। इसके अतिरिक्त कल्याण के लिए हम कोई हवा कभी पैदा कर ही नहीं सकते हैं।
दूसरे का कल्याण नहीं करना है, अपना मंगल साध लेना है।
उस सधे हुए मंगल के साथ दूसरों के मंगल के सधने का अवसर उपस्थित होता है।
वह भी आप नहीं कर देते, वह उपस्थित हो जाता है। वह आपके वश की बात नही है, वह उपस्थित हो जाता है। अगर दुनिया में सारे लोग दूसरे के कल्याण करने में लग जाएं जैसा कि आजकल लगे हुए हैं--सारी दुनिया में वेलफेयर का काम चल रहा है। हर आदमी एक-दूसरे का कल्याण कर रहा है! एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का कल्याण कर रहा है। एक जाति, दूसरी जाति का कल्याण कर रही है! सभ्य लोग आदिवासियों का कल्याण कर रहे हैं! ऊपर के वर्ण के लोग नीचे के वर्णों का कल्याण कर रहे हैं! पुरुष स्त्रियों का कल्याण कर रहे हैं! सब कल्याण में लगे हुए हैं! और देखें दुनिया की हालत कैसी है! अकल्याण बढ़ता जा रहा है और कल्याण का कोई भी पता नहीं! नहीं, इस तरह नहीं होगा कुछ। विपरीत है मार्ग बिल्कुल।
प्रत्येक को लग जाना है अपने कल्याण में और उसी कल्याण में लगने के परिणाम में उसके व्यक्तित्व में, उसके मन में, उसकी चेतना में, उसके शरीर में, उसके कामों में, वह सब प्रकट होना शुरू हो जाएगा, जिससे कल्याण का अवसर उपस्थित होता है। वह अनायास हो जाता है, उसका पता भी नहीं चलता।
कोई आदमी किसी का कल्याण करने जाए तो समझना कि वह आदमी खतरनाक है। वह किसी न किसी आदमी को सताने का उपाय खोज रहा है। कल्याण उनसे होता है, जिन्हें पता भी नहीं है।
एक फकीर था, उस फकीर के चित्त में अदभुत घटनाएं घटीं। वह उस लोक में पहुंच गया, जहां कभी कोई सौभाग्यशाली पहुंचता है। वह वहां पहुंच गया है, जहां अमृत, जहां आलोक है। फिर अचानक जब वह वहां पहुंच गया तो कहानी कहती है कि देवताओं ने उससे कहा कि हम बहुत खुश हुए, हम तुझे कुछ वरदान देना चाहते हैं।
उस फकीर ने कहाः लेकिन अब मैं क्या मांगूं, क्योंकि अब तो मेरी मांग
ही मिट गई। वह मिल गया, जिसको मिलने पर मांग नहीं रह जाती, धन्यवाद।
लेकिन कुछ मांगता नहीं, आपकी कृपा कि आपने मांगने के लिए कहा। लेकिन देवता पीछे पड़ गए। देवता उन्हीं के पीछे पड़ जाते हैं, जो कहते हैं, हमें नहीं चाहिए! जो कहते हैं, हमें चाहिए, उनके पीछे भूत-प्रेत भी नहीं पड़ते! वह कहने लगा, मुझे चाहिए नहीं, क्योंकि जो मुझे चाहिए, वह मुझे मिल गया। लेकिन देवताओं ने कहा कि नहीं, यह तो हमारा अपमान हो जाएगा। हमसे कोई मांगने आता है, तब हम नहीं देते। हम खुद देने आए हैं।
उस फकीर ने कहाः अगर अपमान हो जाएगा तो फिर जो भी तुम देना चाहो दे दो।
मैं उसे अंगीकार कर लूंगा।

तो उन देवताओं ने कहा कि तुम दूसरों का कल्याण करो, ऐसी सामर्थ्य दे दें?
उस आदमी ने कहाः क्षमा करना, दूसरों के कल्याण करने वाले लोगों को मैं भली-भांति जानता हूं। उन्होंने दुनिया में बहुत अकल्याण कर दिया है, यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा।
देवताओं ने कहाः कि नहीं, यह काम तुमसे हो सकेगा, क्योंकि तुम उस जगह आ गए, जहां दूसरों का कल्याण हो सकता है।
उस आदमी ने कहाः वह तो ठीक है, लेकिन मुझे कोई दूसरा ही नहीं दिखाई पड़ता तो मैं किसका कल्याण खोजने जाऊंगा। नहीं, यह काम बहुत दुष्कर है, कठिन है। यह मुझसे मत करवाएं।
तो देवताओं ने कहा हम ऐसा कर देते हैं कि तुम जहां से निकलो, तुम्हारी छाया जिन पर पड़ जाए, उनका कल्याण हो जाए।
उसने कहाः यह तो ठीक है, लेकिन इतना ही ध्यान रहे कि छाया जब मेरे पीछे पड़ती हो तो मुझे पता न चले कि किसका कल्याण हो गया। मुझे पता चल जाए तो मुझे भी नुकसान हो सकता है, क्योंकि यह अहंकार आ जाए कि देखो, मैंने यह कर दिया। तो छाया करे, लेकिन मुझे कोई इसमें पता भी न चले! यह होता रहे।
फिर वह फकीर जहां से निकलता कहानी कहती है कि फूल सूखे होते, उसकी छाया पड़ जाती तो वे खिल जाते। रास्ते पर मुर्झाए हुए पौधे होते, वे हरे जाते। बीमार पर छाया पड़ जाती, वह स्वस्थ हो जाता। अंधे को आंख हो जाती, बहरे को कान मिल जाते, कहानी कहती है, जहां उसकी छाया पड़ जाती! लेकिन उस फकीर को कभी पता नहीं चला, क्योंकि उस फकीर से कभी कुछ नहीं हुआ। वह तो छाया पीछे करती रही। वह पीछे छाया से होता रहा।
ये कहानी का मुझे पता नहीं। लेकिन इस जगत में जितने लोगों से भी कल्याण हुआ है, वह सदा उनकी छाया से होता है; उनसे नहीं होता है। और जितने लोग कहते हैं, हम कल्याण करते हैं, ये सारे लोग अकल्याण करते हैं। इनसे कोई कल्याण नहीं होता है।
इसलिए उठें ऊंचे, जाएं उन गहराइयों में, उन ऊंचाइयों पर, जहां प्रभु
का प्रकाश है। उन शिखरों की यात्रा करें, जहां वह सूरज है, जो हम घाटियों में, अंधेरों में रहने वाले लोगों को दिखाई नहीं पड़ता। और जिस दिन वह रोशनी भीतर भर जाएगी, आप भी एक छोटे दीए हो जाएंगे।
और उस दीए से भी किरणें फैलने लगेंगी, और बहुत से बुझे दीयों को प्रेरणा देंगी, जागने की। बहुत से लोगों के जीवन के रास्ते पर फूल बिछा देंगी, बहुत से लोगों के भटके हुए मार्ग मंदिर की तरफ आ जाएंगे, बहुत से लोगों के प्राण प्रभु की तरफ प्यासे हो उठेंगे, बहुत से लोगों के जीवन में दुख और पीड़ा क्षीण होगी, बहुत से लोगों के जीवन में शांति के राज्य का द्वार खुलेगा। लेकिन वह आपकी छाया से हो जाएगा, उसका आपको पता भी नहीं पड़ेगा।
जब से दुनिया में कांशस सर्विस, सचेतन सेवा शुरू हुई है, तब से बहुत अहित हो रहा है। फिर वापस वह अचेतन सेवा, जो सहज हो जाती है, जिसका कोई पता नहीं चलता, उसकी पुनःस्थापना जरूरी हो गई है।
कुछ और प्रश्न रह गए। कल रात उन पर बात करेंगे।
अभी रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
तो थोड़े-थोड़े फासले पर हो जाएं। जल्दी ही अपनी-अपनी जगह बैठ जाएं।
अपनी-अपनी जगह बैठ जाएं। कहीं भी बैठ जाएं। शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, फिर प्रकाश बुझा दिया जाएगा। घनघोर अंधकार हो जाएगा। उस अंधकार में बिल्कुल लीन हो जाना है। जैसे हम भी एक हो गए। रात के साथ एक हो गए। थोड़ी देर तक मैं सुझाव दूंगा। आपका शरीर शिथिल हो रहा है। तब तक शरीर
को शिथिल छोड़ते जाना है। फिर श्वास शिथिल हो रही है। श्वास को धीमा छोड़ देना है। फिर मन शांत हो गया। फिर मन को भी शांत छोड़ देना है। फिर दस मिनट के लिए रात के साथ एक होकर हम रह जाएंगे।
झींगुर बोलते रहेंगे। कोई पक्षी आवाज करेगा। हवाएं चलेंगी। पत्ते उड़ेंगे। उनको चुपचाप जानते रहेंगे। बस सिर्फ जानने वाले रह जाएंगे। और जैसे-जैसे जानने का भाव गहरा होता है वैसे-वैसे मन शांत होता चला जाता है। अंततः जानते-जानते मन शून्य हो जाता है। वही शून्य द्वार है। वही खुला

द्वार है। उससे ही प्रवेश होता है वहां, उन ऊंचाइयों की जिनकी हमने बात की है।
शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें। आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें।
अब मैं सुझाव देता हूं--मेरे साथ अनुभव करें। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ते जाएं शरीर को। जब मैं कह रहा हूंः शरीर शिथिल हो रहा है, तो अनुभव करें कि पूरा शरीर शिथिल होता जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ दें बिल्कुल जैसे शरीर में कोई प्राण न रह गया हो। शरीर झुके झुक जाए। गिरे गिर जाए। बिल्कुल छोड़ दें जैसे हमारी कोई ताकत शरीर पर नहीं। शरीर प्रकृति का एक हिस्सा है। हमारा नहीं। छोड़ दें, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ दें। छोड़ दें। शरीर शिथिल होता जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो गया।
श्वास भी छोड़ दें। श्वास भी शिथिल हो रही है। श्वास शिथिल हो रही है। श्वास धीमी-धीमी, शिथिल होती जा रही है। श्वास शिथिल हो रही है। श्वास शिथिल हो रही है। छोड़ दें, श्वास भी शिथिल हो गई।
मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है। मन बिल्कुल शांत होता जा रहा है। मन शांत होता जा रहा है। छोड़ दें, मन को भी छोड़ दें। अब इस अंधेरी रात के साथ एक हो जाएं। वृक्षों के साथ, अंधेरे के साथ, आकाश के साथ एक हो जाएं।
अपने को छोड़ दें। जैसे बूंद सागर में खो जाती है। दस मिनट के लिए अब बिल्कुल मिट जाएं जैसे हैं ही नहीं। श्वास चलेगी, धड़कन होगी, कोई पक्षी बोलेगा, कोई आवाज होगी, चुपचाप सुनते रहें। जैसे शून्य में आवाजें गूंजती हैं। हम सिर्फ सुन रहे हैं। जान रहे हैं। सिर्फ द्रष्टा, साक्षी। दस मिनट के लिए साक्षी हो जाएं। जैसे-जैसे साक्षी भाव बढ़ेगा मन शांत होता चला जाएगा। धीरे-धीरे वह द्वार खुल जाएगा जो ऊपर ले जाता है मन के, बियांड माइंड।
अब दस मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं।
आप छोड़ दें अपने को बिल्कुल... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... मिट जाएं। शरीर को छोड़ दें... स्वयं को छोड़ दें... रात के साथ एक हो जाएं... छोड़ दें... छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें जैसे हैं ही नहीं... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें। मिट जाएं जैसे हैं ही नहीं। बिल्कुल छोड़ दें जैसे हैं ही नहीं। मिट जाएं... बिल्कुल छोड़ दें... छोड़ दें... छोड़ दें... अंधकार के साथ एक हो जाएं। रात के साथ एक हो जाएं। मिट जाएं... बिल्कुल छोड़ दें... छोड़ दें... जैसे हैं ही नहीं... छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल मिट जाएं जैसे हैं ही नहीं। रात के साथ एक हो जाएं। ये झींगुर हमारे भीतर बोल रहे हैं। ये आवाजें भी हमारे भीतर हैं। हम अलग नहीं हैं... बिल्कुल एक हो जाएं... मिट जाएं... छोड़ दें। बाहर और भीतर अलग-अलग नहीं हैं। बाहर भी भीतर है। भीतर भी बाहर है। सब एक हैं। छोड़ दें... मिट जाएं... बिल्कुल छोड़ दें जैसे हैं ही नहीं।
अब धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ गहरी शांति मालूम होगी। धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ बहुत शांति मालूम होगी। सब शांत हो गया है। बाहर भी सब शांत है। भीतर भी सब शांत है। सब मौन, सब शून्य। धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। फिर उतने ही आहिस्ता-आहिस्ता आंख खोलें। देखें सब शांत है, बाहर भी भीतर भी। धीरे-धीरे आंख खोलें और अंधेरे में दो मिनट देखते हुए बैठे रहें। देखें बाहर सब कैसा शांत है! आंख खोलें, देखें बाहर देखें। बाहर और भीतर सब एक है।

सम्भावनाओं की आहट
छठवां प्रवचन

अंधे मन का ज्वर
(23 मार्च 1969 सुबह)

मेरे प्रिय आत्मन्!
जीवन में दो भ्रम हैं। दोनों ही बहुत सत्य मालूम होते हैं! एक भ्रम तो पदार्थ का है, मैटर का और दूसरा भ्रम अहंकार का है, ईगो का। एक भ्रम बाहर है, एक भ्रम भीतर है। दोनों भ्रम एक साथ ही जीते हैं और एक साथ ही मरते भी-- वे एक ही भ्रम के दो छोर हैं, एक ही इलूजन के!
पदार्थ दिखाई पड़ता है और खयाल में भी नहीं आता कि ऐसा भी हो सकता है कि पदार्थ न हो। बहुत ठोस मालूम होता है। पत्थर कितना ठोस है?
एक बहुत बड़ा विचारक जॉनसन, बर्कले के साथ घूमने निकला था। और बर्कले कहता था, बाहर जो भी दिखाई पड़ता है, सब भ्रम है। तो जॉनसन ने पत्थर उठा कर बर्कले के पैर पर पटक दिया। बर्कले पैर पकड़ कर बैठ गया! और बहुत चोट लग गई उसे, खून बहने लगा! जॉनसन ने कहाः यह पत्थर भ्रम है, जिससे चोट लगी और खून बहता है?
शायद जॉनसन ने सोचा होगा कि बहुत बड़ी दलील दे दी है उसने पत्थर के पक्ष में। लेकिन पत्थर भ्रम है। अब तो विज्ञान कहता है कि मैटर है ही नहीं--पदार्थ नहीं है।
बहुत पहले कुछ लोगों ने कहा था, पदार्थ माया है, इलूजन है। तब हंसी योग्य बात मालूम हुई होगी। पदार्थ और माया! पदार्थ ही तो सत्य है। जो दिखाई पड़ता है, वही तो सत्य है। आम तौर से हम कहते हैं, जो दिखाई पड़ता है, वही तो सत्य है! जो दिखाई नहीं पड़ता, वह सत्य कैसे हो सकता है? अब विज्ञान कहता है जो दिखाई पड़ता है, वह बिल्कुल सत्य नहीं! पदार्थ--उसका ठोसपन, उसका होना, सभी असत्य है!
लेकिन कैसे हम मानें? पत्थर पैर पर गिरता है तो चोट लगती है। दीवाल से निकलने की कोशिश करें तो सिर टूट जाता है। इस दीवाल को सत्य कैसे न मानें, जिससे सिर टूट जाता हो? सिर जरूर टूट जाता है, फिर भी दीवाल जैसी दिखाई पड़ती है, वैसी नहीं है। हमें जो दिखाई पड़ रहा है बाहर का जगत--यह वृक्ष, आकाश में सूरज; यह पृथ्वी, यह पत्थर! यह चारों तरफ जो फैलाव है, इस फैलाव में हमें दिखाई पड़ता है--एक ठोसपन, एक पदार्थ, एक मैटीरियल!
लेकिन जैसे गहरी खोज की गई और पदार्थ तोड़ा गया तो पता चला, वहां सिर्फ ऊर्जा है, एनर्जी है, शक्ति है; पदार्थ नहीं है। पदार्थ अणुओं का जोड़ है, और अणु पदार्थ नहीं है। पदार्थ परमाणुओं का संग्रह है और परमाणु, परमाणु केवल ऊर्जा के कण हैं, शक्ति के कण हैं।
लेकिन फिर पदार्थ दिखाई कैसे पड़ता है? पदार्थ दिखाई पड़ता है ऊर्जा के कणों की तीव्रगति से, स्पीड से। एक पंखा है, उसमें तीन पंखुड़ियां हैं। पंखा रुका है, तो तीन पंखुड़ियां दिखाई पड़ती हैं। तेज चलता है पंखा, फिर पंखुड़ियां तीन नहीं दिखाई पड़ती, फिर बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती, फिर पूरा घूमता हुआ एक वृत्त मालूम होता है। अगर बहुत तेज चले पंखा तो हमें दिखाई पड़ेगा कि तीन का एक गोल घेरा घूम रहा है, जो कि नहीं है! बीच की खाली जगह दिखना बंद हो जाएगी--तीव्र गति होगी!
पदार्थ के जो अणु हैं, ऊर्जा के जो अणु हैं, वे इतनी तीव्र गति से घूम रहे हैं कि उनकी तीव्र गति के कारण ठोस होने का भ्रम पैदा होता है। उनके बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती। खाली जगह ठोस हो जाती है! वे इतनी तेजी से घूम रहे हैं, उनकी गति बहुत तीव्र है, उनकी गति उतनी ही है जितनी सूरज की किरणों की गति है! सूरज की किरणें एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील चलती हैं। एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील की सीधी गति है सूरज की किरणों की। और वे अणु छोटी सी जगह में इसी गति से घूमते हैं, वे एक सेकंड में कितना चक्कर लगा लेते होंगे एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकंड की गति से!

छोटे-छोटे अणु! और अणु कितने छोटे हैं! अगर हम अपने बाल के किनारे परमाणुओं को खड़ा करें तो एक बाल की मोटाई में एक लाख परमाणु सीधे खड़े हो जाएंगे। इतने छोटे परमाणु हैं, इतनी छोटी उनकी परिधि है घूमने की। और परिधि की घूमने की गति एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकंड है। इसलिए ठोस दिखाई पड़ती हैं चीजें। कोई चीज ठोस नहीं है। पदार्थ बिल्कुल भ्रम है।
एक भ्रम बाहर है और दूसरा इसी भ्रम का छोर भीतर है। भीतर दिखाई पड़ता
है कि "मैं" हूं, ईगो। यह "मैं" भी बिल्कुल झूठ है। यह "मैं" भी एकदम माया है, यह "मैं" भी एकदम इलूजन है!
लेकिन आप कहेंगे, मान भी लें कि पदार्थ ऊर्जा का परिभ्रमण है, लेकिन
यह "मैं" कैसे झूठ है? मेरा जन्म नहीं हुआ? मैं बच्चा नहीं था? मैंने शिक्षा नहीं ली? मैं बड़ा नहीं हुआ? मैं आज जवान नहीं हूं? मैं कभी बीमार पड़ता हूं, कभी स्वस्थ होता हूं! फिर मैं अगर नहीं हूं तो यह सब कहां होता है? किस पर होता है? ये सारे अनुभव किस पर गुजरते हैं? मैं हूं--मेरी इज्जत है, मेरी प्रतिष्ठा है, मेरा मान है, मेरा सम्मान है, मेरा ज्ञान है, मेरा त्याग है। मैं नहीं हूं--अगर मैं ही नहीं हूं तो फिर तो सब मिट गया।
इस "मैं" के भीतर भी अगर हम प्रवेश करें, जैसे वैज्ञानिक परमाणु के भीतर प्रवेश किया--पदार्थ के भीतर और उसने कहा कि मैटर नहीं है। ऐसे ही जब कोई व्यक्ति इस "मैं" के भी भीतर प्रवेश करे और "मैं" के परमाणुओं को जाने तो उसे पता चलता है कि "मैं" भी एक भ्रम है। मैं के परमाणु क्या हैं--अनुभव। जैसे पदार्थ के परमाणु हैं विद्युतकण, ऐसे "मैं" के परमाणु हैं अनुभव के कण। वे अनुभव के कण इकट्ठे हो गए हैं और तेजी से घूम रहे हैं। उनकी तेज गति के कारण यह शक पैदा होता है, यह लगता है कि "मैं" हूं।
जैसे कि हम एक मशाल जला लें और तेजी से मशाल को घुमाएं तो एक फायर सर्कल बन जाएगा। दिखाई पड़ने लगेगा एक अग्नि का गोल घेरा, वह है नहीं कहीं भी! सिर्फ एक मशाल घूम रही है, लेकिन तेजी से घूम रही है और एक वृत्त बन रहा है! मशाल नहीं दिखेगी, वृत्त दिखाई पड़ेगा! मशाल रुक जाए तो दिखाई पड़ जाएगा--वृत्त झूठ था, वह फायर सर्किल झूठ था, वह अग्नि-वृत्त नहीं था, सिर्फ एक मशाल तेजी से घूमती थी।
जब कोई व्यक्ति भीतर प्रवेश करेगा तो पता चलेगा, कि अनुभव के कण, स्मृतियों के कण जो हो चुका है, उसके कण इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि उन तेजी से घूमते हुए कणों के कारण एक सर्कल पैदा होता है, एक वृत्त पैदा होता है, ईगो-सर्किल पैदा होता है और लगता है कि "मैं हूं"! यह "मैं हूं" लगता है इसलिए, कि हम कहते हैं, मेरा जन्म हुआ!
लेकिन सच बात यह है मेरा जन्म नहीं हुआ। जन्म हुआ--मेरा कब हुआ? आपको पता है आपका जन्म कब हुआ? जन्म हुआ। आप बड़े हुए। लेकिन आप कहते हैं, मैं बड़ा हुआ! बड़े हुए, बड़े होने की क्रिया हुई। बीमारी आई। स्वास्थ्य आया लेकिन हम प्रत्येक घटना के साथ जोड़ते हैं कि "मैं" बीमार हुआ, "मुझे" भूख लगी, "मैं" स्वस्थ हुआ, "मैं" गया!
लेकिन अगर हम एक-एक अनुभव के भीतर प्रवेश करें तो पता चलेगा घटनाएं घटीं। लेकिन हमारी सारी भाषा भ्रांत है। हम कहते हैं, आकाश में बिजली चमकी! भाषा से ऐसी भूल पैदा होती है कि बिजली कोई अलग चीज है और चमकना कोई अलग चीज है! बिजली चमकी। हम कहते हैं, बिजली है, जो चमकी। लेकिन विज्ञान कहेगा, बिजली चमकी यह गलत है। चमकने का नाम बिजली है। बिजली कभी नहीं चमकी है। जो चमका है, उसी को हम बिजली कहते हैं। चमकना और बिजली एक ही चीज के दो नाम हैं। दो चीजें नहीं हैं कि बिजली कहीं अलग है और चमकना कहीं अलग है। आप कहते हैं मैं गया। अगर भीतर प्रवेश करेंगे तो पाएंगे, जाना हुआ है, मैं नहीं गया हूं। मैं और जाना एक ही चीज के दो नाम हैं। लेकिन हमारी भाषा कहती है मैं गया!
हम कहते हैं, मुझे प्यास लगी। सच बात यह है प्यास लगी। और प्यास लगते वक्त मैं और प्यास दो चीजें नहीं थे। मैं ही प्यास था।
लेकिन भाषा दो में तोड़ देती है! वह कहती है, मुझे प्यास लगी। हम कहते हैं मुझे दुख हो रहा है! अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो सिर्फ दुख हो रहा है। दुख हो रहा है, यही "मैं" हूं। लेकिन भाषा दो हिस्सों में तोड़ देती है! भाषा कहती है, मुझे दुख हो रहा है!

भाषा का जो हमारा निर्माण है उसमें "मैं" निर्मित होता चला जाता है। मैं कहीं भी नहीं हूं, लेकिन यह निर्माण बचपन से लेकर जीवन भर चलता है। और एक "मैं" का इलूजन, एक असत्य धीरे-धीरे पुंजीभूत हो जाता है, खड़ा हो जाता है, ठोस हो जाता है। और इसी ठोस "मैं" का बोझ हमारे ऊपर सर्वाधिक है।
मैंने दो बोझों की बात की आपसे--अतीत का बोझ, भविष्य का बोझ। और अंतिम बोझ है "मैं" का बोझ, "अहंकार" का बोझ।
यह अहंकार का बोझ, जब तक चित्त पर है, तब तक हम सत्य में प्रवेश नहीं पा सकते; क्योंकि यह है असत्य, यह है झूठ।
कभी अपने भीतर प्रवेश करें। अब हमारी सारी भाषा गड़बड़ है! जब हम कहेंगे अपने भीतर तो वह "मैं" मजबूत होता है। कहना चाहिए भीतर! लेकिन भीतर से भी वह "मैं" मजबूत होता है, लगता है कि भीतर "मैं हूं"! और बाहर "मैं नहीं हूं"! अब सच्चाई यह है कि बाहर और भीतर दोना शब्द झूठे हैं। ऐसी दो चीजें नहीं हैं कि कुछ बाहर और कुछ भीतर है। एक ही चीज फैली है बाहर और भीतर। बाहर और भीतर दो चीजें नहीं हैं। बाहर और भीतर एक ही चीज के फैलाव हैं, एक ही चीज का एक्सटेंशन हैं। वही भीतर है, वही बाहर है। लेकिन हमारे देखने में ऐसा लगता है कि भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है!
हम कहते हैं, बाहर कुछ भी नहीं है, भीतर सब कुछ है! हम कहते हैं बाहर छोड़ो, भीतर जाओ! उस सबसे "मैं" मजबूत होता है। लेकिन बहुत गौर से देखें-- क्या है बाहर, क्या है भीतर? कौन सी चीज भीतर है, और कौन सी चीज बाहर है? श्वास भीतर है कि बाहर? तो हमें पता चलेगा श्वास बाहर भी है और भीतर भी। श्वास बाहर भी जाती है और भीतर भी जाती है। श्वास कहां है? श्वास बाहर और भीतर का जोड़ है, सेतु है।
यह सूरज हमसे बाहर है या भीतर? सूरज की गर्मी हमें भीतर पूरे वक्त मिल रही है। हम इसी से जी रहे हैं। सूरज बाहर है या भीतर, सूरज मेरा हिस्सा है, या मुझसे अलग है? अगर सूरज बुझ जाए तो मैं भी बुझ जाऊंगा कि नहीं बुझ जाऊंगा? अगर सूरज बुझ जाए, हम सब यहीं बुझ जाएंगे। तो फिर सूरज बाहर था या भीतर था?
ये वृक्ष बाहर हैं कि भीतर? हम कहेंगे निश्चित ही बाहर हैं। वृक्ष हमसे बाहर दिखाई पड़ रहे हैं। दिखाई पड़ रहे हैं, यह सच है। लेकिन कभी आपने खयाल किया, गेहूं आप कहां से ले आए? वृक्षों से। भोजन कहां से ले आए? वृक्षों से। वृक्ष पूरे वक्त आपके लिए भोजन तैयार कर रहे हैं। आप मिट्टी नहीं खा सकते हैं, लेकिन गेहूं बो देते हैं। गेहूं मिट्टी खाता है। पौधा बड़ा होता है, एक गेहूं की जगह हजार गेहूं लग जाते हैं। वह सब मिट्टी से खींचा है उस गेहूं ने। उस गेहूं ने सूरज की किरणें पी ली। उस गेहूं में वह सारी प्रक्रिया हो गई कि अब इस प्रक्रिया के द्वारा गेहूं आपके शरीर का हिस्सा बन सकता है। अब यह गेहूं आपके भीतर जाएगा, आपका खून बनेगा, आपकी हड्डी बनेगा, आपका मांस बनेगा।
अगर सारे पौधे भोजन बनाना बंद कर दें, आप एक क्षण भी जीएंगे? आप इसी क्षण विदा हो जाएंगे। तो पौधे आपके बाहर हैं या भीतर? या उसी जीवन की बड़ी प्रक्रिया के हिस्से हैं, जिस जीवन की प्रक्रिया के आप भी एक हिस्से हैं, वही जीवन की प्रक्रिया एक तरफ गेहूं पैदा कर रही है और एक तरफ आपको पैदा कर रही है। फिर वही गेहूं आपको पोषण दे रहा है। और कल आप फिर गिर जाएंगे और फिर मिट्टी में मिल जाएंगे!
तो आप मिट्टी और आप अलग-अलग हैं? उसी मिट्टी से पैदा होते हैं, उसी मिट्टी में विदा हो जाते हैं। उसी मिट्टी से जीते हैं, फिर वही मिट्टी बन जाते हैं। कितनी बार पौधे बन चुके हैं आप, और कितनी बार पौधे आदमी बन चुके हैं। और कितनी बार आदमी फिर मिट्टी बन चुका है, फिर पौधा बन चुका है! ये किसी एक ही वृत्त के हिस्से हैं या अलग-अलग हैं? क्या है बाहर, क्या है भीतर?
जो बाहर है, वह प्रतिक्षण भीतर जा रहा है; जो भीतर है, वह प्रतिक्षण बाहर जा रहा है!
बाहर भीतर एक ही जीवन-ऊर्जा की लहरें हैं। जब भीतर की तरफ लहर आती है
तो हम कहते हैं "मैं" और जब बाहर की तरफ जाती है तो हम कहते हैं "तू"। लेकिन तू और मैं एक ही जीवन-ऊर्जा की लहर के दो छोर हैं।

यह दिखाई पड़ना जरूरी है, कि यह "मैं" भ्रम है। यह भीतर का भाव भी भ्रम है। और जब तक यह दिखाई न पड़ जाए, तब तक बोझ से मुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि जब तक मैं मानता हूं मैं हूं अलग, भिन्न, पृथक तब तक एक बोझ रहेगा। क्योंकि तब तक एक संघर्ष रहेगा शेष से, जो "मैं" नहीं है। मैं का संघर्ष है "ना मैं" से, आई का संघर्ष है नाट आई से, जब तक मैं "मैं" हूं, तू "तू" है, तब तक संघर्ष जारी रहेगा। जब तक वृक्ष अलग हैं, मैं अलग हूं, सूरज अलग है, मैं अलग हूं, तब तक एक अंतर्द्वंद्व जारी रहेगा। वह द्वंद्व ही मनुष्य के ऊपर सबसे बड़ा बोझ है, क्योंकि संघर्ष में शांति कहां, कॉनफ्लिक्ट में, द्वंद्व में शांति कहां?
हम लड़ रहे हैं प्रतिक्षण! सबसे लड़ रहे हैं चारों तरफ! और लड़ने का बिंदु
यह भ्रम है कि मैं अलग हूं। अगर यह ज्ञात हो जाए कि मैं अलग नहीं हूं, मैं इसी विराट जीवन प्रक्रिया का एक अंग हूं तो किससे है लड़ना, किससे है संघर्ष, कौन है शत्रु?
फिर यह सारा विराट जीवन एक है।
ऐसा ही समझें कि अगर मेरे हाथ को खयाल पैदा हो जाए कि मैं अलग हूं। और मेरी आंख को खयाल पैदा हो जाए कि मैं अलग हूं। और आंख लड़ने लगे हाथ से, पेट लड़ने लगे सिर से, हाथ लड़ने लगें पैर से तो क्या गति होगी उस व्यक्तित्व की, उस शरीर की? सारा व्यक्तित्व विघटित हो जाएगा। सारा व्यक्तित्व अंतर्द्वंद्व और संघर्ष में नष्ट हो जाएगा। सारा व्यक्तित्व एक कलह और एक कॉनफ्लिक्ट बन जाएगा। फिर जीवन आनंद नहीं हो सकता उस शरीर में। लेकिन नहीं आंख जुड़ी है पैर से, हाथ जुड़े हैं सिर से, पेट जुड़ा है, सब जुड़ा है। और सबके भीतर एक सहयोग एक कोआपरेशन, एक अंतर्संबंध, एक अंतर एक्य। भीतर सब एक है। आंख और पैर का अंगूठा अलग-अलग नहीं, दोनों एक ही जीवन प्रक्रिया के हिस्से हैं। गौर से देखेंगे, समझेंगे, पहचानेंगे तो समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया मालूम होगी।
और जिस दिन ऐसा मालूम होता है कि समस्त जीवन एक ही प्रक्रिया है, उसी दिन ईश्वर का अनुभव हो जाता है। ईश्वर का और कोई अर्थ नहीं है। ईश्वर का अर्थ है सब एक है। ईश्वर का अर्थ है, अनेक नहीं है। ईश्वर का अर्थ है, खंड-खंड नहीं हैं। सब अखंड है। और वह अखंड का इकट्ठा जीवन है।
लेकिन हमने उस अखंड से अपने को अलग तोड़ा हुआ है! और भक्त भी कहता है कि मैं अलग हूं! भक्त कहता है, हे भगवान, मुझ पर दया करना! वह कहता है कि मैं अलग हूं! तू दया करने वाला है, मैं दया पाने वाला हूं! तू पतित पावन है, मैं पतित हूं! लेकिन भक्त भी कहता है, मैं अलग हूं। भक्त भी कहता है कि मेरा उद्धार करना!
किससे कह रहे हो? तुम वही हो जिससे कह रहे हो। किससे मांग रहे हो भीख? तुम जिससे भीख मांग रहे हो, वही हो। वहां कोई भी नहीं है और सुनने को। क्योंकि मांगने वाला ही पाने वाला है। देने वाला ही लेने वाला है। वहां दो नहीं हैं। लेकिन सारे भक्त हाथ जोड़े खड़े हैं--किसके सामने!
और इसलिए मैं कहता हूं, सारे भक्त नास्तिक हैं। किसी भक्त को ईश्वर का कोई पता नहीं है। किससे हाथ जोड़ रहे हो? हाथ जोड़ने का मतलब है कि कोई दूसरा है। और जहां दूसरा है, वहीं सब उपद्रव शुरू हो गया। वहां हमने तोड़ लिया अपने को। किससे कर रहे हो प्रार्थना? किसके चरणों में हाथ जोड़ कर सिर टेक कर पड़े हो? कौन है वहां दूसरा?
कोई भी नहीं है। जीवन एक अंतहीन विस्तार है एक ही ऊर्जा का, एक ही जीवन शक्ति का। लेकिन भक्त भी कहता है कि भगवान अलग है! भगवान को पाने की मैं कोशिश कर रहा हूं! भगवान को पाने की कोशिश भ्रम है। भ्रम इसलिए है कि भगवान को पाने की कोशिश में यह माना हुआ है कि मैं हूं और मैं भगवान को पाऊंगा! नहीं, धर्म नहीं मानता, नहीं जानता ऐसा कि कोई और है। धर्म का ज्ञान, धर्म का जानना यह है कि मैं नहीं हूं। और तब सब एक हो जाता है।
फिर किससे करनी है प्रार्थना! फिर अपने ही हाथ को अपने ही सिर के प्रति जोड़े हुए हैं! अपने ही पैरों पर अपना ही सिर रखे हुए हैं! एब्सर्डिटी है सारी प्रार्थना, सारी पूजा, सारी अर्चना एक गंभीर मूढ़ता है, क्योंकि किससे कर रहे हैं यह?

वह जो मौलिक भ्रम है, वह जो ओरिजिनल इलूजन है, वह कायम है कि दूसरा अलग
है और मैं अलग हूं! भीतर वह जो छोर है बाहर का एक, उसमें प्रवेश करके खोजें "मैं हूं"? जाएं और खोजें कि "मैं कौन हूं"? और एक-एक जगह पूछें कि मैं यह हूं? मैं शरीर हूं?
हम कहेंगे, साधक पूछते हैं। साधक पूछते हैं, मैं शरीर हूं? और उत्तर उनके पास तैयार है, वे कहते हैं मैं शरीर नहीं हूं! वह उत्तर कहीं से आता नहीं, वह किताब से पढ़ा हुआ है। उत्तर पहले से मालूम है, पूछते पीछे हैं! पूछना झूठ है। उत्तर पहले से मालूम है, जैसा कि बच्चे नकल करते हैं। गणित करने के पहले किताब उलटा कर देख लेते हैं कि उत्तर क्या है! उत्तर पहले से मालूम है, फिर गणित कर रहे हैं!
ऐसा ही धार्मिक लोग करते हैं। उत्तर पहले से पक्का उन्हें पता है कि
हम आत्मा हैं! फिर अपने से पूछ रहे हैं, मैं शरीर हूं? और फिर खुद ही कह रहे हैं कि मैं शरीर नहीं हूं! क्या पागलपन है! किससे पूछ रहे हो? किसको उत्तर दे रहे हो?
और जब पूछना ही शुरू किया है तो फिर अंत तक पूछो, फिर इतने जल्दी मत रुक जाओ। फिर पूछो कि मैं शरीर हूं? और उत्तर किताब से मत लाओ, क्योंकि किताब से आया हुआ उत्तर आपके लिए झूठा होगा। वह किसी के लिए सच होगा, जिसे मिला था। आपको किताब से मिला है। आपको नहीं मिला है। आपको नहीं आया है, आपसे।
पूछो, मैं शरीर हूं? पूछो, मैं मन हूं? लेकिन यहीं मत रुक जाओ। जो रुक जाता है, वह पूछता ही नहीं। फिर यह भी पूछो, मैं आत्मा हूं? और हर जगह उत्तर मिलेगा, नहीं। शरीर पर भी मिलेगा, मन पर भी मिलेगा, आत्मा पर भी मिलेगा! असल में जो भी हम पूछ सकते हैं, वही उत्तर मिलेगा--यह मैं नहीं हूं। पूछते चले जाओ, खोजते चले जाओ और अखीर में, अंत में पाओगे कि मैं हूं ही नहीं। उत्तर मिलेगा ही नहीं। अंततः पता चलेगा मैं हूं ही नहीं। सब है, मैं नहीं हूं। जैसे कोई प्याज को छीलना शुरू करे, एक पर्त निकाल ले। पूछे, अब प्याज कहां है? यह पर्त तो प्याज नहीं। फेंक दी, फिर दूसरी पर्त निकाली। यह भी प्याज नहीं। और प्याज, और प्याज, और खोजता चला जाए और एक-एक पर्त को फेंकता चला जाए। आखिर में क्या मिलेगा? आखिर में शून्य मिलेगा, पता चलेगा प्याज है ही नहीं, सब पर्त ही पर्त थी।
ऐसे ही अगर कोई खोजता चला जाए तो पर्त ही पर्त मिलेगी और "मैं" कहीं भी नहीं मिलेगा। अंततः सब पर्तें शांत हो जाएंगी और मैं का भाव भी शांत हो जाएगा। लेकिन जहां "मैं" शांत हो जाता है, वहां "म"ैं तो नहीं मिलता, सब मिल जाता है!
पूछो, मैं कौन हूं? और आखिर में पता चलेगा मैं हूं ही नहीं। और तब जिसका पता चलेगा-वही है। उसका ही नाम सत्य है, उसी का नाम परमात्मा है। लेकिन जो कहता है, मैं आत्मा हूं, वह परमात्मा को कभी नहीं जान पाता, चूंकि वह यह मानकर चल रहा है कि मैं हूं। वह जिसको हम आत्मवादी कहते हैं, वह भी परमात्मवादी नहीं है। क्योंकि आत्मवादी कहता है, "मैं हूं"। और वह जिद्द उसकी कायम है कि मैं अलग हूं! वह कहता है मुझे मोक्ष चाहिए! और वह कहता है मोक्ष में भी "मैं" रहूंगा!
सब छोड़ने को राजी हो जाता है आत्मवादी, लेकिन "मैं" को छोड़ने को राजी नहीं! वह कहता है, धन मैं छोड़ दूंगा। वह कहता है, मकान मैं छोड़ दूंगा। वह कहता है, पत्नी-बच्चे मैं छोड़ दूंगा। वह कहता है, संसार मैं छोड़ दूंगा, यहां तक कि वह कहता है, देह मैं छोड़ दूंगा, मर जाऊंगा, संथारा ले लूंगा। लेकिन वह यह कहता है कि "मैं" को मैं नहीं छोडूंगा! मैं बचूंगा! "मैं" मोक्ष में रहूंगा! "मैं" परमपूर्ण शांति और आनंद को, मोक्ष में अनुभव करूंगा, लेकिन मैं, "मैं" बचूंगा!
लेकिन बड़े मजे की बात है, असली संपत्ति "मैं" है, धन असली संपत्ति नहीं है। और धन में जो मजा है, वह "मैं" के मजबूत होने का मजा है और कोई मजा नहीं है। मेरे पास कुछ है, इसका जो मजा है, वह मेरे "मैं" को मजबूत करने का मजा है! आपके पास एक बड़ा मकान है तो उसी अनुपात में आपके पास बड़ा "मैं" होगा। छोटा मकान है, "मैं" छोटा हो जाएगा। छोटे मकान से तकलीफ नहीं होती, तकलीफ "मैं" के छोटे हो जाने से होती है। अगर आप एक बड़ी कुर्सी पर सवार हैं तो

आपके पास एक बड़ा "मैं" है। कुर्सी से नीचे उतार दिए गए, छोटा "मैं" हो गया! तकलीफ कुर्सी से नहीं होती। बड़े तख्त पर बैठने से कौन सा सुख मिलता होगा? लेकिन बड़े तख्त पर बैठने से "मैं" बड़ा हो जाता है!
वह "मैं" बिल्कुल काल्पनिक है। बड़े तख्त का सहारा लेकर बड़ा हो जाता है! बड़े धन का सहारा लेकर बड़ा हो जाता है। बड़े पद का सहारा लेकर बड़ा हो जाता है! और हम कहते हैं, पद छोड़ दो, धन छोड़ दो। लेकिन वह "मैं" बहुत होशियार है। वह छोड़ने से भी बड़ा हो जाता है! वह कहता है, "मैंने" धन छोड़ दिया! देखो "मैंने" मिनिस्टरी को लात मार दी, "मैंने" पद छोड़ दिया! मैंने सब छोड़ दिया। लेकिन वह "मैं" कहता है, "मैंने" सब छोड़ दिया! वह फिर नई शक्लों में खड़ा हो जाता है! इसलिए धन छोड़ना आसान है, क्योंकि धन छोड़ने से "मैं" मरता नहीं, और मजबूत होता है। धन को तो चोर भी चुरा सकते हैं, लेकिन त्याग को कोई नहीं चुरा सकता। इसलिए अगर तिजोरी ही मजबूत बनानी हो, तो त्याग की तिजोरी बनानी चाहिए। लोहे की तिजोरियां चोरी जाती हैं, टूट जाती हैं।
संन्यासी बहुत होशियार हैं। संन्यासी के भर अहंकार की चोरी नहीं हो सकती! गृहस्थ के अहंकार की चोरी हो सकती है, गृहस्थ नासमझ है। संन्यासी होशियार है, ज्यादा कनिंग, ज्यादा चालाक है। वह ऐसा "मैं" मजबूत कर रहा है, जिसको कोई चुरा नहीं सकता। उसके "मैं" को आप कैसे चुराइएगा? अगर आप उसके कपड़े छीनकर ले जाओगे वह कहेगा, हमने कपड़े भी त्याग किए। चलो यह झंझट भी मिटी, कपड़े भी अब नहीं रहे! अब हम और भी मुक्त हो गए! अब वह "मैं" और मजबूत हो गया--वह कहता है, मैंने कपड़े भी छोड़ दिए!
गृहस्थ नासमझ अहंकारी है, संन्यासी समझदार अहंकारी है।
इसलिए गृहस्थ को जब नासमझी टूटती है तो वह भी संन्यासी होना शुरू हो जाता है! तो समझ में आ जाता है कि हम कहां के पागलपन में पड़े हैं! इसमें कोई सार नहीं। धन चोरी चला जाता है। सरकार बदल जाए, सब गड़बड़ हो जाता है। कम्युनिज्म आ जाए, सब गड़बड़ हो जाता है।
संन्यासी से कोई कुछ नहीं छीन सकता है। उसके पास कुछ है ही नहीं जिसको छीनोगे। उसके पास शुद्ध "मैं" बच गया है, जिसके पास अब कुछ भी नहीं है छोड़ने का, "मैं"। लेकिन असली चीज है--सवाल "मैं" के छोड़ने का--न धन छोड़ने का सवाल है; न मकान छोड़ने का, न पद छोड़ने का। सवाल है "मैं" छोड़ने का। लेकिन वह तो मोक्ष की खोज करने वाला भी नहीं छोड़ता! वह कहता है, "मैं" तो रहूंगा, शुद्ध रूप में रहूंगा! शरीर छूट जाएगा, लेकिन मैं रहूंगा! मन छूट जाएगा, मैं रहूंगा! वासना छूट जाएगी, मैं रहूंगा!
यह बहुत अदभुत बात है कि जो सबसे ज्यादा भ्रामक है, उसी को बचाने की चेष्टा चलती है। नहीं, जब तक "मैं" है, तब तक कुछ नहीं छूटता। जिस दिन "मैं" छूट जाता है, उसी दिन कुछ छूटता है। और जिस दिन "मैं" छूट जाता है, उस दिन मोक्ष है। "मैं" का कोई भी मोक्ष नहीं है, "मैं" से मुक्ति का नाम मोक्ष है। "मैं" की कोई मुक्ति नहीं होती कि मैं मुक्त हो जाऊंगा। मुक्त होने का मतलब कि "मैं" तो मरा, "मैं" तो गया। मुक्ति में कोई "मैं" नहीं बच रहता। मुक्ति का अर्थ हैः परमात्म-जीवन। जहां "मैं" नहीं रहा, समग्र की सत्ता रह गई। "मैं" सबके साथ एक और एकमय हूं। मुझे होना नहीं है, सिर्फ जानना है कि सत्य क्या है। क्या मैं अलग हूं? क्या मैं पृथक हूं? क्या पृथक होकर एक क्षण भी जीया जा सकता है? क्या जीवन का पृथक होना संभव है? क्या एक व्यक्ति को हम एक कैप्सूल में बंद कर दें, सब तरफ से तोड़ दें, वह जीएगा? एक क्षण भी जीएगा?
जीवन अंतर्संबंध है, इंटररिलेशनशिप है। जीवन विराट अंतर्संबंध है। सोचें एक व्यक्ति को, सोचें एक व्यक्ति को कि हमने बंद कर दिया है, एक वैक्यूम कैप्सूल में, एक शून्य डिब्बे में बंद कर दिया। उसका कोई संबंध नहीं रहा दुनिया से। वह एक क्षण भी जी सकता है वहां? एक क्षण भी हो सकता है वहां? वह नहीं होगा, नहीं हो सकता।
लेकिन हम सबने अहंकार का कैप्सूल बनाया हुआ है! और उस अहंकार में हम
सब अलग-अलग खड़े हो गए हैं! और कहते हैं, "मैं हूं"! यद्यपि हम जुड़े हैं। लेकिन फिर भी हम कहते हैं "मैं हूं" अलग और पृथक!
जीवन है संयुक्त। अहंकार है वियुक्त। अहंकार की खोज करनी जरूरी है कि कहीं यह भ्रम तो नहीं है? कभी एकांत में बैठ कर देखा है भीतर की तरफ--कहां

है अहंकार, कहां हूं मैं? पूछते चले जाएं--यह हूं मैं? और उत्तर आएगा, नहीं। नेति-नेति उत्तर आएगा--नहीं, नहीं, यह भी नहीं।
लेकिन अगर किताब से उत्तर सीख लिया तो उत्तर आएगा--हां! शरीर तो नहीं हूं, लेकिन आत्मा हूं! आत्मा तो नहीं हूं, लेकिन परमात्मा हूं! उत्तर अगर सीखा हुआ है तो व्यर्थ हो जाएगा।
सिर्फ पूछें, इन्क्वायरी चाहिए, अन्वेषण चाहिए यह हूं मैं? और फौरन पता चलेगा कि मैं यह नहीं हो सकता। हाथ मैं नहीं हो सकता हूं, चूंकि मैं तो हाथ को जान रहा हूं, पहचान रहा हूं। शरीर हूं मैं? शरीर मैं नहीं हो सकता हूं, क्योंकि शरीर को मैं पहचान रहा हूं, शरीर को मैं जान रहा हूं। जिसको मैं जान रहा हूं, वही मैं नहीं हो सकता, मैं जानने वाला हूं। तो फिर और पूछें--विचार हूं मैं? विचारों को भी मैं जान रहा हूं। मन हूं मैं? मन को भी मैं जान रहा हूं। पूछते चलें, पूछते चलें। आत्मा हूं मैं? असल में जिसको भी हम पूछ सकते हैं, यह हूं मैं? वही हम नहीं होंगे। और पूछते-पूछते वह घड़ी आएगी कि पता चलेगा कि अब तो पूछने को कुछ नहीं बचा कि क्या हूं मैं। पूछने को ही नहीं बचा कि क्या हूं मैं और उत्तर भी नहीं मिला! उत्तर भी खो जाएगा, पूछने की वृत्ति भी खो जाएगी, साथ ही "मैं" भी खो जाएगा।
तब शेष रह जाएगी एक अनंत शांति, तब शेष रह जाएगा अनंत मौन। न वहां प्रश्न है, न वहां उत्तर है। तब शेष रह जाएगा अनंत विस्तार। तब शेष रह जाएगा जीवन और जीवन का स्पंदन। और तब दिखाई पड़ेगा, यह वृक्ष भी मैं हूं, यह शरीर भी मैं हूं, यह चांद भी मैं हूं, यह तारा भी मैं हूं। वह जो सामने दूसरी आंखें दिखाई पड़ रही हैं, उनसे भी मैं ही झांक रहा हूं। मैं ही बोल रहा हूं और वह जो सुन रहा हूं, वह भी मैं हूं। मैं ही बोल रहा हूं, दूसरे कोने से मैं ही सुन रहा हूं! वह जिसको मैं प्रेम कर रहा हूं, वह भी मैं हूं। और वह जो प्रेम कर रहा है, वह भी मैं हूं।
जिस दिन दिखाई पड़ेगा, "मैं नहीं हूं", उसी दिन एक क्रांति हो जाएगी। और दिखाई पड़ेगा, "मैं ही हूं"। इन दोनों बातों का एक ही अर्थ है। चाहे यह कहें कि मैं नहीं हूं, सब है। और चाहे यह कहें, कुछ भी नहीं है, मैं ही हूं। ये दोनों एक ही बातें हैं। इन दोनों का एक ही अर्थ है कि जीवन है, जीवन का अंतहीन अनंत विस्तार है। ऊर्जा का सागर है, एक एनर्जी है, जो स्पंदित हो रही है अनंत-अनंत रूपों में। लेकिन एक का ही स्पंदन है। और जब तक यह बोध स्पष्ट न हो जाए, तब तक बोझ से मुक्ति नहीं हो सकती।
अहंकार सबसे बड़ा बोझ है।
लाओत्सु के पास एक आदमी गया और उस आदमी ने पूछा कि मैं मोक्ष चाहता हूं! लाओत्सु हंसने लगा। उसने कहाः पागल, तू मोक्ष चाहता है, तू? उसने कहा, हां मैं, मैं मोक्ष चाहता हूं, मैं मोक्ष को कैसे पाऊं?
लाओत्सु ने कहाः पहले समझ कर आ कि "मैं" है? अगर हो तो मैं मुक्त करने
का रास्ता बता दूंगा। पहले जा, खोज कर आ कि "मैं" है, अगर "मैं" हो तो मैं मुक्त होने का रास्ता बता दूं और अगर "मैं" ही न हो, तो किसको मुक्त करने का रास्ता मैं बताऊंगा!
वह आदमी वापस गया। वर्षों बाद वापस लौटा, चरणों पर सिर रख दिया। लाओत्सु ने पूछाः खोज लिया "मैं?"
उस आदमी ने कहाः आपने भी क्या आश्चर्यजनक बात कही। "मैं" को खोजने गया, "मैं" खो गया!
तो लाओत्सु ने कहाः मोक्ष का इरादा?
उसने कहाः बात ही खत्म हो गई। "मैं" ही नहीं हूं तो मुक्त किसको होना है! और जब "मैं" ही नहीं हूं तो मुक्त हो गया। क्योंकि "मैं" ही बंधन था। लेकिन हम सब मोक्ष खोज रहे हैं! हम कहते हैं, मुझे शांत होना है! ध्यान रहे, जब तक "मैं" है, तब तक शांति नहीं हो सकती। लेकिन हम पूछते हैं, "मैं" शांत कैसे हो जाऊं! हम पूछते हैं, मैं शांत कैसे हो जाऊं!
यह ऐसे ही है, जैसे कैंसर पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं! अगर कैंसर
आ जाए और आपसे पूछे, टी बी आ जाए और आपसे पूछे कि मैं स्वस्थ कैसे हो जाऊं, तो हम उससे कहेंगे कि तू ही तो बीमारी है। तू स्वस्थ नहीं हो सकती, तू न रहे तो स्वास्थ्य आ जाएगा। कैंसर स्वस्थ नहीं हो सकता, कैंसर का न होना, स्वस्थ होना होगा।

"मैं" कभी शांत नहीं हो सकता। लेकिन हम सब "मैं" को शांत करने में पड़े हैं! हम कहते हैं, दुनिया से हमें कोई मतलब नहीं, मैं कैसे शांत हो जाऊं! और "मैं" ही अशांति है, "मैं" ही द्वंद्व है, "मैं" ही कष्ट है, "मैं" ही बंधन है! और हम पूछते हैं, मैं मुक्त कैसे हो जाऊं?
और बताने वाले लोग हैं, वे कहते हैं--जप करो, तप करो, उपवास करो और मुक्त हो जाओगे! और वह "मैं" कहता है--अच्छी बात! अब मैं उपवास करूंगा। और "मैं" उपवास करता है। और उपवास करने के बाद "मैं" बाजार में आता है और कहता है, मैंने इतने उपवास किए, मैंने इतनी जाप फेरी! एक लाख माला फेर चुका हूं! मैंने राम-राम लिख कर हजारों किताबें भर दीं हैं!
मैं एक गांव में गया। वहां एक मंदिर बनाया हुआ है--राम मंदिर। उस मंदिर में एक ही काम है। उसमें हजारों पुस्तकें हैं। और हर आदमी वहां बैठ कर राम-राम, राम-राम लिखता रहता है किताबों में! और वे किताबें रखते जाते हैं! ऐसा वे कहते हैं, हमारे पास करोड़ों राम नाम हैं! उस मंदिर में, और सारे मुल्क से हजारों लोग लिख-लिख कर राम-राम, राम-राम भेजते रहते हैं और वहां किताबें इकट्ठी होती जाती हैं!
और हर आदमी हिसाब रखता है कि मैंने कितने लाख राम लिख दिए, मैंने कितने लाख नाम ले लिए, मैंने कितनी मालाएं फेर लीं, मैंने कितना उपवास किया! वह मैं बड़ा प्रसन्न होता है! वह मैं कहता है कि चलो, ठीक है। मैं के भरने के नये उपाय मिल गए। वह मैं पहले गिनती करता था कि मेरी तिजोरी में कितने रुपये हैं! अब वह मैं कहता है, मेरी तिजोरी में कितना नाम, कितने राम हैं मेरी तिजोरी में! वह पहले कहता था कि मेरे पास कितने मंजिल का मकान है। अब वह मैं कहता है, मेरे पास कितने मंजिल का उपवास है--मैंने कितने उपवास किए--मंजिल दर मंजिल उपवास हैं मेरे! अब वह मैं कहता है, मैंने यह--यह छोड़ दिया, मैंने यह--यह कर लिया! मैंने इतने नमोकार पढ़ डाले, मैंने इतनी नमाज पढ़ ली, मैंने यह किया! मैंने वह किया! और वह मैं नये मकान बनाने शुरू कर देता है। और फिर वह मैं कहता है, मुझे मोक्ष चाहिए! मोक्ष कहां है, मोक्ष कैसे मिलेगा!
यह बुनियादी भ्रम है, जिससे साधक भटक जाता है। मैं भटकाता है और कोई नहीं भटकाता। फिर वह मैं न मालूम कितने नये उपाय खोजता है! इस मैं को समझना जरूरी है कि जिसे हम शांत करना चाहते हैं--कहीं वही तो अशांति नहीं है? कभी आपने खयाल किया, अशांति क्या है? अगर इस वक्त "मैं" छूट जाए कौन सी अशांति है? एक क्षण को सोचा कभी यह कि अगर "मैं नहीं हूं", फिर क्या अशांति है? कभी यह भी सोचा कि मेरी अशांति के पैदा होने में, "मेरी ईगो" के अतिरिक्त, मेरे "मैं" के अतिरिक्त और कोई कारण है?
एक आदमी ने रास्ते पर नमस्कार नहीं किया और मन अशांत हो जाता है! और एक आदमी ने ऐसी आंख से देख लिया कि मन अशांत हो जाता है! और एक आदमी ने कह दिया तुम कुछ भी नहीं हो और मन अशांत हो जाता है! और बेटे ने आज्ञा नहीं मानी और बाप अशांत हो गया! और पति पत्नी की आज्ञा अनुसार नहीं चला और पत्नी अशांत हो गई!
कभी सोचा कि अशांति का कारण क्या है? अशांति का कारण पति का मानकर न चलना है? अशांति का कारण बेटे का बाप की बात न मानना है? या अशांति का कारण बाप का "मैं" है, पत्नी का "मैं" है, बेटे का "मैं" है? कौन है अशांति का कारण? कौन कर रहा है अशांत--किसीको?
वह मेरा "मैं"। वह कहता है, मेरा नहीं माना, "मैं" बाप हूं। वह "मैं" बाप बना बैठा है! तो वह "मैं" मां बना बैठा है, वह "मैं" पति बना बैठा है! वह कहता है, "मैं।" उसने हजार शक्लें बना रखी हैं! वह जगह-जगह से पुकार कर कह रहा है, कि मेरी तृप्ति होनी चाहिए, जो "मैं" कहूं!
यह जो "मैं" का सारा का सारा जाल है, यही अशांति है। फिर जब अशांति बहुत बढ़ जाती है, जब अशांति बेबूझ हो जाती है। जब अशांति को सहना असंभव हो जाता है। वह असहनीय हो तो वह "मैं" पूछता है कि शांति कैसे मिले? फिर वह "मैं" शांति की तलाश में जाता है! "मैं" शांति की तलाश में जाता है! मैं जाता है शांति की खोज में, गुरुओं के चरण पकड़ता है और कहता है, हमें शांति का रास्ता बताइए, हम शांत होना चाहते हैं! "मैं" शांत होना चाहता हूं!

और गुरु हैं! उनके पास भी अपना "मैं" है, नहीं तो "मैं" न हो तो कोई गुरु बनकर बैठेगा? तो वह कहते हैं, आओ, हम शांति देंगे! और जो कहता है, "मैं" शांति दूंगा, उसको बेचारे के पास खुद ही शांति नहीं हो सकती, क्योंकि जहां "मैं" है, वहां शांति कैसे हो सकती है? वह कहता है, मैं शांति दूंगा, आओ!
वे अशांत मैं उसके आस-पास इकट्ठे होते हैं। ऐसे संप्रदाय खड़े होते हैं, गुरुडम खड़ी होती है, आश्रम खड़े होते हैं, पंथ चलते हैं! सब "मैं" का उपद्रव है!
गुरु भी "मैं" का उपद्रव है, शिष्य भी!
और शिष्य बड़े गुरु खोजता है और सिद्ध कर लेना चाहता है कि गुरु पक्का, बड़ा है कि नहीं! क्योंकि बड़े गुरु के साथ बड़े शिष्य का "बड़ा मैं" मजबूत होता है। उसको लगता है कि "मैं" कोई साधारण गुरु का चेला नहीं हूं, "बड़े गुरु" का चेला हूं, "बड़ा चेला" हूं! इधर "मैं" मजबूत होता है।
अगर उससे कहो कि "तुम्हारा" महावीर कोई "बड़ा गुरु" नहीं है, तुम्हारा "बुद्ध" कोई "बड़ा गुरु" नहीं है, यह तुम्हारा "महात्मा" आधा महात्मा है तो उसको पीड़ा लगती है! उसको पीड़ा इसलिए नहीं लगती है कि महावीर को कोई चोट पहुंच गई तो उसको पीड़ा लगती है! उसको पीड़ा लगती है। "मेरा गुरु"! "मेरा गुरु" कमजोर गुरु है! "आधा गुरु" है--कभी नहीं हो सकता। "मेरा गुरु" हमेशा "पूरा गुरु" है। "मेरा गुरु" तीर्थंकर है! "मेरा गुरु" अवतार है, "मेरा गुरु" भगवान है! तो फिर कहता है, तलवारें चल जाएंगी!
बेचारे महावीर को चले ढाई हजार साल हो गए, मोहम्मद को मरे चौदह सौ साल
हो गए, जीसस को मरे जमाना गुजर गया। उनकी मिट्टी बहुत पहले राख में मिल गई। वे बहुत पहले खो चुके उसमें, जो सबमें है। अब लेकिन तलवार चलाने वाला पीछे खड़ा है! वह कहता है, हम तलवार चला देंगे, अगर मोहम्मद से कुछ कहा! क्यों भाई? तुम्हें क्या तकलीफ होती है?
अगर मोहम्मद छोटे होते हैं तो इस बेचारे का "मैं" छोटा होता है। यह मुसलमान है। और मुसलमान के "मैं" का मजा तभी तक है, तब तक मोहम्मद "बड़े" हैं। यह जैन है। इस जैन का मजा तभी तक है, जब तक महावीर "तीर्थंकर" हैं। अगर पता चल जाए कि महावीर "तीर्थंकर" नहीं हैं, इसके बेचारे का "मैं" मरा! फिर यह किस छोटे गुरु को पकड़ कर चल रहा था। गया, सब खो गया! इसको जो पीड़ा होती है, वह इसके "मैं" की पीड़ा है!
यह खयाल से समझ लेना। जगत की सारी अशांति "मैं" की अशांति है। सारी अशांति मैं की अशांति है, "मैं" के अतिरिक्त और कोई अशांति नहीं है। लेकिन मजा, मजा देखें कि वह "मैं" कहता है कि "मुझे" शांत होना है! यह आखिरी तरकीब है "मैं" की। फिर वह शांत होने के बहाने भी करता है। आंख बंद करके बैठ जाता है, आसन लगा लेता है और कहता है मैं शांत हो रहा हूं! और बीच-बीच में आंख खोल कर देखता रहता है कोई देखने वाला निकला कि नहीं! देखा किसी ने कि नहीं कि कितनी शांति से हम आसन लगाए बैठे हुए हैं! मंदिर में बड़ी देर से बैठे हुए हैं--और भी आराधक आए कि नहीं, गांव में खबर पहुंची कि नहीं! वह मैं देख रहा है आंख खोल-खोल कर कि कौन कितना मानता है! वह "मैं" बीच-बीच में झांक कर देख लेता है कि "मैं" जब इतनी साधना कर रहा हूं तो जनता को पता चल रहा है कि नहीं! किस-किस को खबर मिल रही है? लोग आने शुरू हो गए कि नहीं! एक संन्यासी के आश्रम में मैं गया। एक बड़े मजे की बात हुई कि सभी आश्रमों में वैसी मजे की बात होती है। संन्यासी एक बहुत बड़े तख्त पर विराजमान है। उस तख्त के नीचे एक छोटा तख्त, उस पर एक दूसरे संन्यासी विराजमान हैं! उस तख्त के नीचे और एक छोटा तख्त, उस पर एक तीसरे संन्यासी विराजमान हैं!
मैं गया, उन संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप जानते हैं, बगल में कौन बैठा हुआ है?
मैंने कहाः मैं नहीं जानता, आप बताने की कृपा करें।
उन्होंने कहाः आपको पता नहीं, यह आदमी हाईकोर्ट का जज था, संन्यासी हो गया है! सब छोड़ दिया, बहुत विनम्र है! देखते हैं, कभी मेरे बराबर आसन पर भी नहीं बैठता, आसन छोटा रखता है।
मैंने कहाः महाराज, जो आपसे तो आसन छोटा रखे हुए हैं, लेकिन आपके मरने
की प्रतीक्षा कर रहा है, क्योंकि उसके भी नीचे एक तीसरा बैठा हुआ है! वह

उससे बड़ा आसन रखे हुए है! और आप मरे कि वह इस आसन पर बैठेगा, और वह जो नंबर सीढ़ी लगी हुई है, वह दूसरा आदमी उसके आसन पर बैठेगा। हीरारकी चल रही है। इसमें भी सब पद हैं, प्रतिष्ठाएं हैं!
और इस आदमी को क्यों मजा आ रहा है कि एक हाईकोर्टजज को नीचे बिठाल दिया है। अब बताने की क्या जरूरत है कि हाईकोर्ट जज है। जब नहीं रहा तो मामला खत्म हो गया। जब हाईकोर्ट में जज ही नहीं रहा अब। अब गेरुआ वस्त्र पहन कर संन्यासी हो गया तो अब कैसा जज है?
लेकिन अभी यह बताता है, यह बताता है कि यह आदमी हाईकोर्ट का जज था, यह कोई साधारण आदमी नहीं है। यह जो मुझसे नीचे बैठा है, यह कोई साधारण आदमी नहीं। लेकिन इसको बताता क्यों है? यह बताता इसलिए है कि मैं किसी साधारण आदमी से ऊपर नहीं बैठा हुआ हूं, हाईकोर्ट का जज बैठा हुआ है नीचे! अपने हाथ में हाईकोर्ट के जज भी संन्यासी हो गए हैं! अगर मैं ऊंचा बैठा हुआ हूं और यह आदमी विनम्र है। क्यों, क्योंकि मेरे बराबर नहीं बैठता। लेकिन यह आदमी विनम्र है और आप क्या हैं? और आपको इसमें मजा आ रहा है आपको कि मेरे बराबर नहीं बैठता! आप बड़े खुश हो रहे हैं!
गुरु के पैर तो बहुत बार छुए हैं। एकाध दफा पैर जरा उनके सिर से लगाकर देखना, तब असलियत पता चलेगी कि मामला क्या है। तब गुरु गर्दन पकड़ लेगा, तब पता चलेगा कि वहां भी "मैं" बैठा हुआ है। पैर छूओ तो वह तृप्त होता है! पैर मत छुओ तो नाराज हो जाता है! और अगर सिर से पैर लगा दो तो पागल हो उठेगा! और वह तो पागल होगा, उसके शिष्य भी पागल हो उठेंगे! क्योंकि उनके गुरु को... ! सारा का सारा जाल पूरे "मैं" का है!
और इस "मैं" के जाल के धार्मिक रूप भी हैं, अधार्मिक रूप भी हैं; राजनैतिक रूप भी हैं, सांस्कृतिक रूप भी हैं, साहित्यिक रूप भी हैं, कलात्मक रूप भी हैं! हजार-हजार रास्तों से वह "मैं" आदमी को पकड़े है।
इसे पहचानना पड़ेगा, इसे भीतर खोजना पड़ेगा। इसकी इंच इंच तलाश करनी पड़ेगी यह कहां-कहां बैठा है। और जहां-जहां आप पहुंच जाएंगे, जहां-जहां आपकी दृष्टि पहुंच जाएगी, वहीं-वहीं से यह तिरोहित हो जाएगा। जहां-जहां आप देख लेंगे यहां-यहां बैठा हुआ है, वहीं-वहीं से विलीन होता चला जाएगा। खोजें, और भीतर एक इंच न छोड़ें, जहां खोज नहीं की है। सारे इंच-इंच खोज डालें भीतर और आखिर में आप पाएंगे, वह कहीं भी नहीं है!
जैसे कोई दीया लेकर किसी अंधेरे घर में जाए और अंधेरे को खोजने लगे और दीया ले जाए और देखे कोने-कोने में अंधेरा कहां है। जहां-जहां दीया जाएगा, वहीं-वहीं अंधेरा नहीं होगा। आखिर में वह घर के बाहर आकर कहेगा, अंधेरा नहीं है! मैंने दीया ले जाकर भीतर देखा, वह कहीं भी नहीं था! लेकिन दीया मत ले जाएं भीतर तो अंधेरा है और दीया ले जाएं तो नहीं है।
जब तक हमने खोज नहीं की, तब तक "मैं" है। जब हम खोजेंगे, तब वह नहीं होगा।
इसलिए "मैं" को बदलने से बचें, "मैं" की बदलाहट से बचें। "मैं" बदलने
के लिए हमेशा तैयार है! वह कहता है कि इस शक्ल में पसंद नहीं रहा, चलो दूसरी शक्ल में मैं राजी हूं! तुम कहते हो, धन में अब मुझे मजा नहीं आता, चलो अब मैं त्याग में राजी हूं! तुम कहते हो, पाप करने में अब मजा नहीं आता, अब अहंकार की तृप्ति नहीं होती, चलो हम पुण्य करने को राजी! तुम कहते हो कि शराबघर में जाने में अब मेरे अहंकार को तृप्ति नहीं मिलती!
और ध्यान रखें, शराब पीने वाला, और सिगरेट पीने वाला और सब--भीतर एक तृप्ति कर रहे हैं! छोटा बच्चा भी अकड़ कर सिगरेट पीना चाहता है, क्योंकि वह देखता है जितनेलोग सिगरेट पीते हैं अकड़ कर, अहंकार मालूम पड़ता है। छोटे बच्चे सिगरेट सिगरेट के लिए नहीं पीते। सिर्फ पीते हैं--कि सिगरेट पीने से बड़प्पन मिलता है। लगता है कि हां हम भी कुछ हैं! हम भी कोई साधारण नहीं है! वह जो, वह जो सिगरेट पीने में जो रस है, सिगरेट का नहीं है, "मैं" का रस है। धुएं में क्या रस हो सकता है? पागलपन के सिवाय कुछ भी नहीं। एक आदमी धुआं भीतर ले जाए और बाहर निकाले! यह क्या कर रहे हो? धुआं भीतर बाहर किसलिए कर रहे हो? क्या हो गया है तुम्हारे दिमाग को? लेकिन चूंकि सारी दुनिया पागल है, इसलिए कोई किसी से नहीं कहता कि यह कर क्या रहे हो? यह हो

क्या गया है, धुआं बाहर भीतर क्यों करते हो? इससे खांसी आ सकती है। तकलीफ हो सकती है। रस तो कुछ भी नहीं है।
लेकिन रस है और रस बिल्कुल दूसरा है। इसलिए जब कोई किसी सिगरेट पीने वाले को समझाता है कि स्वास्थ्य खराब हो जाएगा इसका कोई असर नहीं होता। क्योंकि रस है ही नहीं इसमें। रस बिल्कुल दूसरा है। रस यह है कि सिगरेट पीने वाला एक अकड़ में आ जाता है! "मैं" को लगता है कि हां मैं कुछ हूं! फिर सिगरेट के भी ब्रांड हैं, वे सब "मैं" के ब्रांड हैं। सस्ती सिगरेट गरीब आदमी का "मैं" पीता है। फिर अमीर आदमी का "मैं" है और वह ऐसी सिगरेट पीता है, जिसको बहुत थोड़े लोग पी सकते हैं! फिर वह उसको बार-बार भी नहीं पीता, वह हाथ में लगा कर सिर्फ धुआं उड़ाता रहता है! उसको बार-बार पीने की जरूरत भी नहीं है, वह इतनी कीमती सिगरेट को ऐसे ही उड़ा देता है! वह सब "मैं" है। वह एक कश लेता है और फेंक देता है! कोई पीने का सवाल नहीं है, असली, असली सवाल दिखाने का है, असली सवाल यह है कि देखो।
यह जो सारा का सारा हमारा जाल है--चाहे हम सिगरेट पीते हों, और चाहे हम शराबघर जाते हों और चाहे हम कपड़े पहनते हों, उस सबके पीछे असलियत बहुत दूसरी हो गई है। वह सारे के पीछे "मैं" काम कर रहा है। इसकी खोज करनी पड़ेगी, इसकी पहचान करनी पड़ेगी यह कहां-कहां मुझे पकड़े हुए है। मैं कहीं "मैं" के आधार पर ही तो नहीं जी रहा हूं?
अगर "मैं" के आधार पर जी रहे हैं तो अशांति ही संभव है, शांति संभव नहीं। और हम जी रहे हैं, हम उसी आधार पर जी रहे हैं, इसकी खोज करनी जरूरी है। इसकी इंक्वायरी जरूरी है। इसके भीतर जासूसी करनी पड़ेगी, इसके भीतर जाना पड़ेगा, इसका पीछा करना पड़ेगा कहां-कहां, कहां-कहां यह छिपा है। जन्मों-जन्मों से वह पकड़े हुए है!
और जब उसकी पहचान पूरी होती है, जब वह रिकग्नाइज कर लिया जाता है, जब पहचान लिया जाता है कि यह रहा "मैं"; और जब रत्ती-रत्ती पहचान हो जाती है, और कण-कण और सूक्ष्म से सूक्ष्म उसकी तरंगें पहचान में आ जाती हैं वह विदा होने लगता है, वह विलीन होने लगता है। एक घड़ी आती है कि "मैं" विदा हो जाता है। "मैं" के साथ ही आत्मा विदा हो जाती है। तब जो शेष रह जाता है तब क्या शेष रह जाता है, दि रिमेनिंग, तब क्या शेष रह जाता है--वही शेष सत्य है, वही शेष शांति है, वही शेष आनंद है। उसे कोई भी नाम दो--सत्य कहो, मोक्ष कहो, परमात्मा कहो, नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई भी नाम कहो, सब नाम सत्य हैं उसके लिए। कोई भी नाम काम दे देगा। और कोई भी नाम न दो, तब भी चल जाएगा। लेकिन इधर "मैं" का मिटना जरूरी है।
विज्ञान तो पहुंच गया पदार्थ के मिटने पर। इधर धर्म को भी पहुंचना पड़ेगा--मैं, आत्मा इसके मिटने पर। जब दोनों मिट जाएंगे--पदार्थ भी और आत्मा भी, तब जो शेष रह जाएगा, वह तरंगायित, वह सागर। वही सागर--एक तरफ पदार्थ की तरह ठोस होकर दिखाई पड़ रहा है, वही सागर दूसरी तरफ मैं की तरह ठोस होकर दिखाई पड़ रहा है।
और वह सागर ठोस नहीं है, वह जीवंत तरंगों का सागर है। जिस दिन यह लगेगा, उस दिन रास्ते पर चलते में, ऐसा नहीं मालूम पड़ेगा कि मैं चल रहा हूं, लगेगा, ऊर्जा जा रही है। ऐसा नहीं लगेगा, मैं बोल रहा हूं; लगेगा, ऊर्जा बोल रही है, वही बोल रहा है।
ये वेद के, उपनिषद के ऋषि अगर यह कह सके कि हम नहीं बोलते, उसी की वाणी,
तो उसका कारण यह नहीं था--कि वे दावा कर रहे थे कि हम जो बोलते हैं, वह ईश्वर ही है--उसका कुल कारण इतना था वे यह कह रहे थे कि हम हैं ही नहीं, बोल कैसे सकते हैं! वही बोल रहा है, वही चल रहा है, वही खा रहा है, वही पी रहा है, वही उठ रहा है, वही जी रहा है, वही जा रहा है, वही जन्मता है, वही मरता है--हम हैं ही नहीं।
और अगर यह बोध स्पष्ट होता चला जाए कैसी अशांति है फिर, कैसा दुख है। फिर कैसी मृत्यु, फिर कैसा अज्ञान, फिर कैसा अंधकार है। फिर सब गया! व्यक्ति मिट जाए, सब मिट जाता है, जो भी दुखपूर्ण है। जो भी पीड़ापूर्ण है और हम सब, हम सब "मैं" की गठरी बने हुए हैं!
मैंने सुना है बंगाल के गांव में एक छोटा सा लोकनाटय, एक लोक नाटिका है। उस लोकनाटय में एक आदमी भगवान के मंदिर पर वृंदावन पहुंचा है।

वृंदावन के मंदिर में वह प्रवेश करने लगा। उसके हाथ में कुछ नहीं है, उसके पास कोई गठरी नहीं है। जूते उसने बाहर छोड़ दिए, छड़ी उसने बाहर छोड़ दी। लेकिन द्वारपाल उसे रोकता है कि ठहरो, ठहरो! सामान बाहर रख कर आओ!
वह आदमी कहता है लेकिन सामान तो मैं बाहर रख आया हूं, हाथ देखते नहीं खाली हैं? जूते बाहर छोड़ दिए, हाथ की लकड़ी भी बाहर छोड़ दी। मैं बिल्कुल खाली हूं, मुझे जाने दें। मैं भगवान की प्रार्थना को आया हूं।
वह द्वारपाल कहता है, ऐसे नहीं, सब सामान बाहर रख आओ!
वह कहता है, आप पागल हो गए हैं, सामान है कहां?
वह द्वारपाल कहता है, जो सामान तुम बाहर रख आए, उसे ले भी आओ तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन यह जो "मैं"--"मैं" भीतर जाऊंगा? "मैं" भगवान के दर्शन करूंगा, "मैं" पूजा करूंगा! इस "मैं" को बाहर रख आओ, क्योंकि इस "मैं" को लेकर आज तक कोई भी भगवान के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हुआ।
लेकिन वह आदमी कहता है जो सामान दिखाई पड़ता था, वह तो मैं रख आया, अब यह "मैं" को इसको कैसे निकाल कर रख दूं।
तो द्वारपाल कहता है, जाओ खोजो। अगर न पा सको तो आ जाना। क्योंकि रख दिया फिर बाहर, अगर नहीं मिला तो। और मिल जाए, तो रख आना।
रूमी का एक गीत है! एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर जाकर दरवाजा खटखटाता है। पीछे से आवाज आती है कौन हैं--कौन हो तुम?
और वह कहता है--मैं, पहचानी नहीं तू! आवाज नहीं पहचानी, पैर के कदम नहीं पहचानी! मैं हूं तेरा प्रेमी।
और भीतर सन्नाटा हो जाता है! वह फिर बहुत दरवाजा पीटता है, जैसे घर में कोई है नहीं!
ऐसा गुप चुप, वह चिल्लाता है, कि क्या हो गया तुझे, बोलती क्यों नहीं! द्वार क्यों नहीं खोलती, मैं आया हूं तेरा प्रेमी!
भीतर से फिर इतनी ही आवाज आती है कि प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। इधर मैं पहले से ही "मैं" हूं। अब तुम एक "मैं" और आ गए! तो बड़ी मुश्किलहोगी।
और सब जानते हैं कि प्रेम के घरों में दो-दो "मैं" समा गए हैं, और बहुत मुश्किल हो रही है। हर प्रेम के घर में "दो-दो मैं" बैठे हैं और वहां चल रहा है, नर्क पैदा हो रहा है।
उसने कहाः एक "मैं" हूं, अब दूसरे "मैं" की इस घर में जगह नहीं है। अभी तुम लौट जाओ। और उसने यह भी कहा जाते वक्त, ध्यान रखना कि जो प्रेम कहता है "मैं", वह प्रेम कैसे हो सकता है?
वह प्रेमी वापस लौट गया। फिर वर्ष वर्ष बीते। फिर वह लौटा--न मालूम कितनी बरसातें, कितनी धूप, कितनी रातें, चांद, अंधेरा, सब गुजरा!
वह आया, फिर उस द्वार पर दस्तक दी। फिर पीछे से पूछा गया, कौन हो तुम?
उसने कहाः अब तो मैं नहीं हूं, तू ही है। और रूमी की कविता कहती है द्वार खुल गए!
लेकिन रूमी को मरे बहुत दिन हो गए। कई दफा मन होता है, जाकर कब्र से उठा कर उससे कहो, कविता तुमने आधे में रोक दी। यह कविता पूरी नहीं हुई। क्योंकि अब भी उसने कहा, मैं नहीं हूं, तू ही है! लेकिन जिसका "मैं" मिट जाता है, उसको "तू" भी मिट जाता है। क्योंकि "तू" तभी तक दिखाई पड़ता है, जब तक "मैं" हो। तो वह कहने लगा कि "मैं" नहीं हूं! लेकिन अगर तुम नहीं हो तो अब कहने वाला भी कौन है कि मैं नहीं हूं? और अगर तुम नहीं हो तो तुम यह कैसे कहते हो कि "तू" ही है। तो रूमी ने जल्दी दरवाजा खोल दिया!
मैं राजी नहीं दरवाजा खोलने को। मैं तो कहता हूं, फिर वह प्रेमिका चुप
हो गई। और उसने कहा, अभी लौट जाओ, क्योंकि जब तक "तू" है, तब तक "मैं" कैसे मिट सकता है? लेकिन तब आगे कविता को बढ़ाना बड़ा मुश्किल। शायद इसीलिए रूमी डर गया हो, कविता उसने रोक दी हो। आगे कविता बढ़ानी बहुत मुश्किल, क्योंकि कविता के बढ़ने के लिए भी दो चाहिए।
सब नाटक के लिए कम से कम दो तो चाहिए। और जब एक ही रह जाए तो कैसी कविता। और जब एक ही रह जाए तो कैसा आना। और जब एक ही रह जाए तो किसके द्वार पर दस्तक? फिर कौन पूछेगा, कौन उत्तर देगा?

फिर मैं कहता हूं, कविता लेकिन आगे बढ़ती है। वह प्रेमी फिर चला जाता है। फिर बरसात, फिर धूप। फिर वर्षा, फिर धूप, लेकिन वह फिर कभी नहीं लौटता, क्योंकि लौटने वाला ही नहीं रह गया। लेकिन तब वह तो नहीं लौटता, लेकिन जिसकी तलाश थी, वह खुद ही उसके पास पहुंच जाती है! क्योंकि जब मैं ही मिट गया तो फिर रुकने की बात ही क्या रह गई! फिर तो प्रेम बहा चला आता है। इसलिए मैं कहता हूं, आप कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते। लेकिन परमात्मा आप तक आ जाएगा उस दिन, जिस दिन आप नहीं हैं। आज तक कोई आदमी ईश्वर तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है। और आज तक कोई आदमी मोक्ष तक नहीं पहुंचा है और न पहुंच सकता है। जिस दिन आदमी मिट जाता है, मोक्ष आ जाता है, परमात्मा आ जाता है। वह आया ही हुआ है। इस "मैं" के कारण दिखाई नहीं पड़ता है। वह मौजूद ही है। वह चारों तरफ खड़ा है, वही है। लेकिन इस "मैं" के कारण दिखाई नहीं पड़ता है। यह "मैं" एकमात्र अंधापन है, एकमात्र ब्लाइंडनेस है। और यह "मैं" चला जाए, आंख खुल जाती है, वही है। इस अनुभव में ही जीवन की सार्थकता और धन्यता उपलब्ध होती है। इस अनुभव में ही वह घड़ी आती है, जो आनंद की है। वह घड़ी, जिसमें फिर दुख का सवाल नहीं, क्योंकि गया वह। वह गांठ ही चली गई, जो दुखती थी। वह ग्रंथि चली गई, जो दुखती थी। वह मैं की जो ग्रंथि थी, वह जो ईगो-कंपलेक्स था, वही दुखता था, वही चला गया। अब कैसा दुख, अब कैसी पीड़ा, अब कैसी मृत्यु?
क्योंकि वह "मैं" ही था, जो मरता था। जो है, वह तो कभी नहीं मरा है। जो है, वह कभी मरता ही नहीं है। वह "मैं" ही बार-बार जन्मता है और बार-बार मरता है। इसलिए भूल कर भी यह मत कहना कि कभी आत्मा का पुनर्जन्म होता है, आत्मा का कोई पुनर्जन्म नहीं। फिर "मैं" बार-बार जन्मता है और मरता है। सब पुनर्जन्म ईगो के हैं।
और जिस दिन "मैं" नहीं, उस दिन कोई पुनर्जन्म नहीं। सिर्फ जीवन है। फिर न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। फिर अंतहीन अनादि जीवन है। उस अनादि जीवन का नाम परमात्मा है; उसका नाम मोक्ष है, वही सत्य है।
हम असत्य हैं, और इसलिए हम उस सत्य को नहीं पाते। इस असत्य को खोजें,
इस असत्य को लेकर उस सत्य की खोज नहीं की जा सकती। इस असत्य को खोजें। खोज से यह असत्य मिट जाएगा, गिर जाएगा, शून्य हो जाएगा। इसके शून्य होते ही सत्य प्रकट हो जाता है। "मैं" को मिटाना है। "मैं" को मिटते हुए जानना है। ऐसा जानना है कि "मैं" मिट जाए।
और जहां "मैं" नहीं है, वहीं ध्यान है, वहीं द्वार है।
जिस द्वार से हमने बात शुरू की थी, वह बहुत बंद द्वार हैं। एक खुला द्वार है। सब द्वार जो बंद हैं, "मैं" के द्वार हैं। और एक खुला द्वार जो है, वह "ना-मैं"। वह नो "आई" का द्वार है, वही ध्यान है। ध्यान, यानी जहां-- आप नहीं हैं। गैर-ध्यान यानी जहां आप हैं। अपने को, अपने को स्वयं को, आत्मा को, अहंकार को, अस्मिता को सबको विदा दे देनी है। लेकिन विदा आप नहीं दे सकते। खोजेंगे और पाएंगे कि नहीं है तो विदा हो जाती है।
अब हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
एक दस मिनट के लिए जो मैंने कहा है, उसे करें। थोड़े-थोड़े फासले पर हट जाएं। कोई किसी को छूता हुआ न हो। बातचीत न करें... बैठ जाएं... कहीं भी बैठ जाएं। सब जगह बराबर है जब मिटने की तैयारी हो। कहीं भी बैठ जाएं।
आंख बंद कर लें। शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर को शिथिल छोड़ दें। आंख बंद कर लें।... और क्या कहना है... मिट जाएं। जैसे हैं ही नहीं। इस सारे विस्तार के साथ एक हो जाएं। यह जो पक्षी बोल रहा है। ये जो हवाएं हैं। यह सूरज की रोशनी है। यही मैं हूं। इस सबके साथ एक हूं। छोड़ दें अपने को। बिल्कुल मिट जाएं जैसे नहीं हैं। हां किसी की चिंता कोई न ले। जिसको जो होता है होने दें। आप अपनी फिकर करें। अपने को मिटाएं। किसी को रोना आएगा, आएगा। छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें। जो भी आवाज सुनाई पड़े सुनते रहें। कोई पक्षी बोले, कोई रोने लगे। वह जो रो रहा है वह भी आप हैं। वह जो पक्षी की आवाज है, वह भी आप हैं। सारी चीजों को स्वीकार कर लें।
सब सुनते रहें, सब जानते रहें। एक ही बात स्पष्ट होती चली जाए भीतर कि मैं नहीं हूं। छोड़ दें, बिल्कुल अपने को छोड़ दें शिथिल। जो भी हो रहा है, जो भी है उसके साथ एक हो जाएं। धीरे-धीरे मन शांत होता चला जाएगा। धीरे-धीरे

मन शांत होता चला जाएगा। एक दस मिनट के लिए बिल्कुल मिट जाएं... छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें जैसे मिट गए हैं और सारी प्रकृति के साथ एक हो गए हैं। जो भी चारों तरफ वातावरण है उसके साथ एक हो जाएं। जैसे स्वयं मिट गए और समस्त के साथ एक हो गए। फिर न कोई चिंता है, न कोई पीड़ा, न कोई आसक्ति। छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें।
एक हो जाएं... पक्षियों की आवाज... सूरज की किरणें... छाया... वृक्ष... यह
सब जो चारों तरफ है। हम उसके साथ एक हैं, अलग नहीं। हम भी वही हैं। इसे भीतर देखें और समझें कि हम जुड़े हैं अलग नहीं। जैसे-जैसे यह जोड़ दिखाई पड़ेगा वैसे-वैसे मन शांत हो जाएगा। जैसे-जैसे मैं मिटेगा वैसे-वैसे सब शांत हो जाएगा। मिट जाएं... बिल्कुल मिट जाएं... जैसे हैं ही नहीं... मिट जाएं... जैसे हैं ही नहीं... इस चारों तरफ फैले हुए सब कुछ के साथ एक हो जाएं। फिर देखें कि मन कैसा शांत और शून्य होता चला जाता है। हम अलग नहीं हैं।
धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ समस्त के साथ जुड़ा हुआ अनुभव करें। धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। श्वास जोड़े है समस्त से। प्रत्येक श्वास के साथ अनुभव करें बाहर से जुड़े, सबसे जुड़े। फिर आहिस्ता-आहिस्ता आंख खोलें। आंख खोलकर देखें कि बाहर और भीतर सब
एक है। बाहर और भीतर के बीच कोई फासला नहीं। जो बाहर है वही भीतर है। जो भीतर है वही बाहर है। धीरे-धीरे आंख खोलें... दो मिनट देखें। जो बाहर दिखाई पड़ रहा है क्या वह भीतर का ही विस्तार नहीं...

हमारी सुबह की बैठक समाप्त हुई।

सम्भावनाओं की आहट
सातवां प्रवचन

संकल्पों के बाहर
(23 मार्च 1969 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है, यदि हम पूछें मैं कौन हूं तो पूछने वाला और प्रश्न दोनों एक ही तो हैं, दोनो अलग नहीं हैं। जो प्रश्न बन कर खड़ा है, वही तो उत्तर बनेगा। और तब कैसे कभी जाना जा सकता है कि मैं कौन हूं?

सच है यह बात। जो पूछ रहा है, वही उत्तर भी है। लेकिन पूछने के कारण उत्तर का पता नहीं चल पा रहा है। पूछना है। पूछने से उत्तर नहीं मिलेगा, लेकिन पूछते रहें, पूछते रहें। पूछते जाएं, सब उत्तर व्यर्थ होते चले जाएंगे। अंततः जब कोई उत्तर नहीं बचेगा तो प्रश्न भी व्यर्थ हो जाता है। और जब प्रश्न भी गिर जाता है--उत्तर तो मिलता ही नहीं! जब प्रश्न भी गिर जाता है और चित्त निष्प्रश्न होता है, तब हम उसे जान लेते हैं। जो प्रश्न भी पूछता था। और जो उत्तर भी है!
प्रश्न पूछने का प्रयोजन उत्तर खोज लेना नहीं है। प्रश्न पूछने का प्रयोजन, सब बंधे, सब सीखे उत्तरों को व्यर्थ कर देना है। और उस जगह पहुंच जाना है, जहां प्रश्न भी अंततः व्यर्थ हो जाता है।
प्रश्न जहां गिर जाता है, वहां ज्ञान है।
उत्तर जहां मिल जाता है, वहां ज्ञान नहीं है। प्रश्न जहां गिर जाता है, वहां ज्ञान है। यह थोड़ा समझने जैसी बात है। हम सोचते हैं, कि ज्ञान है उत्तर का मिलना। और मैं आपसे कहता हूं, ज्ञान है प्रश्न का भी गिर जाना! एक युवा खोजी बुद्ध के पास गया। और उसने जीवन भर में बहुत से प्रश्न खोजे थे, जिनके उत्तर नहीं थे। उसने जाकर वे प्रश्न बुद्ध के सामने रखे। और कहा, चाहता हूं इनके उत्तर।
बुद्ध ने कहाः पहले भी और किसी से ये प्रश्न पूछे हैं?
उस युवक ने कहाः बहुतों से पूछे हैं। तीस वर्ष इसी में श्रम किया है,
अब तक आधी जिंदगी इसी में गंवाई है।
तो बुद्ध ने कहाः इतनों से पूछे उत्तर, मिला कोई उत्तर या नहीं? जिनसे पूछा था, उन्होंने उत्तर दिए या नहीं?
उस खोजी ने कहाः सब ने उत्तर दिए। बुद्ध ने कहाः उन्होंने उत्तर दिए, तुझे उत्तर मिला या नहीं! उस व्यक्ति ने कहाः मुझे उत्तर मिल जाता तो मैं फिर आपसे पूछने नहीं आता। मुझे उत्तर नहीं मिला।
बुद्ध ने कहाः इतने लोगों से पूछने के बाद, तुझे उत्तर नहीं मिला, फिर
भी तू पूछे चला जा रहा है! तुझे यह खयाल नहीं आया कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि पूछते-पूछते मिलेगा ही नहीं! मैं भी तुझे उत्तर दूंगा, उससे भी तुझे उत्तर नहीं मिलेगा, क्योंकि आज तक उत्तर देने से उत्तर मिला ही नहीं!
फिर वह आदमी पूछने लगा, फिर मैं क्या करूं?
तो बुद्ध ने कहाः तू एक वर्ष यहां रुक जा और इतना शांत हो, इतना शांत
हो कि प्रश्न भी गिर जाएं। और फिर वर्ष भर बाद, जब तेरा चित्त पूर्ण शांत हो, अगर तूने पूछा तो मैं उत्तर दूंगा, और तुझे उत्तर मिल जाएगा।
एक भिक्षु वृक्ष के नीचे बैठे सुनता था, जोर से खिलखिला कर हंसने लगा!
उस नये आए आगंतुक ने पूछा, आप हंसते क्यों हैं? उस भिक्षु ने कहा, धोखे में मत पड़ जाना। मैं भी कुछ वर्ष पहले बुद्ध के पास इसी तरह पूछने आया था। उन्होंने मुझसे कहा, एक वर्ष रुक जाओ और चुप हो जाओ। और फिर पूछना फिर मैं उत्तर दूंगा। यह बड़े धोखे की बात है। तू इस बात में पड़ना मत, क्योंकि मैं जब चुप हो गया वर्ष भर बाद और यह मुझसे पूछने लगे, पूछना है? तो मेरे पास, पूछने को ही कुछ नहीं था! मैंने पूछा नहीं, इन्होंने उत्तर नहीं दिए! मैं तुझसे कहता हूं, अगर पूछना हो तो अभी पूछ लेना, क्योंकि वर्ष भर बाद तेरे पास पूछने को ही नहीं होगा! और यह मेरे साथ ही नहीं हुआ है, यह सैकड़ों लोगों

के साथ मैं रोज होते हुए देखता हूं। वे आते हैं, पूछते हुए। बुद्ध कहते हैं, पहले चुप हो जाओ, फिर पूछना, फिर मैं उत्तर दूंगा। वे चुप ही हो जाते हैं, वे फिर पूछते ही नहीं! और बुद्ध के उत्तर का पता ही नहीं चलता है कि उत्तर क्या है!
बुद्ध ने कहाः मैं अपनी बात पर कायम रहूंगा। अगर वर्ष भर बाद तूने पूछा तो मैं उत्तर दूंगा। अब तू ही पूछने से इंकार कर दे तो मैं क्या कर सकता हूं!
वह आदमी रुक गया। उस आदमी का नाम मौलुक्यपुत्त था। वर्ष भर बाद, ठीक वर्ष बीतने पर, बुद्ध ने उससे कहाः मौलुक्य, खड़े हो जाओ, और पूछो।
वह मौलुक्यपुत्त हंसने लगा और उसने कहाः कि नहीं पूछना है। नहीं पूछना है!
बुद्ध ने कहाः लेकिन क्यों नहीं पूछना है?
उसने कहाः पूछने को कुछ बचा ही नहीं। मन इतना शांत हो गया है कि प्रश्न ही नहीं है। और अब मैं उत्तर की झंझट में पड़ने वाला नहीं हूं। जब प्रश्न ही नहीं है--तो उत्तर की झंझट कौन लेता है!
प्रश्न गिर जाते हैं एक दिन, वहीं उत्तर मिलता है। उत्तर मिलने से कभी
भी उत्तर नहीं मिलता है।
सब उत्तर सीखे हुए होते हैं। सब उत्तर दूसरों के--उधार, किताब, शास्त्र के होते हैं। अपना उत्तर तो उसी दिन मिलता है, जिस दिन सब प्रश्न गिर जाते हैं। लेकिन वह उत्तर भी मिलता नहीं है, हम स्वयं ही उत्तर हो जाते हैं, जब सब प्रश्न गिर जाते हैं।
जैसे किसी आदमी को सन्निपात हो, बुखार चढ़ा हो, होश खो दिया हो और वह पूछता हो कि मेरी खाट आकाश में उड़ रही है--यह खाट पूरब की तरफ उड़ रही है कि पश्चिम की तरफ? आप उसे उत्तर देंगे कि आप भागेंगे वैद्य को बुलाने? आप बताएंगे कि उत्तर में उड़ती है खाट कि पश्चिम में?
आप जानते हैं, खाट उड़ ही नहीं रही, यह आदमी सन्निपात में है। इसको उत्तर की जरूरत नहीं, उपचार की जरूरत है। लाएंगे वैद्य को बुलाकर।
वह आदमी कहेगा, पहले मेरा उत्तर चाहिए यह खाट पूरब में उड़ती है या पश्चिम में? आप कहेंगे, ठहरो, ठहरो अभी, थोड़ी देर बाद उत्तर देंगे। थोड़ी चिकित्सा हो लेने दो, तुम थोड़े होश में आ जाओ, फिर पूछना। फिर हम उत्तर देंगे।
और उसकी चिकित्सा होती है, वह होश में सुबह आ जाता है। अब आप उससे कहते हैं कि पूछो, खाट कहां उड़ रही है तो हम उत्तर देंगे। वह आदमी कहता है, खाट उड़ ही नहीं रही, पूछें हम क्यों! वह बात खत्म हो जाती है।
मनुष्य के सारे प्रश्न सन्निपात में पूछे गए प्रश्न हैं और सारी फिलासफी सन्निपात में लिखी गई। सारे शास्त्र और सारा दर्शन और सारी हजार तरह की सिस्टमस, सब सन्निपात में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर हैं।
"जानना" वहां है, जहां कि सन्निपात मिट जाता है, पूछने का ज्वर, पूछने
का ज्वर ही चला जाता है।
मैं कोई उत्तर नहीं दे रहा हूं। और न आपसे यह कह रहा हूं कि आप पूछें
कि "मैं कौन हूं।" कि आपको उत्तर मिल जाएगा, नहीं, इस तीव्र जिज्ञासा की आग में पूछते-पूछते-पूछते सब प्रश्न, सब उत्तर, सब गिर जाएंगे। अंत में रह जाएगा वही, जो है। और वही उत्तर है। लेकिन वह उत्तर आता नहीं है। आप ही बच रहते हैं, आप ही उत्तर हो जाते हैं।
अभी रुग्ण है चित्त, इसलिए आप प्रश्न हैं। चित्त होगा स्वस्थ, आप ही उत्तर होंगे। और उत्तर और प्रश्न का मिलन कभी नहीं होता, क्योंकि रुग्ण चित्त और स्वस्थ चित्त का मिलन नहीं होता। जब रुग्ण चित्त चला जाता है, तब स्वस्थ चित्त आता है। इसलिए जब तक कोई प्रश्न पूछता है, तब तक उत्तर नहीं है। और जब उत्तर आता है, तब प्रश्न बहुत पहले ही विदा हो गए होते हैं! इनका मिलन ही कभी नहीं हुआ।
यह ध्यान में रख लेना, उत्तर और प्रश्न इन दोनों का मिलन ही कभी नहीं हुआ। जब तक प्रश्न है भीतर, तब तक जानना उत्तर नहीं होगा। जिस दिन उत्तर होगा, उसके बहुत पहले प्रश्न जा चुका होगा।

यह जो जिज्ञासा, इन्क्वाइरी और खोज के लिए कहा जा रहा है, वह सिर्फ इसीलिए है कि सब उत्तर गिर जाएं। सब उत्तर गिर जाएं, नेति-नेति हो जाए। नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं, नाट दिस, नाट दैट, सब गिर जाए, सब निषेध हो जाए। सब निगेट हो जाए, सब उत्तर गिर जाएं, फिर अकेला प्रश्न रह जाए--अकेला प्रश्न कैसे जीएगा? प्रश्न जीता है, उत्तर मिलते हैं इसलिए, यह कभी आपने ध्यान नहीं किया होगा! एक प्रश्न पूछिए, एक उत्तर दिया जाएगा। उस उत्तर के बाद दस प्रश्न खड़े हो जाएंगे! दस प्रश्नों के दस उत्तर और हजार प्रश्न खड़े हो जाएंगे! हर उत्तर नये प्रश्न खड़ा करेगा!
अगर गौर से देखा जाए तो पता चलेगा कि प्रश्न का भोजन उत्तर है, जब तक उत्तर मिलता है, प्रश्न नई संतति पैदा कर लेता है। वह नई संतान पैदा कर देता है। अब तक दुनिया में जितने उत्तर दिए गए, सबने नये प्रश्न खड़े किए! कोई उत्तर, उत्तर नहीं!
जैसे अंडे से मुर्गी निकलती है और मुर्गी से फिर अंडे निकलते हैं; और फिर अंडों से मुर्गी निकलती है, ऐसा प्रश्न से उत्तर निकलता है, उत्तर से फिर प्रश्न निकलते हैं, प्रश्न से फिर उत्तर निकलते हैं! वह अंडे मुर्गी का संबंध, प्रश्न और उत्तर का संबंध भी है। अंत नहीं आता! और जो उत्तर का अंत नहीं लाता, वह उत्तर हो सकता है? खोज हमारी उसकी है, जो अंतिम है, आत्यंतिक है, अल्टीमेट है, आखिरी है, जिसके आगे पूछने को नहीं बचता है। लेकिन ऐसा उत्तर पूछने से नहीं आ सकता। ऐसा उत्तर पूछना भी छूटने से आता है। लेकिन पूछना भी उन्हीं का छूट सकता है, जिन्होंने पूछा है। जिन्होंने पूछा ही नहीं, उनका छूटेगा क्या? इसलिए तीव्र जिज्ञासा चाहिए अपने भीतर कि हम पूछते जाएं--कौन हूं? मैं कौन हूं? कौन हूं? पूछते चले जाएं, पूछते चले जाएं। जल्दी से बीच-बीच में उत्तर आएंगे। मन कहेगा, अरे मालूम है कि कौन हो। उन उत्तरों को मत स्वीकार करना, क्योंकि उन उत्तरों को स्वीकार करने से प्रश्न कभी नहीं मरेगा, फिर नये प्रश्न खड़े हो जाएंगे। मन कहेगा, आत्मा हो तुम! और अगर स्वीकार कर लिया तो मन पूछेगा आत्मा मरती है कि नहीं? आत्मा कहां से आई? भगवान ने आत्मा क्यों बनाई? भगवान कौन है? उत्तर फिर नये प्रश्न बनाते चले जाएंगे। नहीं, पूछना है उस सीमा तक। उत्तर तो स्वीकार ही नहीं करना है। सिर्फ कमजोर लोग उत्तर स्वीकार करते हैं, बलशाली लोग उत्तर स्वीकार नहीं करते। प्रश्न को पूछते चले जाते हैं। कमजोर और आलसी उत्तर स्वीकार करते हैं, क्योंकि उत्तर स्वीकार करने से, वे कहते हैं, अब खोज की कोई जरूरत नहीं। हमने मान लिया कि यही होगा। अब आगे और क्या पूछना है, बस खत्म करो!
लेकिन जो आत्यंतिक, अंतिम तक पूछने को राजी है, वह आखिर में सारे उत्तरों के ऊपर चला जाता है, और फिर अंत में प्रश्न के भी। जैसे हम एक दीया जलाएं। सांझ हमने दीया जलाया, दीये की बाती जलनी शुरू हुई। लेकिन बाती नहीं जलती, तेल जलता है। बाती पर तेल चढ़ता जाता है, तेल जलता जाता है। रात भर बाती तेल को जलाती है। फिर तेल जल जाता है, फिर बाती जलने लगती है। जब तेल खत्म हो जाता है, फिर बाती जलने लगती है। जिस बाती ने सारे तेल को जलाया, उसे पता भी नहीं होगा कि तेल को जला कर मैं अपनी मौत बुला रही हूं। जब तेल जल जाएगा तो फिर मुझे जलना पड़ेगा।
उस बाती को पता भी नहीं है कि मैं तेल को जला कर अपने ही मरने का आयोजन
कर रही हूं। सुसाइडल है यह काम, आत्महत्या हो जाएगी, क्योंकि तेल जैसे ही खत्म हुआ, फिर बाती जलेगी। अभी बाती अपनी रक्षा कर रही है और तेल को जला रही है। रात भर तेल जल कर समाप्त हो जाएगा। दीया खाली हुआ, फिर बाती जलेगी और राख हो जाएगी। लेकिन बाती तब जलेगी, जब तेल जल चुका होगा और बाती तेल को जलाएगी और अंत में खुद जल जाएगी।
ठीक ऐसे ही प्रश्न पहले उत्तरों को गिराते हैं--यह भी उत्तर ठीक नहीं,
यह भी उत्तर ठीक नहीं, यह भी उत्तर ठीक नहीं! लेकिन प्रश्न को पता नहीं, कि जब सभी उत्तर ठीक नहीं रह जाएंगे, आखिर में जब सभी उत्तर जल जाएंगे, तो मैं बाती भी जलने के क्षण पर पहुंच जाऊंगी। आखिर में जब सब उत्तर गिर जाते हैं तो फिर प्रश्न किसके सहारे खड़ा रहे? वह प्रश्न भी गिर जाता है। पहले पता चलता है, उत्तर गलत हैं; फिर पता चलता है, प्रश्न भी व्यर्थ है! और जब न

उत्तर रहते, न प्रश्न रहते तो वही रह जाता है, जो है। और तभी उसका अनुभव है, इसलिए जिज्ञासा और खोज के लिए मैंने कहा।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैं कहता हूं, क्रोध, लोभ इत्यादि पर कोई नियम, कोई नियंत्रण, कोई संकल्प, कोई व्रत नहीं लेना चाहिए--कि आज से मैं क्रोध नहीं करूंगा। तो उन्होंने पूछा है एक तरफ तो आप यह कहते हैं कि ऐसा संकल्प नहीं करना चाहिए और दूसरी तरफ आप कहते हैं कि संकल्प की शक्ति विल-पावर होनी चाहिए!
इन दोनों बातों में उन्हें विरोध मालूम पड़ा। इसे समझना ठीक होगा। पहली तो बात, जो आदमी कहता है कि आज से मैं क्रोध नहीं करूंगा, वह ऐसा क्यों कहता है? उसे पता है कि वह क्रोध करेगा, इसीलिए कहता है न? उसे मालूम है कि वह क्रोध करेगा, इसीलिए संकल्प लेता है। अगर उसे पता है कि कल से क्रोध होना ही नहीं है तो वह व्रत नहीं लेगा।
आपने कभी कसम खाई है कि मैं दीवाल से, आज से अब दीवाल से नहीं निकलूंगा, दरवाजे से ही निकलूंगा! आपने कभी कसम खाई नहीं, क्योंकि आप जानते हैं मैं दीवाल से कभी निकलता ही नहीं हूं। दरवाजे से निकलता हूं। और अगर एक आदमी मंदिर में खड़ा हुआ मिले जो कहे, कि कल से मैंने अब बिल्कुल पक्का कर लिया है, कि चाहे कुछ भी हो जाए, दीवाल से नहीं निकलूंगा तो आप सब चौंक कर देखेंगे, क्या यह आदमी दीवाल से निकलता रहा है? और कल भी इसको दीवार से निकलने की आशा है, कल्पना है, आकांक्षा है?
जब एक आदमी कहता है मैं कल से क्रोध नहीं करूंगा, तब वह आदमी जानता है
कि कल मैं क्रोध करने वाला हूं, उसी के खिलाफ तो संकल्प लेता है! संकल्प किसके खिलाफ ले रहा है? किसी दूसरे के खिलाफ? नियंत्रण, व्रत, नियम सब अपने ही खिलाफ तो लिए जाते हैं! मुझे पता है, मैं कल भी क्रोध करूंगा। भलीभांति पता है। और जितने जोर से मुझे पक्का विश्वास है कि कल क्रोध करूंगा, उतना ही पक्का, उतने ही जोर से मैं कसम खाता हूं कि कल नहीं करूंगा क्रोध! किसके खिलाफ कर रहा हूं यह आयोजन? अपने ही खिलाफ!
और अपने खिलाफ, जो आयोजन होता है, उसमें व्यक्तित्व टूट जाता है, दो हिस्सों में। एक व्यक्तित्व कहता है, कि नहीं करूंगा और दूसरा व्यक्तित्व कहता है कि करूंगा! अब इसको भी थोड़ा ध्यान से समझ लेना कि मैं क्रोध करूंगा, यह संकल्प आपने कभी लिया था पहले जिंदगी में? कभी आपने यह व्रत लिया था कि मैं क्रोध करूंगा?
यह आपने कभी नहीं लिया था, यह नैसर्गिक है। और यह आप ले रहे हैं कि मैं क्रोध नहीं करूंगा, यह नैसर्गिक नहीं है, यह कृत्रिम है, यह आर्टिफिशियल है। जो नैसर्गिक है, वह मजबूत सिद्ध होगा। जो कृत्रिम है, वह मजबूत सिद्ध नहीं हो सकता। नैसर्गिक और कृत्रिम की जब लड़ाई होगी तो कृत्रिम हारेगा और नैसर्गिक जीतेगा। आप अपने को दो हिस्सों में तोड़ रहे हैं। आपका निसर्ग, आपकी प्रकृति कह रही है, कि करेंगे क्रोध और आपकी सीखी हुई बुद्धि, आपका कांशस माइंड, चेतन चित्त कह रहा है कि नहीं, अब हम क्रोध नहीं करेंगे! आपको पता नहीं है कि प्रकृति बहुत बलवान है और आपके ये संकल्प बहुत ना-कुछ हैं, ना कुछ। इनका कोई मूल्य नहीं है। कल जब क्रोध का झंझावात आएगा, सब संकल्प, सब व्रत पता नहीं कहां उड़ जाएंगे सूखे पत्तों की तरह। जैसे एक सूखा पत्ता जमीन पर पड़ा है। अभी हवा नहीं चल रही है और वह सूखा पत्ता कहता है, कि कसम खाते हैं, अब नहीं उड़ेंगे। अब कसम खाते हैं, कि कल से चाहे कुछ भी हो जाए, उड़ेंगे नहीं! एक सूखा पत्ता सड़क पर पड़ा हुआ कसम खा रहा है। अभी हवा नहीं चल रही है। पत्ते को पक्का लग रहा है कि ठीक है, जमीन पर पड़े हैं, कसम खाते हैं, कि अब नहीं उड़ेंगे। लेकिन पत्ता कसम क्यों खा रहा है कि नहीं उड़ेंगे?
पत्ते को पुराने अनुभव हैं कि जब भी हवा चली है, उड़ना पड़ा है। उन्हीं
के खिलाफ कसम खा रहा है। लेकिन कसम पत्ता खा रहा है। और पत्ते को पता नहीं है कि सूखा पत्ता है, उसकी ताकत कितनी है! और जब प्रकृति का झंझावात और आंधी उठेगी और हवाएं चलेंगी, तब कहां इसकी कसम रहेगी। सूखे पत्ते की कोई कसम का मूल्य होने वाला है? जब आएगी हवा, पत्ता उड़ने लगेगा! जब हवा चली जाएगी, पत्ता गिर जाएगा। फिर पछताएगा, फिर मन में कहेगा, कि नहीं, आज टूट गया; लेकिन कल से अब पक्का करते हैं। कल चलें किसी संन्यासी के पास, किसी

मुनि के पास और जाकर हाथ जोड़ कर मंदिर में प्रार्थना करके कसम खा लें कि अब नहीं, अब हम अणुव्रत लेते हैं कि अब नहीं उड़ेंगे। इस पत्ते का क्या मतलब है?
जिस चेतन मन से हम यह सारी बातें कर रहे हैं, उसकी ताकत क्या है? वह जो अचेतन प्रकृति हमारे भीतर खड़ी है--ताकत है उसकी? आपके व्रत का, आपको नींद में पता भी नहीं रह जाएगा। अभी आपने कसम खा ली कि कल से क्रोध नहीं करेंगे। और आज आप रात सो गए! आपको नींद में व्रत का पता होगा? आप तो होंगे, लेकिन व्रत का पता नहीं होगा। नींद में क्यों पता नहीं होगा? क्योंकि जिस मन ने कसम खाई थी, वह बहुत छोटा सा मन है--वह सो चुका है। और जिस मन ने कसम नहीं खाई है, वह बहुत बड़ा मन है। वह अभी नींद में भी जागा हुआ है। नींद में भी क्रोध चलेगा, नींद में भी छुरा मारा जाएगा, नींद में भी हत्या होगी। मनुष्य की प्रकृति के रूपांतरण का सवाल है, मनुष्य के निर्णय का नहीं।
और प्रकृति बड़ी है, निर्णय हमेशा कमजोर है।
तो मैं कहता हूं, निर्णय मत लेना। समझो, समझना प्रकृति को कि क्या है मेरी प्रकृति? क्रोध क्या है? और जिस दिन प्रकृति की पूरी समझ आ जाएगी-- प्रकृति की समझ, प्रकृति से ज्यादा शक्तिशाली है, क्योंकि समझ भी प्रकृति का गहनतम, और गहरे से गहरा रूप है। समझ भी प्रकृति की है। वह आपकी चीज नहीं है समझ भी! वह भी प्रकृति से ही जन्मती है, और विकसित होती है और फैलती है। जो व्यक्ति अपने चित्त की पूरी प्रकृति को समझ लेता है, जागरूक हो जाता है, पूरे चित्त को पहचान लेता है, वह कसम नहीं खाता। वह यह नहीं कहता कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा। वह यह कहता है क्रोध गया, अब क्रोध कैसे करूंगा! अगर मौका आ जाएगा तो अब क्रोध कैसे करूंगा! जो आदमी अपने भीतर क्रोध को समझ लेता है, वह यह कहेगा कि अब बड़ी मुश्किल हो गई--कल अगर मौका आ गया तो भी क्रोध कैसे करूंगा! क्योंकि समझने के बाद क्रोध करना असंभव है। वह ऐसे ही है, जैसे जानते हुए गड्ढे में गिरना। आंखें खुली होते हुए कांटों में चले जाना, वह वैसा ही है। आंखें खुले हुए दीवार से टकराना, वह वैसा ही है। जानना है, संकल्प नहीं लेना है।
फिर उन्होंने पूछा है लेकिन आप कहते हैं, संकल्प-शक्ति चाहिए? तो उसका क्या मतलब है?
उसका मतलब ही यह है कि जितना आप संकल्प लोगे, उतनी ही संकल्प-शक्ति क्षीण होती है। संकल्प-शक्ति विकसित नहीं होती है संकल्प लेने से। असल में जब सब संकल्प-विकल्प गिर जाते हैं, तब मनुष्य के भीतर संकल्प शक्ति शुद्ध होती है, तब उसे संकल्प लेना नहीं पड़ता। संकल्प शक्ति होती है उसके भीतर। और जो भी उसके पूरे प्राण चाहते हैं, वह हो जाता है, उसको निर्णय नहीं लेने पड़ते कि ऐसा हो, ऐसा मैं करूं। उसका पूरा प्राण--जो वह चाहता है, वह हो जाता है! उसके भीतर संकल्प का अर्थ है जिसके भीतर विकल्प नहीं रह गए। संकल्प उसके भीतर पैदा होता है, जिसके भीतर विकल्प नहीं रह गए। जिस आदमी के चित्त में विकल्प उठते ही नहीं, उसके भीतर संकल्प है।
विकल्पों के विदा होने पर संकल्प रह जाता है।
संकल्प का मतलब है वही ऊर्जा, वही शक्ति, जो परमात्मा की है। वही काम करने लगती है।
फिर आदमी ऐसा नहीं कहता है कि मैं ऐसा करूंगा। वह पाता है कि ऐसा हो रहा है। वैसा आदमी च्वाइस भी नहीं करता, चुनाव भी नहीं करता। वह यह नहीं कहता कि मैं यह छोड़ता हूं और यह करता हूं। उसके पूरे प्राणों को जो ठीक लगता है, वह वही करता है। चुनाव भी नहीं करता! वह यह भी नहीं कहता कि मैं फलां चीज छोड़ता हूं! क्योंकि हम छोड़ते उसी चीज को हैं, जिसके पीछे हमारा कोई लगाव होता है।
जब एक आदमी कहता है कि मैं बाएं जाऊं कि दाएं, चौरस्ते पर खड़ा होकर सोचता है कि बाएं जाऊं कि दाएं, तब उसके भीतर जो निर्णय होता है वह माना कि मेजार्टी का निर्णय है, डेमोक्रेटिक निर्णय है। इक्यावन परसेंट दिमाग कहता है कि चलो, बाएं चले चलो, उनंचास परसेंट दिमाग कहता है कि दाएं चलो। फिर वह बाएं चला जाता है। क्योंकि उनचास प्रतिशत दिमाग ने कहा कि दाएं चलो--दस पच्चीस कदम गया है कि लगता है कि कहीं भूल तो नहीं हो गई--दो परसेंट

दिमाग नीचे गिर जाता है! उनंचास परसेंट कहने लगता है कि गलती हुई जा रही है, उसी पर चलते तो बहुत अच्छा था! यह आदमी डोलता है। यह कभी तय नहीं कर पाता।
ऐसे लोग तक हैं कि घर में ताला लगा कर निकलते हैं, दस कदम के बाद खयाल आता है कि फिर से लौट कर देख लें ताला ठीक लगा है कि नहीं! क्योंकि दिमाग कहता है, पता नहीं देखा था कि नहीं देखा था? एक हिस्सा कहता है कि देखा तो था। लेकिन दूसरा हिस्सा कहता है संदिग्ध है, चलो लौटकर देखें! लेकिन वह आदमी यह नहीं जानता कि लौट कर देख कर फिर दस कदम बाद यही हालत हो जाएगी! कुछ लोग जिंदगी भर लौट-लौट कर ताले ही देखते रहते हैं! और निरंतर विकल्प करते रहते हैं--यह करूं, यह करूं। ईदर, आर उनके दिमाग में यही चलता रहता है!
एक बहुत बड़ा विचारक था कीर्कगार्ड। वह जिस गांव में रहता था, उस गांव
के लोगों ने उसका नाम ईदर-आर रख छोड़ा था। क्योंकि अक्सर लोग उसको देखते थे, वह चौरस्ते पर खड़ा है और सोच रहा है कि इस रास्ते जाऊं कि इस रास्ते जाऊं! उसने एक किताब भी लिखी, जिसका नाम ईदर-आर है, यह या वह! सारा गांव चिल्लाता था, वह ईदर-आर जा रहे हैं--हर छोटी चीज में!
एक लड़की से प्रेम हुआ। और ईदर-आर खड़ा हो गया कि शादी करूं कि ना करूं!
दस साल तक सोचता रहा! तब तक लड़की की शादी हो गई, उसके लड़के-बच्चे शादी योग्य हो गए! तब उसको पक्का कर पाया कि कर लेनी चाहिए! फिर वह गया। लेकिन तब तक पता चला कि लड़की का तो विवाह भी हो चुका, उसके बच्चे भी बड़े हो चुके। तुम बहुत देर करके आए, तुम रहे कहां? उसने कहा, मैं हिसाब लगाता रहा कि करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए!
यह जो मस्तिष्क है, विकल्प से भरा हुआ मस्तिष्क जो हमेशा कहता है--यह
या वह! और हमेशा डोलता है, दोनों तरफ डोलता है! हर वक्त डोलता रहता है, हर चीज में डोलता रहता है! कमीज तक पहनता है आदमी तो एक निकालता है, फिर उसको रखता है; फिर दूसरी निकालता है, फिर पहन कर आईने के सामने खड़ा होता है, फिर उसे भी निकालता है! वह ईदर-आर पूरे वक्त दिमाग को खाए जा रहा है! ऐसा आदमी कैसे संकल्प को उपलब्ध हो सकता है?
पति बाहर हार्न बजा रहा है और पत्नी साड़ियां बदलती चली जा रही है। और
वह हॉर्न बजा रहा है कि गाड़ी चूके जाते हैं। लेकिन पत्नी कहती है, सवाल गाड़ी का थोड़े ही है, स्टेशन पर इतने लोग होंगे, साड़ी का सवाल है असली, और वहां तय नहीं हो पा रहा! क्योंकि बहुत साड़ियां हैं पेटी में--नीचे से ऊपर तक! वह तय नहीं हो पा रहा है कि कौन सी साड़ी! वह ईदर-आर है दिमाग में, हर छोटी चीज पर!
अगर आदमी यह तय कर ले कि मैं पक्का निर्णय करके ही कुछ करूंगा, तो आदमी जिंदगी भर कुछ नहीं करेगा, क्योंकि पक्का निर्णय होने वाला नहीं है। कुछ हिस्सा भीतर का कहता रहेगा कि वह भी कर लो, शायद वह ठीक हो। वह तो मौत आपसे पूछती नहीं आकर--कि आप मरना चाहते हैं कि नहीं? नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाए। आदमी अधूरे मुर्दे पड़े रहें, वर्षों, सैकड़ों वर्षों तक और तय न कर पाएं कि मरना है कि नहीं! वह तो मौत आई, वह पूछती ही नहीं और ले जाती है। सिर्फ मौत आपको कोई विकल्प नहीं देती। और इसलिए मौत का सबसे ज्यादा डर लगता है, क्योंकि हमसे पूछती ही नहीं। इसलिए हम उससे भयभीत रहते हैं, क्योंकि वह हमसे पूछती नहीं कि आपको क्या करना है!
मैंने सुना है, एक लकड़हारा लकड़ियां काट कर लौटता था, और रोज-रोज कई बार कहता था, हे भगवान, मुझे तो मार डाल, उठा ले दुनिया से! यह क्या लकड़ी ढो-ढो के जिंदगी खराब हो गई! जिंदगी भर यही करता रहूंगा? आज भी लकड़ी ढोकर चला है-- सिर पर भार है, पसीना चू रहा है, बूढ़ा आदमी है, एक जगह आकर लकड़ियों का गट्ठा नीचे टेक कर उसने कहा कि हे भगवान, अब तो उठा ले, अब मुझे होने की कोई जरूरत नहीं!
भाग्य की बात मौत उस रास्ते से गुजरती थी। उसने सुन ली। उसने कहा, यह बेचारा बहुत दिन से बुलाता है, चलो इसको ले ही चलो। वह मौत उसके पास आई उसने कहा, मैं आ गईं!
उसने कहाः तू कौन है?
उसने कहाः मैं मौत हूं, तुम बहुत दिन से बुलाते थे, आज रास्ते पर ही मिल गए, मैं जा रही थी दूसरी जगह, चलो तुम्हें ले चलती हूं।

उस बूढ़े ने कहाः मर गए! हमने कब सोचा था, तो उसने कहाः कि थोड़ा ठहर, मैंने तुझे बुलाया जरूर, लेकिन बुलाया इसलिए कि रास्ते पर कोई दिखाई नहीं पड़ता था। यह गट्ठा जो मैं उठा रहा हूं, उठवा कर रखवा दे मेरे सिर पर! और कोई काम नहीं है, सिर्फ यह गट्ठा मेरे सिर पर रख दे और अब भूल हो गई। आइंदा ऐसी बात नहीं करूंगा। मैं तो इस, इसको सिर्फ उठवाने के लिए बुलाया, रास्ते पर कोई दिखता नहीं।
वह हम, हमारा जो चित्त है, उस चित्त की चंचलता का और कोई अर्थ नहीं है। चित्त की चंचलता का एक ही अर्थ है कि चित्त हमेशा ईदर-आर में सोचता है--यह या वह! और दोनों पर डोलता है! ऐसा डोलने वाला चित्त, विकल्प चित्त कहलाता है--विकल्पवान।
जब चित्त ऐसी दशा में पहुंचता है, जहां यह-वह दोनों समाप्त हो जाते हैं। जो है, वही परिपूर्ण, टोटल, इंटिग्रेटेड। एक ही प्राण का उत्तर होता है कि--यह। और इसमें कोई विरोधी स्वर नहीं होता। उस दिन चित्त संकल्पवान होता है।
संकल्प उन्हें उपलब्ध होता है, जो विकल्प से मुक्त हो जाते हैं।
लेकिन आप कहते हो कि मैं सिगरेट छोड़ कर रहूंगा, मैं कसम खाता हूं, कि सिगरेट नहीं पीऊंगा! आप विकल्प खड़े कर रहे हैं। एक मन कह रहा है कि सिगरेट पिऊंगा, उसी के खिलाफ आप दूसरा विकल्प कर रहे हैं कि नहीं पीऊंगा! आप विकल्प खड़े कर रहे हैं। आपकी संकल्प शक्ति कम होगी, बढ़ेगी नहीं। आप यह मत समझना कि इस तरह संकल्प-शक्ति बढ़ जाएगी, इसी तरह संकल्प शक्ति क्षीण होगी, क्योंकि रोज-रोज आप कसम लेंगे, रोज-रोज कसम टूटेगी। और अंततः आप पाएंगे कि सारा व्यक्तित्व टूट गया है। संकल्प का अर्थ है जहां विकल्प नहीं है, जहां कोई ऑल्टरनेटिव नहीं है, जहां एक ही स्वर उठता है कि बस यही।
बंगाल में बुत्तौजी एक बहुत बड़ा व्याकरण का ज्ञाता हुआ। उसके बाप ने उससे जब उसकी साठवीं वर्षगांठ थी, उससे कहा कि अब तू कब तक अपने इस व्याकरण में उलझा रहेगा? इस गोरख-धंधे को छोड़, अब भगवान का स्मरण कर!
उस बेटे ने--साठ वर्ष का बूढ़ा तो वह भी था, बाप अस्सी साल का होगा--उस बूढ़े बेटे ने कहा, करूंगा एक दिन स्मरण, एक बार; बार-बार नहीं! क्योंकि बार-बार स्मरण का मतलब क्या है? तुम्हें मैं देख रहा हूं वर्षों से, सुबह से शाम तक भगवान का स्मरण करते हो! कुछ हुआ तो नहीं!
और तुम बड़े अजीब हो! तुमने जब पहली दफा स्मरण किया था, जब पहली दफा ही नहीं हुआ तो उसी, उसी स्मरण को बार-बार करने से फायदा क्या है? जब होना था तो पहली बार ही हो गया होता। वही तो कर रहे हो न? दुबारा फिर, तिबारा, वही कर रहे हो! जब पहली बार ही नहीं हुआ--करने वाले भी तुम हो, स्मरण भी वही है और रोज-रोज वही कर रहे हो, और नहीं हो रहा, फिर भी किए चले जा रहे हो--इससे क्या फायदा! एक बार करूंगा। एक बार सिर्फ! फिर दुबारा नहीं करूंगा।
पांच साल बाद उसकी पैंसठवीं वर्षगांठ। वह पैंसठ वर्ष का बूढ़ा उठा।
अपने पिता के चरण छुए और कहा कि मैं मंदिर जा रहा हूं। शायद आज स्मरण का दिन आ गया, आपके चरण छूता हूं।
बाप ने कहाः चरण छूने की क्या बात है? अभी तो लौट आओगे।
उसने कहाः लौटना मुश्किल है, क्योंकि जा रहा हूं।
बाप ने कहाः मतलब क्या है तेरा?
उसने कहाः मतलब साफ है। जब मंदिर जा रहा हूं तो घर कैसे लौटूंगा!
बाप ने कहाः पागल हो गया? मैं रोज लौटता हूं। कोई मंदिर जाने से लौटने में कोई बाधा पड़ती है?
तो उस बेटे ने कहाः आप मंदिर गए ही नहीं। नहीं तो लौटते कैसे?
बाप हंसा कि पागल है! कभी तो गया नहीं मंदिर, आज जा रहा है और क्या बातें करता है!
लेकिन घड़ी भर बाद गांव के लोगों ने दौड़ कर खबर दी कि तुम्हारा लड़का मरा हुआ पड़ा है मंदिर में!
बाप ने कहाः यह क्या हो गया!
वह सारा का सारा गांव इकट्ठा हो गया। मंदिर के पुजारी ने कहाः न मालूम क्या आज पहली दफे तो आया यह हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ और उसने कहा कि बस एक बार पुकारता हूं, और सुनता हो सुन ले। नहीं सुनता हो बात खत्म। फिर दुबारा मैं

तेरी तरफ लौट कर देखूंगा भी नहीं। और इसने बस एक बार आंख बंद की है और इसकी श्वास जो बाहर गई तो पीछे नहीं लौटी!
इसको कहते हैं संकल्प। संकल्प का मतलब क्या होता है? संकल्प का मतलब
है इंटिग्रेटेड माइंड। पूरा का पूरा, टोटल, समग्र चित्त। जब कोई एक स्वर से भरता है, तब संकल्प की स्थिति है। और संकल्प जो चाहता है, वह वही हो जाता है। संकल्प के लिए कोई बाधा नहीं है जगत में।
लेकिन संकल्प है कहां! हम तो विकल्पों में जीते हैं। और एक विकल्प को पकड़ते हैं, दूसरे के खिलाफ और कहते हैं कि मैं संकल्प कर रहा हूं! यह संकल्प नहीं है।
तो दूसरी बात, कि इन छोटी-छोटी बातों को लेकर अपने मन को खंड-खंड में
मत तोड़ना। क्योंकि खंडित मन कमजोर मन है। जितने खंड टूट जाएंगे, मन उतना ही अशक्त और निर्वीर्य हो जाता है। मन चाहिए अखंड। अखंड चित्त ही वह विराट अखंड से जुड़ने में समर्थ हो पाता है।
लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि मैं कहता हूं, क्रोध करो। कि जो भी करना है, करो। क्योंकि संकल्प करना नहीं, व्रत लेना नहीं।
साधु-संन्यासी यह ही समझाते हैं पूरे मुल्क में कि मैं लोगों को क्रोध करने, वासना में उतरने, इन सबके लिए प्रेरित कर रहा हूं। कि मैं लोगों से कहता हूं, व्रत मत लो, नियम मत लो और जो ठीक लगे करो! मैंने कभी नहीं कहा है। मैं यह कह रहा हूं कि व्रत और नियम लेने के बाद तुम क्रोध ही करते रहोगे। काम में ही उलझे रहोगे। व्रत और नियम से कभी कोई क्रोध, काम, लोभ, से मुक्त नहीं हुआ है।
मैं यह कह रहा हूं कि व्रत मत लो। क्रोध को, काम को समझो। समझते ही मुक्त हो जाओगे। समझ से ही कभी कोई मुक्त हुआ है। नियम सिर्फ नासमझ लेते हैं। समझदार आदमी कभी नियम नहीं लेता, समझ को विकसित करता है। समझ नियम बन जाती है। नियम नहीं लेना पड़ता। सिर्फ जड़बुद्धि, मंदबुद्धि व्रत लेते हैं! बुद्धिमान कभी व्रत नहीं लेता। क्योंकि बुद्धिमानी स्वयं व्रत है। बुद्धिमानी के लिए अलग से व्रत नहीं लेने पड़ते। बुद्धिमानी स्वयं संयम है। बुद्धिमान को संयम की, नियम की, कसमें नहीं खानी पड़तीं।
धर्म के नाम पर मंद-बुद्धिता का प्रयोग चल रहा है। और जो आदमी व्रत लेता है, कसम खाता है, संकल्प करता है कि ऐसा नहीं करूंगा, ऐसा करूंगा; ऐसा आदमी अपने मस्तिष्क को, अपनी बुद्धि को, निरंतर और मंद और मंद करने की दिशा में ले जाता है। अगर बिल्कुल ही जड़ता पानी हो तो नियम, व्रत इत्यादि बड़े सहयोगी हैं।
अगर सारा गौरव खोना हो; विवेक का, बुद्धि का सारा प्रकाश खोना हो; अगर
वह ऊर्जा, वह गरिमा, जो मनुष्य के भीतर छिपी है विवेक की, अंडरस्टैंडिंग की, वह सब नष्ट करनी हो तो व्रत लेना, संयम लेना, नियम लेना।
और ध्यान रखना, संयम, नियम और व्रत कभी भी संयमी नहीं बना सकेंगे, न नियमी बना सकेंगे, न व्रती बना सकेंगे।
यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। लेकिन हमें यही दिखाई पड़ता है चारों तरफ। महावीर को देखें, बुद्ध को देखें, या जीसस को या कृष्ण को, तो ऐसा मालूम पड़ता है बड़े नियम के आदमी हैं। नियम के आदमी बिल्कुल नहीं हैं। महावीर से ज्यादा बिना नियम का आदमी खोजना मुश्किल है।
लेकिन हम कहेंगे महावीर तो इंच-इंच नियम का पालन करते हैं! बुद्ध इंच-इंच नियम का पालन करते हैं! हर रोज पांच बजे सुबह उठते हैं ब्रह्ममुहूर्त में, तो हमको भी कसम खानी चाहिए कि रोज पांच बजे ब्रह्ममुहूर्त में उठेंगे।
लेकिन कभी आपको पता है, महावीर ब्रह्ममुहूर्त में उठने की कसम नहीं खाए। महावीर इतने गहरे सोते हैं कि ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाते हैं। ब्रह्ममुहूर्त में उठने की कोई कसम उन्होंने नहीं ली है। लेकिन इतना गहरा सोते हैं कि ब्रह्ममुहूर्त तक नींद पूरी हो जाती है और उठ जाते हैं!
और आप खाओगे कसम कि हम पांच बजे उठेंगे। वह कसम पांच बजे उठा देगी, लेकिन दिनभर सोया हुआ रखेगी। दिन भर झपकियां आती रहेंगी। क्योंकि महावीर की नींद कहां है आपके पास। महावीर की नींद हो तो ब्रह्ममुहूर्त में नींद खुलती है। और महावीर की नींद न हो तो ब्रह्ममुहूर्त में नींद खोलनी पड़ती

है। वह खोलनी पड़ी नींद झूठी है। और उससे बेहतर है, कि सो जाना। सात बजे ही उठना, कोई हर्जा नहीं है, सात बजे उठने में। कम से कम दिन भर जागे हुए तो होंगे।
मैं चाहता हूं कि पांच बजे नींद खुले, लेकिन कसम मत खाना। कैसे पांच बजे नींद खुले, इसकी समझ विकसित होनी चाहिए। और नींद पांच बजे खुल जाए अपने आप। जो नींद अपने आप खुलती है, वही नींद सम्यक है। जिस नींद को खोलना पड़ता है, वह नींद गड़बड़ हो जाती है, विकृत हो जाती है। लेकिन एक आदमी कसम खा लेता है कि हम तो तीन बजे उठेंगे!
एक पंजाबी महिला मेरे पास आई और उसने मुझसे कहा कि किसी भांति मेरे पति को थोड़ा कम धार्मिक बनाइए! मैंने कहा क्या हो गया--वह मेरे पास आई, क्योंकि लोग जानते हैं कि मैं लोगों को कम धार्मिक बनाता हूं। किसी तरह थोड़ा इनका रिलीजन कम हो जाए तो हम पर बड़ी कृपा होगी! हमारा पूरा घर पागल हुआ जा रहा है!
और एक घर में एक आदमी धार्मिक हो जाए तो पूरा घर पागल होने लगता है! तथाकथित धार्मिक अगर एक आदमी हो गया घर में, तो पूरे घर का दुर्भाग्य समझो। क्योंकि पूरे घर को दिक्कत में डाल देगा। उसके नियम, उपवास, व्रत का ऐसा चक्कर चलेगा कि उस घर में शांति से रहना, किसी का भी संभव नहीं है। तो मैंने पूछा, क्या तकलीफ क्या है तुम्हें?
तो उसने कहा कि वह दो बजे रात उठते हैं, और जपुजी का पाठ करते हैं इतने जोर-जोर से कि मुहल्ले तक के लोग हमसे आकर कहते हैं कि हमारी नींद हराम कर डाली। और घर में न बच्चे सो सकते हैं, न हम सो सकते हैं। दिन भर बच्चों को स्कूल में नींद आती है, क्योंकि इनके जपुजी के मारे मुसीबत हो गई है! आप मेरे पति को समझा दें, थोड़ा कम धार्मिक हो जाएं तो हम पर बड़ी कृपा होगी। उनके पति को मैंने बुलाया। मैंने पूछाः कब उठते हो? उन्होंने कहा कि
दो बजे सुबह! और वह बड़ी प्रसन्नता से मुझसे आकर बोले कि आप तो मेरी बात को शाबाशी देंगे! मेरी पत्नी जान खाए जा रही है। लेकिन यह तो सदा होता रहा है, धार्मिक पुरुषों की पत्नियां हमेशा पीछे खींचती हैं। पत्नियां जो हैं संसार की तरफ लाती हैं न लोगों को भगवान की तरफ से! तो उसने कहाः यह तो होता ही रहा है, मैं सुनने वाला नहीं हूं। दो बजे उठता हूं और कोई बुरा काम तो करता नहीं हूं, जपुजी का पाठ करता हूं।
मैंने कहाः धीरे करते हो कि जोर से?
उसने कहाः मैं तो जोर से ही करता हूं, क्योंकि पत्नी, बच्चों सबको अनायास लाभ हो जाता है! वह तो अनायास कई लोगों को लाभ दे रहे हैं! माइक, लाउड-स्पीकर लगा कर अखंड रामायण चलाते हैं, अखंड राम-नाम चलाते हैं! वह सारे मोहल्ले वालों को रात भर राम-नाम का फायदा देते हैं! सारा मोहल्ला गाली देता है। बच्चे परीक्षाओं में फेल हो जाते हैं। और वह अपने राम-नाम को अखंड, अखंड चला रहे हैं, वह सबका कल्याण कर रहे हैं! मैंने उनसे कहा कि तुम तो माइक लगा कर जपुजी का पाठ करो तो उसमें मोहल्ले वालों को भी बहुत फायदा होगा! लेकिन एक बात ध्यान रखना, आजकल जो लोग माइक लगा कर अखंड रामायण वगैरह करते हैं, सबको नरक जाना पड़ता है, क्योंकि इतने लोगों को तकलीफ पहुंचा देते हैं! मैंने उनसे कहा कि थोड़ा समझो, यह क्या पागलपन मचा रखा है? फिर दिन भर क्या हालत है?
उन्होंने कहाः दिन भर, तामसी प्रवृत्ति है मेरी, इसलिए दिन भर नींद आती है! अब दो बजे रात जागोगे! और दिन में नींद आएगी तो शास्त्रों में लिखा है जिसको दिन में नींद आती है, वह तामसी प्रवृत्ति का होता है! तो मेरी तामसी प्रवृत्ति है और उससे ही लड़ रहा हूं। आज नहीं कल, जीत जाऊंगा। और काफी तो मैंने काबू पा लिया है।
यह जो, यह जो इस तरह के नियम लेने वाले लोग हैं, वे किसी भी चीज के नियम लेंगे। उससे वे अपने को भी नुकसान पहुंचाएंगे, पास-पड़ोस में भी सबको नुकसान पहुंचाएंगे।
नियम नहीं लिए जाते, समझ होनी चाहिए।
और समझ विकसित हो तो जरूर समझ विकसित होगी तो आदमी ठीक समय पर उठेगा, ठीक समय पर सोएगा, ठीक खाएगा, ठीक पीएगा, ठीक बोलेगा, ठीक चलेगा, बैठेगा।

लेकिन समझ से। यह उसकी समझ से आया हुआ अनुशासन होगा, यह थोपा हुआ अनुशासन नहीं होगा।
लेकिन हम थोपे हुए अनुशासन को ही अब तक मानते रहे। और उसी ने सारी मनुष्य-जाति को विकृत, कुरूप, अपंग, भटका हुआ कर दिया है।
नहीं, ऊपर से थोपा हुआ कोई अनुशासन नहीं चाहिए। समझ से, भीतर से आया हुआ अनुशासन चाहिए। वह अनुशासन बहुत और तरह का है। उसमें उतना ही फर्क होता है, जैसे कोई बाजार से कागज के फूल खरीद लाए और किसी के घर में गुलाब के फूल खिले हों। बाजार में भी गुलाब के फूल कागज के मिल जाते हैं, वे अच्छे भी होते हैं--कई कारणों से। एक तो अच्छाई उनकी यह होती है कि उनमें कांटे नहीं होते, दूसरी अच्छाई यह होती है कि वे मुरझाते नहीं, तीसरी अच्छाई यह होती है कि कितने ही दिन रखे रहो, जिंदगी भर रखे रहो वे वैसे ही बने रहते हैं! लेकिन एक ही भर उनमें खराबी होती है, वे कागज होते हैं, फूल नहीं होते!
फिर असली फूल होता है, वह असली फूल भीतर से आता है, पौधे के भीतर से आता है। जमीन की गहराइयों से आता है, जड़ों से आता है। अनजान, अज्ञात लोक से आता है और प्रकट होता है, खिलता है। वह भीतर से आया हुआ फूल है। कागज के फूल ऊपर से लाए गए, लगाए गए फूल हैं।
नियम और व्रत लेने वाले लोग कागजी किस्म के लोग हैं, जापानी किस्म के, ऊपर से सब लगाया हुआ है उनके, भीतर से कुछ भी नहीं आया है उनके। सब बाजार से खरीद लाए, और उसको ऊपर से चिपका लिया है और बैठ गए हैं। भीतर उनके कुछ भी नहीं है।
मैं बात कर रहा हूं, उस धर्म की, जो भीतर से फूल की ही तरह आए और सारे व्यक्तित्व में खिल जाए। वे फूल और हैं, लेकिन उन फूलों को लाने में श्रम करना पड़ता है। श्रम इस अर्थ में कि बहुत सी नासमझी छोड़नी पड़ती है, बहुत सा अज्ञान तोड़ना पड़ता है, बहुत सी व्यक्तित्व की पर्तों की खोज करनी पड़ती है, भीतर जाना पड़ता है, उघाड़ना पड़ता है, अपने को नग्न करना पड़ता है, इतनी मेहनत उठानी पड़ती है।
कागज के फूलों में कोई दिक्कत नहीं है। वे बाजार में मिल जाते हैं, उनको ले आओ और लगा लो!
मंदिरों में व्रत लिए जाते हैं, कसमें खाई जाती हैं। वहां चले जाओ, कसमें खा लो, व्रत ले लो, लेकिन उनसे एक झूठा आदमी पैदा होता है, सच्चा आदमी पैदा नहीं होता।
इस पृथ्वी पर जो इतना असत्य है, इतना झूठ, इतना पाखंड, इतनी हिपोक्रेसी है; उसका कुल कारण इतना है कि लोगों ने ऊपर से धर्म को थोपा है, वह भीतर से नहीं आया है। और जब भीतर से न आए तो बड़ी तकलीफ होती है और बड़ी पीड़ा होती है।
एक साधु मेरे पास मेहमान हुए। दो चार दिन मेरे करीब रहे तो मुझसे परिचित हो गए तो मेरे प्रति वे सरल और साफ हो गए। और मुझसे कहने लगे कि आपसे मैं अपने हृदय की कुछ सच्ची बातें कह सकता हूं, जो मैंने कभी किसी से नहीं कहीं। और आप मेरी कुछ सहायता करें तो मेरा बड़ा लाभ हो। मैंने कहा, क्या मैं कर सकता हूं, बोलो।
उन्होंने कहाः सबसे पहला तो यह कि मुझे सिनेमा देखना है!
मैं भी बहुत हैरान हुआ। मैंने कहाः मतलब?
उन्होंने कहाः जब मैं नौ साल का था, तब मेरे पिता ने मुझे दीक्षा दिलवा दी। मेरे पिता भी दीक्षित हो गए। और वे इसलिए दीक्षित हुए कि मेरी मां मर गई। मेरी मां मरने की वजह से पिता बेकार हो गए और वे दीक्षित हो गए। घर में मैं अकेला नौ साल का बच्चा था, तो उन्होंने मुझको भी दीक्षा दिलवा दी। मैं नौ साल का था तबसे मुझे दीक्षा मिल गई। मेरी बुद्धि नौ ही साल पर अटकी हुई है, उससे आगे विकसित नहीं हुई। कैसे विकसित होगी? दीक्षित आदमी की बुद्धि कभी विकसित नहीं होती। क्योंकि विकास के लिए चाहिए अनुभव, विकास के लिए चाहिए विराट अनुभव। दीक्षित आदमी का कोई अनुभव नहीं होता, बंधा हुआ अनुभव होता है, एक घेरे में जीता है। अब नौ साल का बच्चा, उसने कभी फिल्म नहीं देखी, सिनेमा नहीं देखा! अब वह हो गया ज्ञानी, वह हो गया मुनि, वह अपने हाथ में कमंडल और पट्टी-वट्टी बांध कर घूमने लगा! वह लोगों को

आत्मा और मोक्ष का ज्ञान देने लगा! अब भीतर उसके अटकाव यहां है कि जब भी टाकीज के सामने से निकलता है, वहां भीड़ लगी देखता है! उसके मन में होता है, भीतर पता नहीं क्या होता है। भीतर कुछ तो होता होगा? इतने लोग भीड़ लगाए हुए हैं खिड़कियों पर! टिकटें नहीं मिल रही हैं लोगों को! भीतर होता क्या है?
वह आपको अंदाज नहीं हो सकता है--उस बेचारे की तकलीफ! क्योंकि आप भीतर
हो आए हैं। आपको पता नहीं हो सकता कि नौ साल में जो दीक्षित हो गया, उसकी, उसकी तकलीफ क्या हो सकती है? वह कितनी मुश्किल में पड़ा होगा?
उसने मुझे कहाः कि मेरी बड़ी मुसीबत हो गई। मैं रहता तो मंदिरों में हूं, लेकिन मेरा चित्त टाकीजों के पास घूमता है-- कि वहां भीतर... यह बातें करने योग्य तो... मैं तो मोक्ष की बातें ही कर सकता हूं। वही करता हूं। और देखना मुझे फिल्म है! एक दफे कोई तरकीब से आप मुझे दिखा दें।
मैंने एक मित्र को बुलाया। पड़ोस में एक मित्र थे। मैंने उनको कहा कि इनको आप जाकर फिल्म दिखा लाइए। उन्होंने कहाः मैं हाथ जोड़ता हूं। मैं इनको ले जाऊंगा और किसी ने मुझे देख लिया कि मैं एक साधु को फिल्म दिखाने लाया हूं तो यह तो ठीक ही हैं। मेरी भी मरम्मत हो सकती है। मैं नहीं इस झंझट में पड़ता हूं। बहुत उनको समझाया तो वह बोले कि फिर मैं कंटोनमेंट एरिया में अंग्रेजी फिल्म की एक टाकीज है। वहां ले जा सकता हूं, क्योंकि वहां जैनी वगैरह नहीं होते। ये जैनियों के गुरु हैं। तो वहां अंग्रेजी फिल्म दिखा सकता हूं। बस्ती में नहीं ले जा सकता इनको। लेकिन वह मुनि अंग्रेजी नहीं जानते! वह कहने लगे, अंग्रेजी तो मैं जानता नहीं।
फिर मैंने कहाः यह तो अंग्रेजी फिल्म ही दिखा सकते हैं। यह... उनसे मैंने कहा कि ये हिंदी चित्र दिखाने को राजी नहीं हैं। आप अंग्रेजी नहीं समझते, क्या किया जा सकता है। फिर आप मत जाइए। पर वह बोले, कोई हर्ज नहीं, भाषा नहीं समझूंगा, लेकिन देख तो लूंगा कि क्या है, चले गए!
नौ वर्ष में व्रत दिलवा दिया जिंदगी के प्रति आंख बंद रखने का! उससे जिंदगी मिट नहीं जाती, उससे जिंदगी और आकर्षक हो जाती है। मन और और, मन और और जोर से पुकार करने लगता है कि यह जानूं, यह जानूं, यह जानूं!
व्रत भूल कर मत लेना। व्रत से समझ विकसित नहीं होती है, कुंठित होती है।
दीक्षा कभी भूल कर मत लेना। दीक्षा से आदमी मंद-बुद्धि होता है।
समझ को स्वीकार करना। समझ से एक दिन नियम आते हैं फूलों की तरह। समझ
से अंततः संन्यास भी आता है फूलों की तरह। तब वह संन्यास बिल्कुल दूसरा होता है। यह वर्दीधारियों का संन्यास नहीं होता। वर्दीधारी संन्यासी में और वर्दीधारी मिलिटरी के सैनिक में कोई फर्क नहीं। सब सीखा हुआ है ऊपर से। लेफ्ट-राइट करने वाले लोग हैं, इससे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। लिया हुआ संन्यास झूठा होगा। संन्यास आना चाहिए।
जीवन की समझ से धीरे-धीरे संन्यास आता है।
सारा व्यक्तित्व बदल जाता है। उस बदले हुए व्यक्तित्व के लिए--सारी
जो बातें मैंने कही हैं, उसके लिए हैं। एक सहज, एक सहज फ्लावरिंग, एक सहज खिल जाना व्यक्तित्व का चाहिए। थोपा हुआ, जबरदस्ती, खींचा-ताना, चेष्टा से लाया हुआ, डर और भय और प्रलोभन के मार्ग से बिठाया हुआ इस तरह का कोई भी ढांचा मनुष्य के हित में नहीं है, मनुष्य की हत्या करता है।
और बहुत से प्रश्न रह गए। उन पर तो बात संभव नहीं हो पाएगी। जिन मित्रों के प्रश्न छूट गए हों, वे भी जिन प्रश्नों के मैंने उत्तर दिए हैं, अगर उन्हें, उन्होंने गौर से सुना होगा, समझा होगा, तो उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि उनके प्रश्न छूट गए हैं।
लेकिन हमारे मन में बड़ा मुश्किल होता है। जो आदमी प्रश्न पूछता है, उसे प्रश्न से ज्यादा इस बात का खयाल होता है कि मेरा प्रश्न! तो मैं इधर से निकलता हूं तो मुझे रास्ते में याद दिला देते हैं कि और तो सब ठीक है, लेकिन मेरे प्रश्न का क्या हुआ! वह प्रश्न उतना मूल्यवान नहीं है। वह मैंने पूछा है, उसका उत्तर जरूरी है!
जो सारभूत प्रश्न थे, जो सबके प्रश्नों में समान थे। जो मुझे लगे कि आपकी साधना में उपयोगी होंगे, उनके मैंने उत्तर दिए हैं। कुछ और भी प्रश्न

उपयोगी हो सकते थे, लेकिन वे समय के अभाव में संभव नहीं हैं। तो जिनके प्रश्नों के उत्तर न मिल पाए हों, वे अपने प्रश्नों को सम्हाल कर रखेंगे, ताकि दुबारा कभी उनके उत्तर मिल सकें। हालांकि लोग प्रश्न भी भूल जाते हैं, क्योंकि प्रश्न भी उधार होते हैं। वह भी अपने नहीं होते, ऐसा मैं रोज-रोज अनुभव करता हूं।
एक आदमी आता है मेरे पास और वह पूछता है कि आत्मा के संबंध में कुछ बताइए?
और मैं देखता हूं कि इस बेचारे को आत्मा से क्या मतलब होगा! आत्मा से किसी का क्या मतलब हो सकता है!
तो मैं उससे पूछता हूं, कैसी तबीयत है, क्या हाल है, कैसा काम चलता है?
बस दो मिनट दूसरी बात करता हूं। फिर वह घंटे भर बैठता है, फिर वह हजार बातें करता है फिर वह चला जाता है!
फिर भूल कर दुबारा याद नहीं दिलाता कि वह आत्मा का क्या हुआ! वह बात गई। वह कहीं उसके भीतर से आई हुई बात नहीं थी कि उसे पूछने से कोई संबंध था बहुत। पूछना था, पूछ लिया। सुना था, खयाल आ गया मन में हवा उड़ गई। खयाल आया, कि चलो आत्मा के संबंध में पूछें, लेकिन कहीं कोई सिंसेरिटी, कहीं कोई बहुत गहरा लगाव नहीं था कि उस पर कोई अटकाव भी नहीं था। लेकिन अगर किन्हीं का अटकाव हो, और उनके प्रश्न छूट गए हों तो फिर...
अब हम आज रात के अंतिम ध्यान के लिए बैठेंगे। तो अंतिम ध्यान है इसलिए थोड़ी थोड़ी जगह बना लें और परिपूर्ण मन से खोने की तैयारी करें बिना बातचीत किए। हवा को बिगाड़ें मत। चुपचाप हट जाएं। कहीं भी चुपचाप बिना बात किए बैठ जाएं।
शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। शरीर को ऐसा रखें जैसे है ही नहीं, जैसे रुई का पोहा हो जाए। हलका, निर्भार... नहीं है। उसका पता ही न चले कि वह है भी। और हमारे हाथ में है। हम छोड़ दें तो वह ऐसा हो जाता है कि नहीं। फिर आंख बंद कर लें। धीमे से आंख बंद कर लें। अब प्रकाश बुझा दिया जाएगा। अंधकार में पूर्ण अंधकार में अपने को बिल्कुल लीन कर लेना है एक। इस रात के साथ एक हो जाना है। वृक्षों के साथ, हवाओं के साथ। हम रहें ही ना। जैसे सागर में एक लहर होती है सागर के साथ एक। अलग दिखती है लेकिन एक है। ऐसे ही बिल्कुल अपने को खो देना है इस विराट सागर में जीवन के। जितना हम खोएंगे उतना ही पाएंगे। जितने हम मिटेंगे उतने ही हो जाएंगे। जितना हम डूब जाएंगे उतने ही किनारे पर पहुंच जाएंगे। अब प्रकाश बुझा दें...
शरीर को ढीला छोड़ें... मैं सुझाव देता हूं... उसके अनुसार शरीर को ढीले
से ढीला छोड़ते जाएं। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें जैसे है ही नहीं... शरीर जैसे है ही नहीं। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... अनुभव करें श्वास शांत होती जा रही है। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... छोड़ दें श्वास को भी बिल्कुल ढीला छोड़ दें।
मन भी शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... छोड़ दें
मन को भी छोड़ दें। सब छोड़ दें... सब बिल्कुल छोड़ दें... जैसे मिट गए।
और दस मिनट के लिए इस रात के साथ एक हो जाएं। हवाओं की आवाज सुनाई पड़े
तो जानें कि मैं ही हवा हूं। झींगुरों की आवाज सुनाई पड़े तो जानें कि हमारे भीतर ही आवाज है। यह रात भी हमारे भीतर है, यह चांद तारे भी। हम सब एक हैं। दस मिनट के लिए बिल्कुल एक हो जाएं।
अब मैं चुप हो जाऊंगा। बिल्कुल अपने को छोड़ दें। और दस मिनट के लिए मिट जाएं...
छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... मिट जाएं... जैसे हैं ही नहीं। छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... इस रात के साथ एक हो जाएं... सन्नाटे के साथ एक हो जाएं... जैसे हैं ही नहीं... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... इस रात के साथ एक हो जाएं... बिल्कुल एक हो जाएं... जैसे हैं ही नहीं... मिट गए... जैसे हैं ही नहीं... सन्नाटा है... रात है... झींगुरों की आवाज है... और हम मिट गए हैं... हम एक हो गए हैं... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें--ड़ूब जाएं...

रात के इस अंधकार से एक हो जाएं... रात ही हो जाएं... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... अपने पर सारी पकड़ छोड़ दें... बिल्कुल मिट जाएं जैसे हैं ही नहीं... छोड़ दें... सब छोड़ दें... सारी पकड़ छोड़ दें... अपने को छोड़ दें... एक हो जाएं... रात के साथ एक हो जाएं... और मन बिल्कुल शांत हो जाएगा।
छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें। हवाओं के साथ, रात के साथ एक हो जाएं। उड़ जाएं हवाओं में। खो जाएं रात में। अलग नहीं हैं... पृथक नहीं हैं... हम अलग नहीं हैं... पृथक नहीं हैं... बस एक हो गए हैं। अपने और सब के बीच की दीवाल गिरा दें... एक हो जाएं... एक हो जाएं और मन शांत हो जाएगा... और मन परिपूर्ण शांत हो जाएगा...
हम तो मिट गए। रात ही रह गई। जैसे हम हैं ही नहीं। मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। मन शांत हो जाएगा। मन शांत हो जाएगा। मन शांत हो जाएगा।
सब ठहर गया, सब मिट गया। समय ठहर गया, सब ठहर गया। बिल्कुल छोड़ दें।
अब धीरे-धीरे दो चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास के साथ अनुभव करें--सब जुड़ा है। हम बाहर से जुड़े हैं। न कुछ बाहर है, न कुछ भीतर है--सब एक है।
धीरे-धीरे गहरी श्वास लें। हम जुड़े हैं। बाहर भीतर कुछ भी नहीं है, एक
ही है। फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। और देखें इस अंधकार को। बाहर भी सब शांत है। भीतर भी सब शांत है। दोनो के बीच कोई दीवाल नहीं। खोलें आंख को, देखें आकाश को, देखें वृक्षों को। सब एक है--बाहर भीतर कोई फासला नहीं।

हमारी अंतिम बैठक पूरी हुई।